5-2

कृष्णदास संस्कृत सीरीज ६२

भासनाटकचक्रे

अविमारकम्

'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

डॉ॰ बालगोविन्द झा



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४१
मूल्य रू० : १०-००

पो० बा० नं० १११८
चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
62



AVIMĀRAKAM

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited with

'Kamaleshwaree' Sanskrit-Hindi Commentaries

By

Dr. BALGOVIND JHA
M. A., Ph. D.
Prof. S. V. Patel College, Bhabhua, Rohatas (Bihar)

Foreword by

Dr. Mahaprabhulal Goswami
M. A., Ph. D., D. Litt.
Prof. Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi



KRISHNADAS Academy
VARANASI-221001
1984

Oriental Publishers & Distributors

POST BOX No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001

(INDIA)

First Edition

1984

Price Rs. 10-00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

समर्पणम्

पूज्य पितृचरण

पं० श्री कालीकान्त झा, व्याकरणाचार्य

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

दो शब्द

महाकवि भासप्रणीत 'अविमारकम्' की यह "कमलेश्वरी" संस्कृत हिन्दी टीका सहृदय एवं विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। संस्कृत टीका विशुद्ध रूप से प्रचलित टीका है। पद्यों पर पूरी टीका की गई है एवं गद्यभाग में केवल व्याख्येय शब्दों की ही व्याख्या की गई है। अनुवादक्रम में शब्दार्थ की अपेक्षा तात्पर्यार्थ को जब अधिक प्रधानता दी जाती है तभी वह मूल की भाँति स्वाभाविक और रुचिकर बन पाता है। प्रस्तुत टीका में इस तथ्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। भूमिका एवं परिशिष्ट भागों में ग्रन्थ से सम्बद्ध विविध सामग्री दे दी गई हैं जो पाठकों के लिये उपयोगिता की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

संस्कृत ग्रन्थों पर टीका लिखने के लिये मेरे पूज्य अग्रज श्री शंकर झा प्रधानाध्यापक, उच्चविद्यालय उरलाहा, पूर्णियाँ ने मुझे विशेष रूप से प्रेरित किया है। पूज्य गुरुवर डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी, आचार्य एवं अध्यक्ष, तुलनात्मक दर्शन विभाग: सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने भूमिका लिखकर मेरे श्रम की उपयोगिता में चार चाँद लगा दिये हैं। इन गुरुजनों की मुझ पर जो अहैतुकी कृपा है उसके लिये मैं इनका चिरऋणी रहूँगा। इस सन्दर्भ में आचार्य श्री सत्यनारायण शास्त्री खण्डूड़ी विशेष स्मरणीय हैं, जिनके सत्सम्पादन से इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। अतः इनका मैं हृदय से आभारी हूँ। अन्त में "कृष्णदास अकादमी" वाराणसी के संचालक महोदय के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित कर मेरा उत्साहवर्द्धन किया है। प्रस्तुत टीका में प्रमादवश जो भी अशुद्धियाँ हो गई हों उनके लिये मैं सहृदय पाठकों के समक्ष क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं कह नहीं सकता कि मेरा यह तुच्छ प्रयास कहाँ तक उत्कृष्ट बन पड़ा है, पर मेरा यह कार्य यदि आंशिक रूप से भी विज्ञ विद्वज्जनों एवं छात्रों के काम आ सका तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझ कर कृतकृत्य हो जाऊँगा।

दीपावली
वि. सं. २०४१

विनीत:—
बालगोविन्द झा

भूमिका

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी

भास और उनकी कृतियों की कविकुल प्रशस्ति

कविता-कामिनी के हास भास को नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा-प्रसूत रूपक आज भी अतुलनीय प्रतिक्षण अपनी काव्य-कला की नवीनता से चकाचौंध कर रहा है। रूपकों में प्रसन्न विशद प्रवाहित सुरधुनी की नवीन प्रेरणा प्राप्त होती है। महाकवि ने नाटकीय पात्रों को निष्पक्ष रूप में देखा और मानवीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रणय-कला को त्याग की कसौटी पर खरी पाया। अपने चिरसङ्गी के कल्याण के लिए सर्वस्व विसर्जन के साथ सपत्नी को भी अङ्गीकार करने में अम्लान है। आह्लाद आमोद के साथ पति की इनके रूपक की नायिका कल्याण-कामना में शान्त शाश्वत संसार के आकलन में सचेष्ट है। उसके सरस जीवन प्रतिक्षण प्रव्रज्या की प्रखर प्रभा से परिव्याप्त है, जो नारी जीवन के लिए अनुकरणीय है। भवभूति का भद्र प्रेम सुख-दुःख में अद्वैतता, विकारशून्यता, सभी अवस्थाओं में सामरस्य, जराकृत विश्रान्ति राहित्य, प्रतिक्षण वर्द्धमानता, एवं कालकला जिस प्रेम के अनवच्छिन्न प्रवाह के अवरोध में असमर्थ है, उसी प्रेम की स्निग्ध धारा से सिञ्चित भास की काव्य-कला तूलिका-चित्रित 'स्वप्न वासवदत्तम्' एवं अन्य नाटक हैं।

सम्भवतः महाकवि ने अनुभव किया कि ऐसी नायिका जाग्रत् जगत् की कामिनी कैसे हो सकती है? अतः इसे स्वप्नवासवदत्ता मानने के लिए बाध्य हुआ, और इतिवृत्त को अपनी कल्पना के अनुरूप चित्रित किया, जिसकी पुनरावृत्ति काव्य-जगत् में सम्भव न हो सकी।

महाकवि कालिदास को लोलापाङ्गलोचन से प्रणयमधुर को अवलोकनकर नन्दन-कानन-निवासी पात्रों के त्यागमय जीवन को चिन्मय भूमि में अवतारणा से पूर्व भूमिका में व्याजस्तुति के रूप में भास के उद्भास को लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा ।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

महाकवि की इस वाणी ने भास को चिरप्रतिष्ठित पद पर आसीन करने में सङ्कोच नहीं किया । इतना ही नहीं मालविकाग्निमित्र में स्पष्ट शब्दों से महाकवि ने कहा—"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं कालिदासस्य कृतौ बहुमानः" वाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रथम उल्लास में साम्बशिव एवं व्यास आदि को प्रणामाञ्जलि अर्पित कर भास की प्रशस्ति को उपस्थापित किया—

सूत्रधार के द्वारा प्रारब्ध, अनेक भूमिकाओं से युक्त पताका आदि प्रासङ्गिक कथाओं से विभूषित नाटकों की रचना कर देवकुल के समान यश के भागी हुए ।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

श्रीगणपति शास्त्री ने भास-नाटक-चक्र के रूप में भास की कृतियों को मनीषियों के सम्मुख रखकर उनको प्रथित यशोराशि से उद्भासित किया और बाणभट्ट की लेखनी के द्वारा लिखित 'नाटकै' इस बहुवचन प्रयोग को समर्थित किया, अतः उनकी कृतियों के विषय में समस्या का उद्भावन अन्वेषण की दृष्टि से उचित होते हुए भी तथ्य की दृष्टि से विप्रतिपत्तिशून्य है ।

आठवीं शताब्दी 'गउडवहो' महाकाव्य के प्रणेता वासवदत्ता के अग्नि-दाह की कल्पना से इतने प्रभावित थे कि भास को ज्वलनमित्र नाम से ही अभिहित किया—अग्निमित्र की यशोराशि सर्वत्र भासमान है । "भासम्मि जलणमित्तेकन्ती देवे अ जस्स रहु आरे" ।

आठवीं शती के काव्यालंकारसूत्र—(गउडवहो ८००) वृत्ति के रचयिता वामन ने स्वप्नवासवदत्तम् के पद्य को उद्धृत कर इनकी रचना की दिग्दिगन्त-व्यापिनी कीर्ति को भासित किया है।

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।

काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम्॥ (स्व० ४।८ का० सू० ४।३।२५)

सातवीं शताब्दी में दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरी' कथा की भूमिका में भास को अभिनन्दित किया है।

अशरीर होते नाटकों के द्वारा भास आज भी स्थित हैं। क्योंकि मुख आदि के सुलक्षण से शरीर का स्पष्ट बोध होता है।

सुविभक्तमुखाद्यंकैः व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।

परेतोऽपि स्थितो भासश्शरीरैरिव नाटकैः॥ (अ० सु क० ११)

जयदेवजी भास की कृतियों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने कविता-कामिनी के हास के रूप में भास का निर्देश किया है—

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। (प्र० रा० १।२२)

बौद्धाचार्य दिङ्नाग ने कुन्दमाला में दशरथ की प्रतिमा का उल्लेख किया है। जब कि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में ऐसा प्रसङ्ग निर्दिष्ट नहीं किया है। अतः भास का प्रतिमानाटक सुख्यात नहीं, कवियों के लिए अनुकरणीय था।

इन प्रशस्तियों के परिप्रेक्ष्य में महाकवि भास अपनी रचनाओं से महाकवियों के मध्य विशिष्ट स्थान प्राप्त करता रहा है—इसमें सन्देह का अवसर नहीं है। दो तीन महाकवियों की गणना में यह भी गण्य है, अतः बहुमान-सम्पन्न ऐसे कवि का परिचय एवं काव्यकला स्वभावतः जिज्ञास्य है। उसी जिज्ञासा के उपशमन की दृष्टि से कुछ लिखने की बाध्यता का अनुभव कर रहा हूँ।

भास का आविर्भाव

भारतीय मनीषी महाकवियों ने देशकाल के परिच्छेद से मुक्त अखण्ड भारतीय दृष्टि को अक्षुण्ण रखते हुए अपने को काल, कुल की सूचना से विमुक्त

रखा है । भारती भाषा भारतीय होने से भारतवासी होने की सूचना के लिये पर्याप्त है, अतः इससे अधिक लिखना किसी सम्प्रदाय एवं किसी प्रान्त से आबद्ध करना है, जो इन मनीषियों को अभीष्ट नहीं था ।

संस्कृत के विभिन्न आचार्यों ने भास का समय ६०० वर्षों में दोलायमान रखा है ।

१—मिड़े, दीक्षित, गणपतिशास्त्री, हरप्रसादशास्त्री, खुपेरकर, किरत और टटके ने ई० पूर्व छठी से चतुर्थ शताब्दी के मध्य में माना है ।

२—जागीरदार, कुलकर्णी, शेम्बबनेकर, चौधरी, ध्रुव और जायसवाल ने ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में माना है ।

३—कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सौली और वेलर ने द्वितीय शताब्दी में माना है ।

४—बनर्जी, शास्त्री, भण्डारकर, जेकोवी, जौली और कीथ ने भास का समय ईसा की तृतीय शताब्दी में माना है ।

५—लेस्ली और विण्टरनित्ज ने ईसा की चतुर्थ शताब्दी इनका समय माना है ।

६—शङ्कर ने ईसा का पञ्चम एवं षष्ठ शतक माना है । इनके अतिरिक्त आचार्यों ने भी इनके समय के लिये अपना मन्तव्य व्यक्त किया है किन्तु कालिदास आदि ने भास का नाम निर्दिष्ट किया है, अतः चतुर्थ शताब्दी से आगे इनको ले जाना सम्भव नहीं है ।

डॉ० पुसालकर ने भास के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनका समय ईसा से पूर्व चतुर्थ एवं पञ्चम शतक माना है ।

प्रतिज्ञायोगन्धरायण, अविमारक और स्वप्नवासवदत्तम् में प्राचीन राज्यों का उल्लेख मिलता है, वे राज्य चतुर्थ शतक में वर्तमान थे ।

अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः ।
एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मां कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा ।।

(प्रति० यौ० २।८)

स्वप्नवासवदत्तम् में उज्जैन के राजा प्रद्योत, कोशाम्बी के राजा उदयन और मगध के राजा दर्शक का उल्लेख मिलता है। ईसा से पूर्व छठी शती तक ही इनका राजत्व समाप्त हो चुका था। भास ने दर्शक की राजधानी राजगृह कही है, किन्तु अजातशत्रु के समय मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी, अतः मौर्यकाल से पूर्व इनका समय मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर डॉ० पुसालकर ने भास का समय महापद्मनन्द का राजत्व बताया है। इसके शासन काल में समस्त उत्तर भारत इसके अधीन था। भास की निर्दिष्ट राज्य-सीमा महापद्मनन्द के राज्य से साम्य रखती है।

ए० एस० पी० अय्यर ने भी इसका समर्थन किया है। अय्यर का अनुमान भास को कौटिल्य का सामयिक बताता है। क्योंकि, कौटिल्य अर्थशास्त्र के १० वें अधिकरण के तृतीय अध्याय में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अधोलिखित पद्य का उद्धरण दिया है —

नवं शरावं सलिलैः सपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥
(प्रति० ४।२)

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के तृतीय अंक में ही "चन्दं गिलदिलाहू। मुंच मुंच चन्दं। यदिण मुंचेसि, मुहं दे पाडिअ मुंचावइस्सं एशे एशे दुट्ठअश्शे परिब्भटे आ अच्छेदि" इस गद्य में चन्दशब्द चन्द्रगुप्त मौर्य का और राहु राक्षस का प्रतीक है। इस प्रतीक के आधार पर भास को ई० पू० चतुर्थ शती का माना है।

भास के नाटकों के भरत-वाक्य में राजसिंह पद आया है और मौर्य राजा राजसिंह कहे जाते थे। अशोक ने सारनाथ के स्तम्भ में तीन सिंहों को प्रतीक रूप में अङ्कित किया है। तीन सिंहों का प्रतिनिधित्व चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक करते हैं। इन तीनों मौर्य्यवंशी राजाओं के प्रताप की सूचना सिंहों से होती है। अय्यर की दृष्टि में चन्द्रगुप्त ही राजसिंह है। चाणक्य की प्रतिज्ञा के समान यौगन्धरायण की प्रतीज्ञा होने से ये दोनों समसामयिक हैं। जीवसिद्धि के साहाय्य से चाणक्य ने पाटलिपुत्र पर अधिकार किया, यौगन्धरायण ने

श्रमणक के सहयोग से उज्जयिनीनरेश प्रद्योत को अधीनस्थ किया। चन्द्रगुप्त का विवाह नन्दवंश की कुमारी दुर्धर से कराया है, यह विवाह पद्मावती की ओर संकेत करता है। नीलगिरि हाथी की प्रतीकात्मकता पौरुष के प्रसिद्ध हाथी की समकक्षता को उपस्थित करता है। भारत में शत्रु की सेना के शान्त होने की चर्चा सेल्युकश की सेना के दमन करने की ओर निर्देश करती है। इस प्रकार भास के साथ कौटिल्य के सिद्धान्तों का समन्वय होने से ईसा से पूर्व चतुर्थ शताब्दी इनका समय अय्यर ने माना है।

अय्यर ने अपने भास के उक्त काल के समर्थन में यह भी कहा है कि हिमालय से विन्ध्यपर्वत पर्यन्त और आसमुद्र पृथ्वी पर चन्द्रगुप्त का राज्य था, इसी को राजसिंह कहा गया है।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'महाकवि भास' में अय्यर के इन सिद्धान्तों की अवतारणा कर भास और चाणक्य के द्वारा प्रस्तुत चित्रण के आधार पर भास को चाणक्य से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है।

इसी प्रकार पुसाल्कर ने राजसिंह को नन्दवंश के लिए प्रयुक्त माना। स्टेनकोनों ने राजसिंह को क्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम से समन्वय किया है। ध्रुव ने, शुंगवंशीय पुष्यमित्र से समन्वय किया है, जायसवाल ने कण्वनारायण और मिडे ने इसको उदायी माना है।

नाटक के भरत-वाक्य के आधार पर विन्ध्य और हिमाचल से संवेष्टित समस्त उत्तरी भारत किसी एक राजा के अधीन था यह स्थिति पूर्व चतुर्थ शताब्दी की है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य प्रथम सम्राट् के समय की है। अतः, हरप्रसाद शास्त्री ने राजसिंह के रूप में नन्दवंश के किसी राजा से की है, अतः भास का ई० पू० चतुर्थ शताब्दी होना चाहिए।[१]

सामाजिक और राजनीतिक विभिन्न स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डॉ० शास्त्री ने भास को ४–३ ईसा पूर्व माना[२] है।

---

१. महाकवि भास पृ० ३१।

2. A. C. Pushalkar. Bhasa–A study. P. 70-79।

डॉ० विण्टरनित्स ने कालिदास की भाषा और शैली के सान्निध्य के कारण अश्वघोष का समय ईस्वी की द्वितीय शती और भास को तृतीय शती का माना है।

डॉ० कीथ ने कालिदास के उल्लेख के आधार पर भास को अश्वघोष और कालिदास का मध्यवर्ती माना है। कालिदास को चतुर्थ शतक का मानने पर भास को ३५० वर्ष से पूर्व मानना पड़ेगा।

स्टेनकोनों ने विण्टरनित्स के विरुद्ध भासको ईसा की द्वितीय शती का माना है।

डॉ० दासगुप्त ने गणपतिशास्त्री एवं अन्य विदेशीय मनीषियों के विचार की आलोचना करते हुए भाषा और शैली के आधार पर भास अश्वघोष तथा कालिदास का मध्यवर्ती माना है[1]। क्षत्रप राजाओं के आश्रित होने के कारण श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कथावस्तुओं के निर्वाह में ये अधिक सफल रहे हैं। स्टेनकोनों ने क्षत्रपों का समय ईसा का द्वितीय शतक है, अतः इसी समय नाटककार भास की स्थिति होनी चाहिए, प्रथम रुद्रसिंह के समय में ही भास का जन्म माना है।

डॉ० ए० पी० बनर्जी ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० के मध्य में माना है, अर्थात् दूसरी शती के बाद और तीसरी शती से पूर्व इनका समय माना है, क्योंकि ये ब्राह्मण धर्म और विष्णु के उपासक थे।[3]

प्रदर्शित सूक्तियों के आधार पर भास का समय कालिदास से पूर्व निर्विवाद सिद्ध है। अनेक मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भास का समय ईसा पूर्व ३२७ के लगभग माना है। इसकी पुष्टि वर्णित

---

1. S. N. Dasa Gupta, History of Sanskrit Literature p. 172।

2. Stenkonow :—India Drama P. 5।

३. दि जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी भाग—१, मार्च १९२३।

समाज-व्यवस्था के आधार पर भी होती है। अर्थात् ई० पू० चतुर्थ शती में अधिक आग्रह है[1]।

डॉ० सूर्यकान्त ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० माना है।

डॉ० कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग ने ई० पू० ५०० इनका जन्म-काल माना है। यह सत्य है कि भास के समय तक पाणिनि का वर्चस्व प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। कौटिल्य अर्थशास्त्र की भी चर्चा नहीं है, महेश्वर प्रणीत योगशास्त्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु, पातञ्जल योगशास्त्र की अवगति इनको नहीं थी। मानवीय धर्मशास्त्र सम्भवतः गौतम लिखित मानव धर्मशास्त्र का बोधक हो सकता है। प्रतिमानाटक की पंक्ति में इन शास्त्रों की चर्चा उपलब्ध है। "भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये मानवीयं धर्मशास्त्रं, महेश्वरं योगशास्त्रम्, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्, प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।"

इन प्रदर्शित तथ्यों के आधार पर भास को ईसा पूर्व तृतीय शतक से चतुर्थ शतक में मानना अनुचित नहीं है।

टी० कृष्णमाचारी ने अपना विशेष निर्णय प्रस्तुत किये बिना ही गणपति-शास्त्री का मत प्रदर्शन करते हुए उपसंहार किया है।

भास का जीवनवृत्त

प्राचीन कवियों के समान ही भास ने अपने नाटकों में अपने नाम तक की चर्चा नहीं की है। किम्वदन्तियों के आधार पर कुछ कहा जा सकता है, किन्तु, वे किम्वदन्तियाँ सर्वथा निराधार-सी प्रतीत होती हैं। धावक के नाम से भास की प्रसिद्धि मानी गई है, किन्तु, श्रीहर्ष और भास के समय में इतना अन्तराल है कि इनको समकालीन माना ही नहीं जा सकता है।

एक परम्परा के अनुसार व्यास और भास की प्रतिष्ठा के लिए मतभेद की चर्चा की गई है। दोनों अपने को विशिष्ट प्रतिभाशाली मानते थे। निर्णय के लिए दोनों के ग्रन्थों को अग्नि में अर्पित किया गया, किन्तु भास का

१. महाकवि भास पृ० ४२।

स्वप्नवासवदत्तम् अग्नि में दग्ध नहीं हो सका और अन्य नाटक अग्नि में दग्ध हो गये। इसकी पुष्टि राजशेखर की इस उक्ति से मानी जाती है—

भासनाटकचक्रेऽपि क्षेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

इस उक्ति से यह तो सर्वथा सुनिश्चित है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' एक श्रेष्ठ नाटक है, जो आज भी मनीषियों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। डॉ॰ राजा ने अपने लेख के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है[1]।

प्रस्तुत श्लोक की भिन्न व्याख्या भी डॉ॰ राजा ने प्रस्तुत की है। उनके कथन का सारांश है कि भास के नाटकों में दैहिक दृश्यों का बाहुल्य है, अतः उन दृश्यों के दहन के साथ वे सब भस्मावशेष रह गये, किन्तु, 'स्वप्नवासवदत्तम्' नहीं जल सका। इस व्याजस्तुति के द्वारा 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के सम्मुख सौमिल्ल आदि के नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से स्थिर न रह सके। स्वप्नवासवदत्तम् काव्यकला-कसौटी पर खरा उतरता है। यह एक ऐसा नाटक है जहाँ जीवनाधायक तत्त्व समुपलब्ध हैं। भारतीय नारी और आमात्य की कर्तव्य-सवेदन-शीलता सुलभ है।

भास-व्यास-कलह में भी अनेक कृतियों के लेखक एवं वैदुष्य तथा कवित्व शक्ति का वैभवतादात्म्य प्रदर्शित कर दृश्य काव्य की रचना के द्वारा भास का वर्चस्व व्यक्त किया गया है।

प्रो॰ ध्रुव ने गोत्र के आधार पर प्रसिद्धि मानकर अगत्स्य गोत्र के हेमोदक शाखा के 'भाष' गोत्र में महाकवि का जन्म होने से उसी के अपभ्रंश के रूप में

---

1. It is interesting to see how Dr. Raja Comes to the meaning. Bhasa's dramas contained Conflagrati on Scenes. These fires burnt all other dramas. But Svapana alone remained safe. So according to this interpretation the Svapna was a rival to Bhasa's works.

Journal of oriental Research, Madras, 1, P. 227.

'भास' है। ये ब्राह्मण जाति के तथा प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे। कर्णभार के प्रथम के २२-२३ पद्यों के द्वारा यज्ञानुष्ठान, गो, ब्राह्मण का महत्त्व प्रदर्शित हो रहा है, अतः इनको ब्राह्मण मानना समीचीन प्रतीत होता है।

भास, पिता, पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव, सद्गृहस्थ की मर्यादा से पूर्ण परिचित ही नहीं, वैदिक संस्कृति के प्रति इनकी अपार श्रद्धा भी थी। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों का समन्वय इनके जीवन में था, इसीलिए—

"चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः" (स्व० १।४) भाग्यपंक्ति पहिए के आर की भाँति निम्नोन्नत होती रहती है।

"सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥"

(प्र० यो० १।१२)

भास का जन्मस्थान

काल और वंश के समान ही इनके जन्म-स्थान के विषय में भी कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। कवि के भौगोलिक एवं स्थानविशेष के प्राकृतिक चित्रण के परिप्रेक्ष्य में उसके लिए किसी स्थान-विशेष का निर्णय करना भ्रान्तिविजृम्भित ही मानना होगा। क्योंकि, क्रान्तद्रष्टा अपनी प्रतिभा के प्रबोध में सम्पूर्ण विश्व का साक्षात्कार करता है। असत्व के आपादक आवरण को कवि अपनी शब्दधारा से हटाकर निरावृत्त विश्व का ज्ञान रखता है। अभानापादक आवरण की निवृत्ति के लिए रसादि की आवश्यकता रहती है। अतः नाटक में वर्णित उज्जयिनी, मगध और बदरीनाथ इन स्थानों में से किसी एक को उन्होंने अपने जन्म से अलंकृत किया है—यह इसके लिए कोई बहुत बड़ा आधार नहीं है। कृष्णचरित्र, रामचरित्र और उदयनचरित्र का वर्णन अयोध्या, मथुरा, मगध, उज्जयिनी को छोड़कर कैसे सम्भव है?

किन्तु उपक्रम और उपसंहार वाक्य के आधार पर उसका स्थान-विशेष के प्रति आग्रह अभिव्यक्त होता है।

मेरे राजसिंह महाराज उदयन समुद्र तक विस्तृत हिमाचल और विन्ध्या-

चल रूपी दो कर्णकुण्डलों से युक्त एक श्वेतपत्र से चिह्नित सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करें (स्वप्नवा० ६।१६।) ।

आरम्भ में बलराम का स्मरण एवं द्वितीय पद के द्वारा मगधराज का स्मरण इन तीनों स्थानों पर केन्द्रित होने की बाध्यता उपस्थित करता है। पुनः मगध के अनेक स्थानों का तपोवन एवं प्रशस्ति की दृष्टि से अभ्यास मगध के प्रति कुछ सोचने को बाध्य करता है। साथ ही आगत आपत्तियों के उद्धार में एकमात्र सहायक मगध का महत्त्व प्रतिक्षण वर्द्धमान है प्रथम अङ्क की समाप्ति में वासवदत्ता का कञ्चुकी के साथ गमन के समय उसी मगध का वर्णन सुलभ है।

द्वितीय अङ्क में भी मगध की पद्मावती का ही वर्णन है। आश्चर्य की बात है 'स्वप्नवासवदत्तम्' की रचना और आरम्भ में उसमें पद्मावती का चरित्र परिव्याप्त है। वासवदत्ता के विवाह की चर्चा भी कवि मञ्च पर प्रदर्शित नहीं करता है। वासवदत्ता के चरित्र में यदि पद्मावती का हस्तावलम्बन एवं न्यास परिरक्षण तथा कर्तव्य-परायणता परिव्याप्त न हो तो 'स्वप्नवासवदत्तम्' का स्वरूप ही नहीं रहेगा। अतः कवि का मगध एवं मागध के प्रति पक्षपात सुस्पष्ट है। मगध के प्रति कवि को इतना अधिक आदर है कि वह वासवदत्ता से उत्तराकुरु की अनुभूति मगध में करा देता है। विवाह के कारण विजयप्राप्ति मगध की राजनीति का संकेत देता है। नक्षत्र, मुहूर्त आदि का भास के नाटकों में महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। यह प्राचीन परम्परा होती हुई मगध से सम्बद्ध है। मगध का वर्चस्व एवं अतिशय आदर भावना इनको मागध होने का संकेत देती है।

उज्जयिनी—ईसा से पूर्व उज्जयिनी की प्रसिद्धि हो चुकी थी, मौर्यकाल में यह समृद्ध नगरी थी। महासेन प्रद्योत वहाँ का राजा बुद्ध के समय वहाँ वर्तमान था। उज्जयिनी के प्रति ममता का आधिक्य एवं वहाँ साधारण स्थानों की अवगति उनको वहाँ का होना सिद्ध करती है, किन्तु, यह सत्य है कि मगध की कृपा के बिना उज्जयिनी का वर्चस्व सुरक्षित नहीं रह सका और पद्मावती

के साथ विवाह कर उदयन एवं उज्जयिनी की रक्षा सम्भव हो सकी। अतः अनेक तर्कों के आधार पर इनको मगध का ही माना जा सकता है। किन्तु निश्चित रूप में भारतीय से अधिक कहना कठिन है।

काव्य में रूपक की श्रेष्ठता

काव्य के मुख्यतः दो भेद माने गये हैं—श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य में शब्दों के पठन या श्रवण से पाठकों या श्रोताओं के हृदय में रस का सञ्चार होता है किन्तु दृश्यकाव्य में शब्दों के अतिरिक्त पात्रों की वेश-भूषा, उनकी आकृति और भाव-भंगी तथा क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अभिनय द्वारा दर्शकों को भाव-विभोर किया जाता है। इस प्रकार श्रव्य-काव्य श्रवणों के माध्यम से एवं दृश्य-काव्य नेत्रों के माध्यम से सहृदयों का हृदयावर्जन करता है किन्तु यह भी सत्य है कि कानों से सुनी गई बात की अपेक्षा आँखों देखी बात अधिक रोचक और चित्ताकर्षक होती है। अतः श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य अधिक रोचक, अधिक रमणीय एवं अधिक मनोज्ञ होता है। इसीलिए भारतीय मान्यता के अनुसार, काव्य में रूपक की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए कहा गया है--"काव्येषु नाटकं रम्यम्।" वस्तुतः अहृदयों को सहृदय बनाने की पूर्ण क्षमता रूपकों मे ही हुआ करती है।

संस्कृत रूपक-जगत् में भास का स्थान

संस्कृतसाहित्य में भास बहुत ही उच्च एवं गरिमापूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठापित हैं। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में, बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में तथा राजशेखर ने 'कविविमर्श' में भास का स्मरण बहुत ही आदर के साथ किया है। जयदेव ने अपने 'प्रसन्नराघव' में भास को कविताकामिनी का हास कहा है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई कवियों एवं विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में भास का उल्लेख अत्यधिक समादर भाव के साथ किया है, जिससे सिद्ध होता है कि भास की ख्याति संस्कृत-साहित्य में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। भास अपने रूपकों में—अभिनय का सौकर्य, सुबोध, सरल एवं संक्षिप्त वाक्यों का प्रयोग, कथोपकथन की

विस्तारहीन तथा सरस पद्धति, चरित्रचित्रण की निपुणता एवं अप्रतिम कवित्व आदि विविध नाटकीय गुणों के कारण पाठकों, श्रोताओं एवं दर्शकों के स्तुत्य हो गये हैं। भास के नाट्यवैशिष्ट्य के सम्बन्ध में आगे और अधिक विचार किया जायगा।

भास का नाट्य-कौशल

महाकवि भास संस्कृत नाट्य-साहित्य के प्रवीण पुरोहित हैं। भास के नाटकों में जो विशेषतायें उपलब्ध होती हैं उनका अनुशीलन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि एक सफल नाटककार के लिए अपेक्षित सारे गुण-समवेत रूप से उनमें विद्यमान हैं। कथावस्तु का सम्यक् समायोजन, पात्रों का सजीव चित्रण, रसानुकूल अलङ्कारों का निबन्धन, अभिनय का सौकर्य, कथोपकथन की अत्यन्त सरल शैली, भावों की स्फुट अभिव्यक्ति आदि विविध मानदण्डों के आधार पर भास संस्कृत नाटककारों की पंक्ति में अन्यतम स्थान पर सुप्रतिष्ठित हैं।

भास के नाटकों के पात्र जीवन की गहनतम व्यावहारिक अनुभूतियों एवं हृदय की संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ हैं। स्वप्नवासवदत्त का उदयन यदि प्रेम के प्रति आत्यन्तिक समर्पण का प्रतीक है तो वासवदत्ता उसी प्रेम के लिए उत्कृष्ट त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। पद्मावती यदि आदर्श की प्रतीमा है तो मंत्री यौगन्धरायण कर्त्तव्यनिष्ठता का देदीप्यमान मूर्ति है। विदूषक तो पाठकों को हास्य की वह मीठी बुकनी परोसता रहता है जिस पर गम्भीर से गम्भीर लोगों की भी सारी गम्भीरता हजार जान से निछावर हो जाती है। तो यह है भास की उत्कृष्ट चरित्रचित्रण-निपुणता का भव्य निदर्शन।

भास अत्यन्त भावुक कवि हैं। किसी कवि की भावुकता का पता लगाना हो तो यह देखना चाहिये कि कवि अपनी कृति में मार्मिक स्थलों को कहाँ तक पहचान सका है। भास इस क्षेत्र में पूर्ण सिद्धहस्त हैं। विरह-व्याकुल उदयन की मनोव्यथा के वर्णन में कवि ने अपनी मर्मज्ञता का जो परिचय दिया है वह नितान्त हृदयावर्जक है—

"नैवेदानीं ताहशाश्चक्रवाका:, नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ता: ।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता, भर्तृस्नेहात् सा च दग्धाऽप्यदग्धा ॥"

(स्वप्न० १३।१)

उपर्युक्त पद्य के "नैवेदानीं ताहशाश्चक्रवाका:" इस पंक्ति में उदयन की जिस दशा का वर्णन किया गया है वह निश्चय ही किसी भी सहृदय के हृदय में करुणा का सञ्चार करने के लिए पर्याप्त है। इसी प्रकार षष्ठ अङ्क के प्रारंभ में घोषवती वीणा को उपालम्भ देते हुए उदयन द्वारा कहे गये निम्न पद्य भी मार्मिक भावों की अभिव्यञ्जना में नितान्त सफल रहे हैं--

'श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्या: स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ (६।१)
श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मा च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥"

(६।२)

तथा,

चिरप्रसुप्त: कामो मे वीणया प्रतिबोधित: ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ (६।३)

तृतीय पद्य के "तां तु देवीं न पश्यामि" से जो विकलता टपक रही है उसे यदि मार्मिकता की पराकाष्ठा कहें तो प्राय: अत्युक्ति नहीं होगी।

भास के नाटक

भास के तेरह नाटक प्रसिद्ध हैं। डॉ० पुसाल्कर ने शैली, संवाद आदि के आधार पर कृतियों का अधोलिखित क्रम प्रस्तुत किया है।

१. दूतवाक्य। २. कर्णभार, ३. दूतघटोत्कच, ४. उरुभंग, ५. मध्यमव्यायोग, ६. पञ्चरात्र, ७. अभिषेक, ८. बालचरित, ९. अविमारक, १०. प्रतिमा, ११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १२. स्वप्नवासवदत्तम् और १३. चारुदत्त।

विषय, शैली एवं निरूपण-पद्धति आदि के आधार पर भास की रचनाओं का अय्यर ने इस प्रकार क्रम निर्धारण किया है--

१ दूतघटोत्कच, २. कर्णभार, ३. मध्यमव्यायोग, ४ उरुभंग, ५. दूत-वाक्य, ६. पञ्चरात्र, ७. बालचरित, ८. अभिषेक, ९. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १०. अविमारक, ११. प्रतिमानाटक, १२. स्वप्नवासदत्तम्, १३. चारुदत्त।

दूतघटोत्कच—यह नाटक महाभारत की कथा पर आधृत है। कथानक को लेकर अपनी प्रतिभा-प्रसूत घटनाओं का मिश्रण कर रोचक रूप में उपस्थित किया है। हिडम्बापुत्र घटोत्कच कृष्ण का दूत बनकर कौरव-सभा में आता है। दौत्यप्रधान होने से इसका दूतघटोत्कच नाम दिया गया है। इसकी कथानक कविकल्पना-प्रसूत है। घटोत्कच का कृष्णदूतरूप में आना महाभारत में उपलब्ध नहीं है इसकी प्रधानता के आधार पर इसका यह नाम दिया गया है।

अभिमन्यु की मृत्यु के बाद दूत घटोत्कच धृतराष्ट्र के सम्मुख उपस्थित होता है और युद्ध का भयंकर फल सूचित करता है. दुर्योधन व्यंग्य करता है, घटोत्कच भी वैसा ही उत्तर देता है। दोनों अशान्त हो जाते हैं, घटोत्कच युद्ध के लिए ललकारता है। धृतराष्ट्र किसी प्रकार शान्त करते हैं। अभिमन्यु का बदला अर्जुन लेगा इस सूचना के साथ घटोत्कच चला जाता है।

कर्णभार—महाभारत के आधार पर इस रूपक की रचना हुई है। महाभारत की कथा के अनुसार कर्ण का यह नियम था कि वह मध्याह्न में जल के मध्य खड़ा होकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर ब्राह्मणों को दान देता था। इस अवसर पर उसके लिए अदेय कुछ भी नहीं था। इन्द्र ने इसी अवसर पर ब्राह्मण रूप में उपस्थित होकर भिक्षा के रूप में कवच की याचना की।

कविवर भास ने इस कथा को अपनी कल्पना के रूपक के अनुरूप सङ्कलित किया है। वह जल में उपस्थित नहीं वरन् रथ पर आरूढ़ अर्जुन के साथ युद्ध के लिए तत्पर हो अर्जुन के सम्मुख रथ ले जाने के लिए आदेश देता है। शल्य और परस्पर वार्तालाप के प्रसङ्ग में कर्ण अपने शाप के विषय की सूचना देता है। शल्य को दुःखी देखकर कर्ण युद्ध के गुणों का वर्णन करता है और यह कहता है कि युद्ध में मरने पर स्वर्ग और विजयी होने पर यश और राज्य की प्राप्ति होती है।

महाभारत की कथा में कर्ण स्वयं इन्द्र से शक्ति की याचना करता है, किन्तु भास का कर्ण उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित है, अतः, वह स्वयं प्रतिदान की इच्छा व्यक्त नहीं करता है, देवदूत ब्राह्मण के वचन के पालन के लिए शक्ति को ग्रहण करने के लिए कहता है, और कर्ण इस अनुरोध को ठुकरा नहीं पाता है। आश्चर्य की घटना है कि विप्रवेशधारी इन्द्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है।

डॉ० भट्ट के अनुसार महाकवि भास ने कर्ण की कथा में नवीन कल्पना-प्रसूत विषयों का सन्निवेश कर कर्ण का स्वरूप प्रदर्शित किया है इसका अङ्गी-कृत रस करुण है।

मध्यमव्यायोग—इस नाटक की रचना कुन्ती के मध्यम पुत्र भीम को आधृत कर एकांकी रूपक में की गई है। इस कथावस्तु का मूल स्रोत प्रथम अध्याय के १५ - ५५ सर्ग में है। महाकवि भास ने महाभारत की कथा को विशिष्ट प्रभावपूर्ण शैली से निबद्ध कर अतिशय मनोहर बना दिया है। घटोत्कच का अपने अज्ञात पिता से युद्ध और हिडिम्बा सम्मेलन कवि कल्पना-प्रसूत है। भीम और घटोत्कच के चरित्र को व्यक्त करते हुए ब्राह्मण परिवार को माध्यम चुना तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रभाव से मध्यम को समर्पित करने की दृष्टि प्राप्त की। घटना-प्रधान इस नाटक में कवि की प्रतिभा कथावस्तु के संयोजन से रस-प्रवाह में सक्षम है।

भास ने घटोत्कच और हिडिम्बा में मानव-स्वभाव का समावेश किया है। इस नाटक में भीम से मिलन के लिए ही यह षड्यन्त्र किया गया है। महाभारत में इतस्ततः विकीर्ण कथाओं को एक माला का रूप ही नहीं दिया वरन् अति हृदयावर्जक रूप दिया है। ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को लेकर घटोत्कच माता हिडिम्बा के पास जा रहा है, पानी पीने गये हुए मध्यम को वह बुलाता है और मध्यम पुत्र भीम उपस्थित होता है और युद्ध के बाद हिडिम्बा के सम्मुख जाते ही वह पहिचान लेती है। भीम की उदारता आत्म-समर्पण की भावना के प्रदर्शन में कवि ने अपनी कुशल काव्य-प्रतिभा का अपूर्व सन्निवेश किया है। जिससे द्रष्टा सर्वथा एकतानहृदय से आनन्द की अनुभूति करता है

जो कुशल शिल्पी ने ही प्रस्तर को काँट-छाँटकर अपूर्व लावण्य की अभिव्यक्ति की है।

उरुभंग—नाटक की कथा का मूल आधार महाभारत है भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध का वर्णन मिलता है। भीम दुर्योधन की गदा के प्रहार से मूर्च्छित हो जाता है किन्तु, सहसा उठकर भीम उस पर आक्रमण करता है बलराम के क्रोध करने पर वह कहता है—मेरी उपस्थिति में मेरी उपेक्षा कर भीम ने मर्यादा के विरुद्ध दुर्योधन की जाँघ पर गदा का प्रहार कर उसे गिरा दिया है मैं इस अनीति को सहन नहीं करूँगा भीम का वक्षस्थल विदीर्ण कर इसे इसका फल दूँगा। इस प्रसङ्ग में दुर्योधन कहता है—भगवन्! भीम ने युद्ध मर्यादा का ध्यान न देकर जंघा पर गदा का प्रहार कर गिरा दिया है। मेरा शरीर अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है। आप प्रसन्न हों भूमि पर पतित मेरे इस मस्तक का प्रणाम स्वीकार करें, क्रोध शमन कर कुरुकुल में जलाञ्जलि के लिए पाण्डवों को जीवित रहने दें, वैर की अब आवश्यकता नहीं है। हम लोग अब समाप्त हो चुके।

बलराम ने कहा—तुम क्षणभर के लिए जीवन धारण करो मैं पाण्डवों का संहार कर तुम्हारी स्वर्ग-यात्रा में सहायक बन सकूँ।

गुरुदेव! भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी, मेरे सभी भाई मारे गये, मैं अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में हूँ, अब युद्ध से क्या लाभ है। बलराम ने कहा कि मेरे सम्मुख भीम ने छल से तुम्हें मारा इसका मुझे दुःख है। यदि आपको यह विश्वास है कि मैं छल से मारा गया हूँ तो मुझे पूर्ण सन्तोष है। मुझे तो क्षीरसागरशायी, पारिजात-हरणकर्ता लोकप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा में प्रविष्ट काल का ग्रास बनाया है।

धृतराष्ट्र और गान्धारी का आगमन होता है, प्रलाप के साथ दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन वीरोचित सान्त्वना देता हुआ, पत्नियों को अपना महत्त्व ख्यापन करता हुआ साहस प्रदान करता है। पुत्र दुर्जय को उपदेश देते हुए कहता है—प्रशंसितश्री अभिमानी दुर्योधन तुम्हारा पिता है यह सोचकर तुम दुःख त्याग करो। अश्वत्थामा का आगमन होता है और उसकी उत्तेजना-

पूर्ण बातों को सुनकर वह उनको विनय-पूर्वक समझाता है। अश्वत्थामा यह कहता है कि आज रात्रि में रण रचना कर पाण्डवों को समाप्त कर दूँगा। महाप्रयाण की यात्रा का आरम्भ एवं विचलित मुनिजन तपोवन में धृतराष्ट्र का प्रस्थान होता है।

दूतवाक्य—इसकी कथा महाभारत से ली गई है। उत्तरा और अभिमन्यु का परिणय हो चुका है। पाण्डवों का प्राप्तव्य दिलाने के लिए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की ओर से दौत्य कार्य सम्पन्न किया है। धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के आगमन पर राजसी स्वागत की तैयारी की, किन्तु कृष्ण कुन्ती के पास गये, दुर्योधन से मिले, उसके द्वारा प्रीति-भोज को अस्वीकार कर विदुर के घर रात्रि व्यतीत की। विदुर के साथ राजसभा में उपस्थित हुए। दाय-भाग देने का प्रस्ताव किया, किन्तु, दुर्योधन ने अस्वीकार कर दिया। गान्धारी ने भी बात मानने के लिए कहा, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया, कृष्ण को बन्दी बनाने की चेष्टा को धृतराष्ट्र ने रोका।

महाभारत की कथा को अपनी प्रतिभा से मिश्रित कर उपस्थित किया है। धृतराष्ट्र के स्थान पर दुर्योधन राजा है, कृष्ण को बन्दी बनाने के लिए सक्रिय चेष्टा उपलब्ध है। माता गान्धारी की बात की उपेक्षा कर सभा का परित्याग कर देता है। रंगमंच पर शरीरधारी शस्त्रों की अवतारणा महाकवि की प्रातिभ उद्भावना है। इस नाटक का कथोपकथन सरस और ग्राह्य है। सात्यकी के द्वारा अपने बन्दी बनाने की बात ज्ञातकर अपना विश्वरूप प्रकट करते हैं। जिसको देखकर दुर्योधन मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रसङ्ग में नाटकीय स्वरूप अपूर्व है। भास राजसिंह के एकछत्र राज्य की कामना इसके भरत-वाक्य से करता है। इसमें पुरुष-पात्र का बाहुल्य है। यह रूपक के भेद व्यायोग के अन्तर्गत है। श्रीगणपति शास्त्री ने इसका प्रधान रस धर्मवीर माना है और श्रीकृष्ण को नायक माना है। फलप्राप्ति दुर्योधन को होने से इस रूपक का नायक दुर्योधन को माना है तथा वीर रस माना गया है।

पञ्चरात्र—'पञ्चानां रात्रीणां समाहारः, अथवा पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेनास्य'—इस विग्रह के अनुसार पाँच रात की घटनाओं के वर्णन से प्रस्तुत यह

नाटक है। कुरुराज दुर्योधन एक बृहत् यज्ञ का आयोजन करता है। यज्ञ की समाप्ति पर आचार्य द्रोण से दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की जाती है। द्रोण पाण्डवों के लिए आधे राज्य को देना ही अपनी दक्षिणा के रूप में मानता है। अस्वीकृति की मुद्रा से द्रोण क्रुद्ध हो जाते हैं। शकुनि से विचार के पाँच रात्रि के अन्दर पाण्डवों का पता लगने पर राज्य का अर्ध देने की स्वीकृति देता है। यह रूपक तीन अङ्क का है।

इस रूपक की कथा महाभारत विराट् पर्व से ली गई है। कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान होने पर भीम ने कीचक का वध किया था। कौरवों ने रुष्ट होकर विराट पर आक्रमण किया और उसके गोधन को हरण किया।

महाकवि ने इसी कथा को नाटकीय शैली के द्वारा रोचक एवं परिपुष्ट कर प्रस्तुत किया है। सूई के अग्रभाग को भी न देने वाला नाटककार का दुर्योधन गुरु की आज्ञा से आधा राज्य देने को तत्पर है।

इस नाटक में महाकवि ने अपनी प्रतिभा के आधार पर निम्नलिखित परिवर्तन के द्वारा इसकी प्रेषणीयता में मणिकाञ्चन-संयोग प्रस्तुत कर दिया है—

(१) महाभारत में दुर्योधन के यज्ञ की चर्चा नहीं है, महाकवि की यज्ञ की कथा ने अपूर्व चमत्कार सम्पन्न कर दिया है।

(२) यज्ञ का प्रधान आचार्य द्रोण को बनाया है तथा यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन द्रोणाचार्य को दक्षिणा के लिए आग्रह करता है और आचार्य पाण्डवों को अर्द्धराज्य दिलाने के रूप में आग्रह-पूर्वक दक्षिणा स्वीकार करते हैं। आचार्य अपने आचार्यत्व का इस दिशा में प्रयोग करते हैं। इस प्रयोग ने नाटक में एक अपूर्व समन्वय प्रदर्शित किया है।

(३) शकुनि द्रोणाचार्य की दक्षिणा को प्रवञ्चना कहता है। उसका विरोध करता है, अन्त में पाँच दिनों में पाण्डवों की प्राप्ति के साथ राज्य का अर्द्धभाग देने की स्वीकृति देता है।

(४) अभिमन्यु विराटनगर में अत्यधिक पराक्रम प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार इस रूपक में अतिशय मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए कवि ने कथावस्तु को अपूर्व सरसता से मनोग्राह्य कर दिया है।

बालचरित—इस रूपक में भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का समायोजन किया गया है—इसीलिए इसका नाम बालचरित रखा गया है। इस रूपक में शृंगार की घटनाओं का सर्वथा अभाव है। 'शृंगार के बिना बाललीला' यह भास की प्रतिभा से ही संयोजित हुआ है। राधा का भी प्रवेश इसमें नहीं हुआ है। यह रूपक पाँच अङ्कों में सम्पन्न होता है।

इस नाटक की कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत एवं महाभारत के हरिवंश एवं पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण-कथा है। कथावस्तु को नाटकीय स्वरूप प्रदान करके अपनी काव्य-प्रतिभा, कल्पना एवं मौलिक उद्भावना के साथ अतिशय रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। भास ने गोप की पुत्री को मृत दिखाकर एक अपूर्व वैशिष्ट्य समाहित किया है। मृतपुत्री को परित्याग करने वाला पुत्री के स्थान पर दैवगति से पुत्र को प्राप्त कर ले, इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी। श्वासगति के अवरोध से मृत घोषित की गई यदि श्वास-सञ्चार से पुनः जीवित हो गयी तो योगमाया के लिए क्या आश्चर्य है। वासुदेव और नन्दबाबा की वार्ता भी नाटक में एक विशिष्ट स्थान रखती है। नाटककार की दृष्टि में कृष्ण सातवाँ पुत्र है, आठवाँ नहीं। नाटक की दृष्टि से कथा में क्रम-भेद भी किया गया है, श्रीकृष्ण को नन्द को समर्पण के समय रात्रि का पर्यवासन है। मथुरा में आगमन के समय सभी निद्रानिमग्न हैं। गोपकुमारियों को श्रीकृष्ण के पराक्रम के विश्लेषण के प्रसंग में अपनी कल्पना को अतिशय चमत्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ रूपक एक अनूठा और अतिशय चमत्कृति-सम्पन्न है।

अभिषेक—इस रूपक में सुग्रीव और अभिषेक का वर्णन किया गया है, अतः, इसका नाम अभिषेक किया गया है। रामायण की कथा कतिपय प्रातिभ परिवर्तनों के साथ लोक के सम्मुख राम के उदात्त चरित्र की अवतारणा की गई गई है।

इसकी कथा का आधार वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लेकर

लङ्काकाण्ड के उत्तरार्द्ध की कथा है। कथा बहुचर्चित एवं सकलजन विदित है। रामायण की मूल कथा में परिवर्तन भी किया गया है। सुग्रीव और बालि का द्वन्द्व युद्ध एक ही बार प्रदर्शित किया गया है। प्रचलित कथा के अनुसार नल नील के द्वारा समुद्र बन्धन हुआ है किन्तु महाकवि ने भयभीत वरुण देव के द्वारा समुद्र के जल को सुखाकर बीच से मार्ग दिया है। भास के अनुसार जटायु से समाचार जानकर हनुमान ने समुद्र पार किया था, राम से सुग्रीव के मिलने से पूर्व भेंट नहीं होती है। तारा उसे मरते हुए नहीं देखती है। इस नाटक में छ अङ्क हैं। सीताहरण के बाद की कथा इसमें ली गई है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह नाटक स्वप्नवासवदत्तम् का पूरक है अतः इसका विशिष्ट परिचय प्रदान करना उचित प्रतीत होता है। यह एक सफल रूपक है। इस नाटक में चार अङ्क हैं। इसकी शैली हृदयाकर्षक है। कथा के विन्यास में किसी प्रकार का गतिभङ्ग नहीं है। सूच्य भागों का सन्निवेश अतिशय लावण्याधान से अंकित किया गया है। मनोवैज्ञानिक ढङ्ग पर कर्तव्य की कसौटी पर विशुद्ध चरित्र इसमें दिये गये हैं, जिनका आद्यन्त निर्वाह करने में महाकवि सर्वथा सफल है। आत्मविश्वास का सम्बल नीति के प्रसार में आरोह अवरोह क्रम से सन्निविष्ट है। इस नाटक का नाम इसकी विशेष घटनाओं के आधार पर दिया गया है। प्रद्योत ने वत्सराज को बन्दी बना लिया है, इसकी अवगति होते ही अमात्य यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है—यदि वत्सराज को मैं नहीं छुड़ा लेता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इस प्रतिज्ञा के सफल होने से पूर्व ही नवीन घटना प्रस्तुत होती है—उदयन बन्दीगृह से वासवदत्ता को लेकर ही भागना चाहता है। इस वृत्तान्त को जानकर पुनः प्रतिज्ञा करता है—जिस प्रकार अर्जुन सुभद्रा का हरण किया था, उसी प्रकार वासवदत्ता का हरण नहीं कराया तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इन प्रतिज्ञाओं से अतिरिक्त वह प्रतिज्ञा करता है कि घोषवती वीणा, भद्रवती हस्तिनी एवं वासवदत्ता का हरण नहीं करा देता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इन्हीं प्रतिज्ञाओं के कारण इसका नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण है।

रूपक की कथावस्तु का मूल गुणाढ्य की बृहत्कथा की, उदयन और

वासवदत्ता की प्रेम कथा है। कथा-सरित्सागर में रुमण्वान् और यौगन्धरायण मन्त्रियों के नाम हैं, जो यहाँ भी गृहीत हैं। राजा वासुकि द्वारा दी गई घोषवती वीणा के मधुर स्वरों से मदोन्मत्त हाथियों को अपने अधीन करता था। किसी उच्च कुल की कन्या के साथ इसका विवाह सम्पन्न करना चाहता था। वासवदत्ता गुणसम्पन्न एवं उच्च कुल-प्रसूता कन्या थी। महासेन प्रद्योत विरोधी होने से उदयन से वासवदत्ता का विवाह सम्भव नहीं था। उदयन वनों में हाथियों को अधीन करने के लिए विचरण करता रहता था। प्रद्योत ने सोचा कि उदयन को पकड़ कर ले जाने के बाद वासवदत्ता का शिक्षक बनाकर उसके साथ प्रेम हो जाने पर उसको अपना अधिकृत जामाता बना लूँगा। एक नीलहस्ती के समान कृत्रिम हाथी का निर्माण कराकर योद्धाओं को उसमें छिपाकर विन्ध्याचल के अरण्य में रखवा दिया। नीलगिरिहस्ती की सूचना प्राप्त कर उसको पकड़ने के लिए जाता है और वह बन्दी बना लिया जाता है और वह संगीत शिक्षक के रूप में रहने को बाध्य होता है। दोनों का प्रेम प्रगतिशील होता है। यौगन्धरायण रुमण्वान् आदि मन्त्रियों पर राज्य-रक्षा का भार समर्पित कर वसन्तक के साथ वत्सराज को मुक्त कराने के लिए चल पड़ता है। और उदयन को वासवदत्ता के साथ ले आता है।

महाकवि भास के नाटक में अनेक परिवर्तनों के साथ अतिशय रोचक शैली में इसे प्रस्तुत किया गया है। पूर्वप्रदर्शित प्रतिज्ञाएँ कवि की प्रातिभ कल्पना-प्रसूत हैं। उदयन के उदात्त चरित्र की रक्षा के लिए प्रद्योत की सेना के साथ उदयन युद्ध करता है। उदयन का घोड़ा एक पैर पर खड़ा हुआ थककर गिर जाता है और सैनिकों से बन्दी बना लिया जाता है। महाकवि की यह कल्पना नाटक की दृष्टि से अतिशय महत्त्वाधायक है। महाकवि की कल्पना के अनुसार हंसक उदयन के साथ जाता है और लौटकर बन्दी बनाने की सूचना देता है। कवि की कल्पना के अनुसार उदयन को शक्तिशाली और सेना को शक्तिहीन सिद्ध किया है, यौगन्धरायण जादूगर के रूप में अपना वेश परिवर्तन नहीं करता है, अपितु द्वैपायन व्यास से प्रदत्त चमत्कारी वस्त्र के आधार पर वेश परिवर्तन होता है। नाटककार ने रुमण्वान् और

वसन्तक को भी सहायक के रूप में भेजा है। और उदयन के साथ वासवदत्ता के प्रेम को भी अभिव्यक्त किया है जिससे कथा में जीवनी शक्ति का सञ्चार होता है।

यह एक सफल तथा उन्नत कोटि का नाटक है। इस नाटक की रचना में महाकवि की कवित्वशक्ति निखार पर व्यक्त होती है और महाकवि को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करती है।

अविमारक—सौवीर-राजपुत्र अविमारक का चरित्र इस रूपक में वर्णित किया गया है। विष्णुसेन नामक होने पर अविरूपधारी असुर को मारने से यह अविमारक नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकरण रूपक में छ अङ्क हैं। इसकी कथा कवि कल्पना-प्रसूत है।

राजकुमार अविमारक और राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी की प्रेमलीला का वर्णन इसमें उपलब्ध है। अविमारक काशीराज की पत्नी सुदर्शना से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुआ है। सुदर्शना ने इसे सौवीरराज की पत्नी अपनी वहन सुलोचना को दे दिया था, अतिशय क्रोधी भार्गव के शाप से चाण्डालत्व प्राप्त सौवीरराज अपने परिवार के साथ प्रच्छन्न रूप में कुन्तिभोज की नगरी मे निवास करता था।

कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी उद्यान में घूमने गई थी वहीं उन्मत्त हाथी से अविमारक ने इसकी रक्षा की थी, इस पराक्रम प्रदर्शन से कुरंगी और अवि-मारक में प्रेम हो जाता है। काशीराज का दूत कन्या माँगने आता है। सौवीर-राज और काशीराज दोनों ही कुन्तिभोज के बहनोई थे, वह दुविधा मे पड़ जाता है, काशीराज के दूत का वह प्रत्याख्यान नहीं करता है। कुरंगी और अविमारक की स्थिति परस्पर प्रेम के कारण दयनीय होती जा रही है। उसकी सखी नलिनिका धायी के साथ अविमारक का पता लगाने निकल पड़ती है और अविमारक को अन्तःपुर में आने का आमन्त्रण दे आई। अपने पराक्रम पर विश्वास करता हुआ उसने इसे स्वीकार कर लिया।

अविमारक अन्तःपुर में छिपकर प्रविष्ट होता है। कुरंगी सो रही है। अविमारक उसी के पास बैठा है, अविमारक उसका आलिङ्गन करता है, चरित्र-पतन के भय से कांप जाती है, शान्त कर उसे शयनागार में ले जाता है।

इस प्रकार एक वर्ष प्रेमपूर्वक व्यतीत होता है, राजा सूचना से अवगत होता है। पकड़ाने के भय से निकल भागता है। वियोग से व्यथित वह आत्मघात के विषय में सोचता है। आत्महत्या के प्रसङ्ग में सस्त्रीक विद्याधर से भेंट होती है, सभी बातें ज्ञातकर एक अँगूठी देता है, जिसे बायें हाथ में धारण करने पर वह अदृश्य और दायें हाथ में धारण करने पर दृश्य हो सकता है। इस अँगूठी के बल पर पुनः प्रविष्ट होने का निश्चय किया।

अविमारक-वियोग-सन्तप्ता कुरंगी नलिनिका के साथ राजप्रासाद में बैठी है। अविमारक विदूषक के साथ वहाँ पहुँचता है, अविमारक अत्यधिक प्रसन्न है कुरंगी के दर्शन से। नलिनिका के जाने पर कुरंगी गले में फन्दा लगाकर आत्महत्या करना चाहती है। मेघ-गर्जन से भयभीत कुरंगी का अविमारक आलिङ्गन करता है।

धात्री से ज्ञान होता है कि काशीराजकुमार जयवर्मा अपनी माता सुदर्शना के साथ कुरंगी से विवाह करने के लिए कुन्तिभोज के यहाँ आते हैं। सौवीर-राज के उन्हीं के राज्य में निवास करने की सूचना भी प्राप्त होती है। सौवीर-राज मिलता है किन्तु उसका पुत्र नहीं मिलता है। इसी समय देवर्षि नारद उपस्थित होते हैं और अन्तःपुर में कुरंगी के साथ गान्धर्व विवाह पूर्वक निवास की सूचना देते हैं। कुन्तिभोज देवर्षि के निर्देशानुसार जयवर्मा के साथ कुरंगी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ विवाह से चिन्ता-मुक्त होता है।

शास्त्रीय दृष्टि से इसमें न्यूनता होने पर भी यह प्रकरण रोचक है।

प्रतिमा—इस नाटक की कथावस्तु इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं के प्रतिमा निर्माण की घटना से ली गई है। दशरथ की प्रतिमा को देखने से ही उनकी मृत्यु का परिज्ञान हो जाता है। सभी घटनाएं इसी पर आधृत हैं। राम के वनवास का बोध भी भरत को इसी घटना से होता है। इस नाटक में सात अङ्क हैं। राम के युवराज पद पर अभिषिक्त होने से आरम्भ कर चौदह वर्षों का वनवास व्यतीत करने के बाद अयोध्या में लौटने तक की घटना इसमें सन्निविष्ट है। राम के राज्याभिषेक के बाद यह नाटक समाप्त होता है। इस नाटक की कथा रामायण से गृहीत है। नाटकीयता और रस आदि की दृष्टि से

इसमें परिवर्तन किया गया है। इसमें कवि की प्रातिभ कल्पना इस प्रकार है—

(१) वल्कल परिधान कवि की कल्पना है। राम के मधुर गार्हस्थ्य जीवन के परिपोष की दृष्टि से यह प्रसङ्ग चारुतर हो गया है।

(२) राज्याभिषेक के अवसर पर शत्रुघ्न अयोध्या में ही उपस्थित है।

(३) नाटक के द्वितीय अङ्क में मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए दशरथ के सम्मुख उनके पूर्वजों की उपस्थिति प्रदर्शित की गई है।

(४) प्रतिमागृह की चर्चा कवि की कल्पना की देन है। भवभूति के उत्तररामचरित में चित्र-कल्पना पर इसका प्रभाव माना जा सकता है।

(५) मायामृग की कल्पना न कर नाटक की सजीवता की दृष्टि से काञ्चन-पार्श्व मृग की कल्पना की गई है और दशरथ के श्राद्ध के प्रसङ्ग में इस मृग के अन्वेषण के लिए राम को सीता से दूर हटाया गया है। रावण ने उपस्थित होकर अपने को श्राद्धकल्प चेतस् कहा है। श्राद्ध में सर्वोत्कृष्ट वस्तु की सूचना के प्रसङ्ग में काञ्चनपार्श्व मृग के द्वारा विहित श्राद्ध को सर्वोत्कृष्ट बताया है। रावण के सङ्केतानुसार मृग को पकड़ने के लिए जाना सीताहरण के लिए समीचीन अवसर की प्राप्ति है।

(६) सुमन्त्र का दण्डकारण्य-गमन और सीताहरण की सूचना—यह कवि की प्रातिभ कल्पना है। दुःखित भरत के द्वारा माता कैकेयी को उपालम्भ देने पर चौदह दिनों के बदले चौदह वर्ष का वनवास भ्रमवश कहा गया था। रावण के युद्ध में भरत की सेना की यात्रा भी कवि की कल्पना है। राम का राज्याभिषेक जन-स्थान में होता है। रावण-विजय के लिए सैन्य के साथ भरत भी वहीं उपस्थित होते हैं और रावण-विजय के समाचार से प्रसन्नता एवं कैकेयी की अनुमति से रामराज्य ग्रहण करने के लिए तैयार होते हैं और राज्याभिषेक होता है।

इस नाटक में करुण तथा वीर रस का सम्मिश्रण है, करुण की प्रधानता है। दशरथ की प्रतिमा-दर्शन से ही भरत मूच्छित होता है और राम के सम्मुख

भरत के द्वारा अपने लिए निर्घृण शब्द का प्रयोग अतिशय चित्तद्रुति का सम्पादक है।

स्वप्नवासवदत्त—पुरुवंश में उत्पन्न उदयन वत्सदेश का राजा था। वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी थी। उदयन वीणा-वादन-कला में निपुण था। उसके पास घोषवती नाम की एक वीणा थी जिसकी सहायता से वह मदमत्त हाथियों को भी वश में कर लेता था। वत्सराज्य की सीमा से ही सटा हुआ अवन्तिराज्य था जहाँ का राजा प्रद्योत था। प्रद्योत अपने प्रकृष्ट सैन्यबल के कारण महासेन भी कहा जाता था। एक बार प्रद्योत के सचिव शालङ्कायन ने छलपूर्वक राजा उदयन को हर कर बन्दी बना लिया तथा उसे कारागार में डाल दिया। प्रद्योत की एक पुत्री थी जिसका नाम वासवदत्ता था। वासवदत्ता परम-सुन्दरी, सुशील और गुणवती थी। उदयन के कला-कौशल से प्रभावित राजा प्रद्योत चाहता था कि उदयन का विवाह वासवदत्ता से हो जाय। इसी अभिप्राय से उसने उदयन को वासवदत्ता के वीणा-शिक्षक के रूप में नियुक्त कर लिया। वीणा-शिक्षण क्रम में ही वासवदत्ता एवं उदयन एक दूसरे के प्रति आसक्त हो गये। उदयन अवसर पाकर अपने चतुर मंत्री यौगन्धरायण के सहयोग से वासवदत्ता को अपहृत कर कौशाम्बी ले आया। कौशाम्बी आकर उदयन वासवदत्ता मे इतना खोया रहता कि उसे राज-कार्य की भी सुध-बुध नहीं रहती थी। उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाते हुए उसके एक शत्रु आरुणि ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उदयन से उसका राज्य छीन लिया। आरुणि से अपने राज्य को वापस लेने के लिए उदयन के मंत्री यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् किसी शक्तिशाली राजा की सहायता के अन्वेषण में थे। तभी ज्यौतिषियों से उन्हें ज्ञात हुआ कि मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह होगा। राजा उदयन वासवदत्ता को इतना अधिक चाहते थे कि वासवदत्ता के जीवित रहते किसी अन्य स्त्री के प्रति उनका आकृष्ट होना असंभव था। इस जटिलता का अनुभव कर यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् ने एक योजना बनाई। मगधराज की सीमा के पास एक गाँव था लावाणक। यौगन्धरायण उदयन को वासवदत्ता के साथ आखेट के लिए वहाँ ले गया। एक दिन जब आखेट के लिए राजा

उदयन बाहर गया था तो शिविर में आग लगा दी गई और उदयन के लौटने पर उसे बता दिया गया कि वासवदत्ता उसी आग में जल मरी तथा उसे बचाने के प्रयास में यौगन्धरायण भी जल मरा। उदयन इस समाचार से बहुत शोकाकुल हुआ। रुमण्वान् आदि मंत्रियों ने उसे सम्भाला और वापस कौशाम्बी ले आये।

उधर यौगन्धरायण वासवदत्ता को लेकर मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती के पास गया और उसके पास वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रख छोड़ा। उदयन वासवदत्ता की याद में अतिशय विह्वल हुआ किन्तु अन्ततोगत्वा पद्मावती से विवाह करने के लिए वह तैय्यार हो गया। विवाह के बाद दोनों राज्यों की सेनाओं ने मिलकर आरुणि को परास्त कर दिया तथा शत्रु द्वारा अपहृत वत्सराज्य पुनः उदयन को प्राप्त हो गया। अन्त में बड़े ही नाटकीय ढंग से वासवदत्ता और यौगन्धरायण प्रकट हुए। यौगन्धरायण ने अपने दुस्साहस के लिए उदयन से क्षमा-याचना की पर उदयन ने यौगन्धरायण द्वारा किये गये हितकारक कार्यों के प्रति बहुत आभार व्यक्त किया।

प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु का जो भाग वर्णित है उससे सम्पूर्ण कथा-वस्तु पर प्रकाश पड़ता है। महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन यद्यपि नाटक में नहीं किया गया है किन्तु स्थान-स्थान पर उनका समुचित निर्देश दे दिया गया है जिससे सारी कथा-वस्तु स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः यह नाटक घटना-प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान ही है इसीलिए कथा-वस्तु के महत्त्वपूर्ण अंशों की भी अपने नाटकीय स्वरूप की रक्षा के लिए उपेक्षा की गई है।

उपर्युक्त रूपकों में साम्य

उपर्युक्त तेरह रूपकों में परस्पर कुछ समानताएं हैं। इन समानताओं के आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि इन सभी रचनाओं का प्रणेता कोई एक ही व्यक्ति होगा। ये समानताएं मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं—

१. संस्कृत रूपकों का प्रारम्भ प्रायः नान्दी पद्य से होता है किन्तु इन

सभी रूपकों का समारम्भ "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" वाक्य से होता है। इसके बाद ही आशीर्वादात्मक या मंगल श्लोक हैं।

२. प्रायः सभी रूपकों में 'प्रस्तावना' के स्थान में 'स्थापना' का प्रयोग किया गया है।

३. प्रायः प्रस्तावना में लेखक तथा रचना का नाम और लेखक की प्रशंसा या परिचय में एक दो शब्द होते हैं पर इन सभी रूपकों की स्थापनाओं में रचना या रचनाकार का नाम, परिचय आदि नहीं है।

४. इन सभी रूपकों के भरत वाक्य प्रायः समान हैं।

५. भाषा, शैली एवं भाव के अतिरिक्त अनेक वाक्य और पद्यांश तक विभिन्न रूपकों में समान पाये जाते हैं।

६. भरत निर्देशित नाट्य-नियमों का उल्लंघन प्रायः सभी रूपकों में किया गया है।

७. सभी रूपकों में नाट्य-निर्देशों का अभाव समान रूप से पाया जाता है।

८. साधारण पात्रों में नाम-साम्य तथा अपाणिनीय प्रयोगों की प्रचुरता सभी रूपकों में उपलब्ध होती है।

९. इन सभी रूपकों के नाम ग्रन्थान्त में ही उपलब्ध होते हैं; अन्यत्र कहीं नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि सभी रूपकों का प्रणेता कोई एक ही व्यक्ति है तथा कालिदास, बाण, भट्टादि के प्रमाणों द्वारा यह निश्चित है कि भास ही इनके प्रणेता थे। इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये आचार्य रामचन्द्र मिश्र द्वारा विरचित "संस्कृतसाहित्येतिहासः" तथा हंसराज अग्रवालकृत—"संस्कृत साहित्य का इतिहास"—नामक पुस्तकों का अवलोकन करना चाहिये।

अविमारक की कथावस्तु

प्रथम अङ्क—नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार भगवान् नारायण के ६ अवतारों का वर्णन करता है। सूत्रधार-नटी के पारस्परिक वार्त्तालाप के

बाद सपरिवार राजा का प्रवेश होता है। राजा कुन्तिभोज केतुमति नामक दासी द्वारा महारानी को बुलवाते हैं। महारानी के मुख को अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न देखकर महाराज उनसे इसका कारण पूछते हैं जिसके उत्तर में महारानी कहती है कि—"कुरङ्गी के लिये दूत आया है और शीघ्र ही मैं दामाद को देख सकूंगी।' महाराज विवाह जैसे कार्य के लिये काफी सोचने-समझने के औचित्य का समर्थन कर ही रहे थे कि तभी दूर से गम्भीर शब्द सुनाई पड़ने लगता है और उसी समय प्रतिहारी मंत्री कौञ्जायन के आने की सूचना देता है। कौञ्जायन प्रवेश कर महाराज से निवेदन करता है कि—"आपकी आज्ञा के अनुसार मैं राजकुमारी के साथ उद्यान में गया था किन्तु जब राजकुमारी यथेच्छ विहार करके लौट रही थी तभी एक मतवाला हाथी रास्ते में आकर उत्पात मचाने लगा जिसके डर से साधारण लोग भाग खड़े हुए, औरतें हाहाकार करने लगी, कुछ लोग मरे भी और अचानक वह हाथी राजकुमारी की सवारी पर भी टूट पड़ा। किन्तु तभी एक अनुपम सौन्दर्यशाली, पराक्रमी, साहसी, वीर एवं नम्र युवक वहाँ अकस्मात् आ गया और भयत्रस्त राजकुमारी को अभय-प्रदान करता हुआ निर्भीक-भाव से तुरन्त उस मतवाले हाथी के पास जा पहुँचा।" राजा उस अपरिचित युवक की वीरता एवं दयालुता से काफी प्रभावित हुए। थोड़ी देर बाद जब भूतिक ने आकर पुनः सूचना दी कि पूर्वोक्त युवक ने किस बहादुरी के साथ हाथी को परास्त कर दिया तो राजा उस युवक के वंशादि का पता लगाने के लिये उत्सुक हो उठे। वे भूतिक को उक्त अज्ञात युवक के कुलशील का सविस्तर पता लगाने का आदेश देते हैं और भूतिक से पूछते हैं कि काशिराज ने अपने पुत्र के लिये जो दूत भेजा है उसका क्या किया जाय? भूतिक कहता है कि विवाह जैसे कार्य में जल्दीबाजी से काम नहीं लेना चाहिये। कौञ्जायन परामर्श देता है कि चूंकि सौवीरराज ने अपने पुत्र के लिये पहले ही दूत भेजा है अतः उन्हें ही प्राथमिकता देनी चाहिये। राजा जिज्ञासा प्रकट करते हैं कि सौवीरराज पुनः दूत क्यों नहीं भेजते हैं; इस पर भूतिक सूचना देता है कि वे पुत्रसहित आजकल दिखाई नहीं देते, सारे कार्य मन्त्री लोग चला रहे हैं; पता नहीं क्या कारण है। राजा वस्तुस्थिति का शीघ्र पता लगाने का आदेश देते हैं और

पूछते हैं कि सम्प्रति काशिराज के दूत का क्या किया जाय। कौञ्जायन कहता है कि अभी काशिराज के दूत का प्रत्याख्यान नहीं किया जाय।

द्वितीय अङ्क—प्रारम्भ में विदूषक प्रवेश करता है। वह कुरङ्गी पर आसक्त अपने मित्र अविमारक की मनोदशा का वर्णन प्रस्तुत करता है। इसी बीच चेटी प्रवेश करती है एवं दोनों में कुछ देर तक विनोदपूर्ण बातें होती हैं। चेटी के जाने के बाद अविमारक प्रवेश करता है और वह कुरङ्गी के प्रति अपने हृदय के प्रेम-पूर्ण भावों की अभिव्यक्ति बहुत ही विकलता पूर्वक करता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिये वह बहुत अधिक विह्वल हो जाता है। उसका चेहरा पीला एवं शरीर दुबला-पतला हो गया है। उसे दिन में शोक एवं रात में मोह घेरे रहते हैं। वह बार-बार कुरङ्गी के रूप, यौवन एवं सौकुमार्य के चिन्तन में ही घुला जा रहा है। इधर कुरङ्गी की भी वही स्थिति है। हस्तिसंभ्रम के दिन से ही वह भी अविमारक पर बुरी तरह आसक्त हो उठी है और उसकी याद में वह भी रात-दिन बेचैन रहा करती है। उसे फूल की माला भी अच्छी नहीं लगती, लोगों से मिलना-जुलना भी नहीं सुहाता, लम्बी साँसें लिया करती है, बेसिर पैर की बका करती है, एकान्त में रोती है, रोग का बहाना करती है, दुबली होती जा रही है तथा पीली पड़ गई है। कुरङ्गी की उपर्युक्त वियोगावस्था का वर्णन धात्री प्रस्तुत करती है। धात्री तथा नलिनिका आपस में कुरङ्गी तथा अविमारक के गुप्त-मिलन की योजना तैयार करती है और तदनुसार अविमारक के पास पहुँच कर उसे कुरङ्गी से मिलने का आमन्त्रण दे आती है। इस आमन्त्रण को पाकर अविमारक बहुत प्रसन्न होता है तथा उन दोनों को साधुवाद देता है। अविमारक चूंकि अपने पराक्रम के प्रति आश्वस्त है अतः वह इस आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। धात्री तथा नलिनिका के जाने के बाद वह आधी रात को कन्यापुर में प्रवेश करने के लिये अपने मित्र विदूषक से मंत्रणा करता है तथा अकेले ही प्रवेश करने का निश्चय करता है।

तृतीय अङ्क—धात्री तथा नलिनिका अविमारक के कन्यापुर-प्रवेश के लिये सारी व्यवस्था कर देती है। अविमारक अर्धरात्रि के समय राजकीय

रक्षापुरुषों के कड़े पहरे के बावजूद काफी साहस और सावधानी के साथ कन्यापुर में प्रवेश करता है। नलिनिका की सहायता से वह अपनी प्रियतमा कुरङ्गी का सान्निध्य सहज ही प्राप्त कर लेता है। कुरङ्गी भी प्रियतम को अचानक अपने पास पाकर खिल उठती है। दोनों सानन्द समय बिताने लगते हैं।

चतुर्थ अङ्क—एक वर्ष तक कुरङ्गी एवं अविमारक सुखोपभोग करते रहते हैं किन्तु यह जानकर कि महाराज कुन्तिभोज को यह समाचार मिल गया है, कुरङ्गी लाज, काम तथा भय से पीड़ित होकर सन्ताप से बेहोश हो जाती है। अविमारक भी पकड़े जाने के भय से वहाँ से निकल भागता है किन्तु प्रियतमा के वियोग में वह इतना खिन्न हो जाता है कि अन्ततः उसे आत्महत्या का निर्णय लेना पड़ता है। सर्वप्रथम वह पानी में डूबकर मरना चाहता है किन्तु इस मृत्यु को अधर्मपूर्ण जानकर वह दावानल द्वारा आत्मघात करने के विचार से अग्नि में प्रवेश करता है किन्तु इससे उसकी मृत्यु नहीं होती अपितु अग्नि की ज्वाला उसे चन्दन के लेप की तरह शीतल प्रतीत होने लगती है। अन्ततोगत्वा वह पर्वत-शिखर से गिरकर प्राण त्याग करने की इच्छा से पर्वत पर चढ़ जाता है किन्तु तभी सपत्नीक विद्याधर वहाँ पहुँच जाता है। बात-चीत के क्रम में विद्याधर उसकी मनोव्यथा से परिचित हो उसे एक दिव्य अंगुरीयक प्रदान करता है जिसे दायें हाथ की अंगुली में पहनने पर अदृश्य एवं बायें हाथ की अंगुली में धारण करने पर पुनः प्रकृतिस्थ हुआ जा सकता है। उस विचित्र अंगुरीयक को प्राप्त कर तथा विद्याधर की सलाह पर वह अंगूठी की ही सहायता से पुनः अपनी प्रियतमा के पास पहुँचने का निर्णय लेता है।

पञ्चम अङ्क—प्रियतम के पुनर्वियोग में कुरङ्गी की अवस्था बहुत बिगड़ जाती है। वह चन्दन का लेप लगाना छोड़ देती है, अपने सारे आभूषण उसने उतार दिये हैं और सारे विलासों का त्याग कर दिया है। अपनी सखियों की आँख बचाकर वह आत्मघात करने की इच्छा से गले में फाँसी का फन्दा डालकर मरना ही चाहती है कि उसी समय अंगूठी की सहायता से

वहाँ अविमारक पहुँच जाता है और दोनों आपस में मिलकर काफी प्रसन्न होते हैं। इस बार अविमारक विदूषक को भी अपने साथ ले लेता है।

षष्ठ अङ्क—सौवीरराज के पुत्र विष्णुसेन का कुछ पता नहीं चल रहा था अतः बाध्य होकर राजा कुन्तिभोज ने काशिराज के पुत्र जयवर्मा के साथ कुरङ्गी के विवाह का निश्चय कर लिया। तदनुसार समाचार भेजने पर जय वर्मा अपनी माँ सुदर्शना के साथ वहाँ पहुँच गया। निश्चित समय पर विवाह की तैयारी प्रारम्भ हो गई। सौवीरराज भी उपस्थित हुए। वे पुत्र-वियोग के कारण काफी खिन्न प्रतीत हो रहे थे। उनकी खिन्नता के बारे में जब राजा कुन्तिभोज ने जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने अपने सुन्दर, शूर-वीर एवं पराक्रमी पुत्र अविमारक के खो जाने एवं बहुत दिनों से उसका कहीं भी पता नहीं चलने के बारे में कुन्तिभोज को अवगत कराया। इसी प्रसङ्ग में सौवीरराज ने यह भी बताया कि चण्डभार्गव नामक क्रोधी ऋषि के शाप से वे किस प्रकार अपनी पत्नी एवं पुत्र सहित एक वर्ष तक चाण्डालत्व को प्राप्त हो चुके थे तथा यह भी कि उनके पुत्र विष्णुसेन ने किस बहादुरी के साथ अविरूपधारी दुर्दान्त राक्षस का संहार किया था। सौवीरराज से ही उनके पुत्र अविमारक की वीरता की बात जब राजा कुन्तिभोज को मालूम हुई तो उन्हें विश्वास हो गया कि पगले हाथी से कुरङ्गी की रक्षा करनेवाला युवक कोई अन्य नहीं; अविमारक ही रहा होगा। उन्होंने मंत्रियों को अविमारक का पता लगाने का आदेश दिया किन्तु कहीं भी अविमारक का पता नहीं चल सका।

कुरङ्गी का विवाह जयवर्मा के साथ होने ही वाला था कि तभी वहाँ देवर्षि नारद पहुँच गये और उन्होंने ही सारा रहस्योद्घाटन किया। नारद ने सूचना दी कि अविमारक कुन्तिभोज के अन्तःपुर में कुरङ्गी के साथ रह रहा है तथा उन दोनों ने गान्धर्व रीति से विवाह भी कर लिया है। नारद ने बहुत से अन्य भेद भी प्रकट किये। उन्होंने कहा कि अविमारक अग्निदेव से सुदर्शना में उत्पन्न हुआ है। सुदर्शना की बहन सुचेतना सौवीरराज की पत्नी थी। प्रसवकाल में ही सुचेतना के पुत्र के मर जाने से उसे कष्ट में जानकर

सुदर्शना ने अपना पुत्र सुचेतना को दे दिया। इस प्रकार अविमारक सौवीर-राज का पुत्र कहलाया। सारी बातें मालूम होने पर सभी प्रसन्न हो गये। कुरङ्गी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ काशिराज के पुत्र जयवर्मा का विवाह हो गया और इस प्रकार सभी प्रसन्न हो गये।

अविमारक का काव्यगत सौन्दर्य

अविमारक काल्पनिक कथा पर आधारित एक प्रकरण है। इसका कथानक घटना-प्रधान न होते हुए भी वस्तुतः चरित्र-प्रधान है। नाटकीय विशेषताओं से परिपूर्ण यह प्रकरण भास की उत्कृष्ट काव्यात्मक प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। पात्रों का सजीव चित्रण, घटना क्रम का सुव्यवस्थित संयोजन एवं कथोपकथन के स्वाभाविक वर्णन में प्रकरणकार ने पग-पग पर अपने नाट्यकौशल के उत्कर्ष का परिचय दिया है।

प्रथम अङ्क में "कन्यापितुर्हि सततं बहुचिन्तनीयम्" (श्लोक ३) के द्वारा युवावस्था को प्राप्त कुआँरी कन्या के विवाह के लिये चिन्तित पिता की मनोदशा का वर्णन भास के परिपक्व सांसारिक अनुभवों को द्योतित करता है। इसी अङ्क में मन्त्री कौञ्जायन की —"प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिव-बलम्" (श्लोक ५) इस उक्ति से राजा के चंगुल में फँसे हुए मंत्रियों की विवशता का जो चित्र सामने आता है वह भास की राजनीति मर्मज्ञता का संकेत देता है। इसी प्रकार निमन्त्रण लोभी ब्राह्मण के रूप में विदूषक का चित्रण या चतुर, सयानी, वाक्पटु एवं व्यवहार निपुणा दूती एवं परिचारिका के रूप में धात्री, मागधिका, नलिनिका आदि साधारण पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी भास ने कुछ उठा नहीं रखा है।

अविमारक प्रस्तुत प्रकरण का नायक एवं कुरङ्गी नायिका है। दोनों एक दूसरे को चाहते हैं पर मिल नहीं पाते। "अद्यापि हस्तिशीकरशीतलाङ्गी०" (श्लो० २।१), "प्रतिषिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते" (श्लो० २।४) आदि पद्यों के द्वारा कुरङ्गी के प्रेम में व्याकुल अविमारक की मनोव्यथा का वर्णन तथा "रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा" (श्लो० ५।१), "सव्ये करे समुपवेश्य

मुखं सुदीनम्'' (श्लो ५।२) आदि पद्यों के द्वारा प्रियतम-वियोग-विधुरा कुरङ्गी की दुरवस्था का चित्रण जितना ही मार्मिक है उतना ही मनोज्ञ भी और प्रतीत होता है कि वैसे स्थलों पर भास के हृदय की भावुकता मानो टपक रही हो। अविमारक एवं कुरङ्गी के उदात्त, आदर्श एवं मार्यादित प्रेम का जैसा चित्रण इस प्रकरण में किया गया है वह प्रत्येक युग में आदर्श समाज के लिये भास द्वारा प्रदत्त प्रेरक एवं बहुमूल्य अवदान के रूप में सदैव प्रयुक्त होता रहेगा।

प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में भी भास की काव्य-निपुणता पराकाष्ठा को छू रही है। सूर्यास्तकालीन आकाश तथा प्रदोषकालिक मनुष्य-लोक का चित्रण क्रमश: निम्न पद्यों में किया गया है—

१. पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता,
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशाम्।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं,
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥ २।१२ ॥

२. व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो,
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजन: प्रविकीर्णशूरो,
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोक: ॥ २।१३ ॥

प्रथम पद्य के अनुसार आकाश में अर्धनारीश्वर रूप की कल्पना अपने आप में कितना अनूठापन लिये हुए हैं एवं द्वितीय पद्य के अनुसार मनुष्य-लोक के वेष-परिवर्त्तन की कल्पना कितनी सजीव एवं स्वाभाविक है; यह स्वत: सहृदय-संवेद्य है।

अर्धरात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार का वर्णन भी नितान्त चित्ताकर्षक बन पड़ा है—

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः, पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः, प्लवतरणीयः इवायमन्धकारः ॥ ३।४ ॥

मार्ग की नदी, अन्धकार को उसमें प्रवाहित होने वाला जल तथा भवनों को नदीतट का रूपक प्रदान करने वाला यह वर्णन पाठकों के हृदय को बरबस ही खींच लेता है।

इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में "अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही" (४।४) एवं "लिम्पन्ति रूक्षपवनाः सिकताग्निचूर्णैः" (४।५) ये दोनों पद्य तथा इसी अङ्क में आकाश से पृथ्वी पर उतरते हुए सपत्नीक विद्याधर द्वारा पृथ्वी के वर्णन में कहा गया—"जलदगहनमुज्झतीव" (४।१२) यह पद्य, प्राकृतिक सुषमा के नितान्त स्वाभाविक, हृदयावर्जक एवं अतिरमणीय वर्णन के भव्य निदर्शन हैं।

काव्य प्रयोजन के अन्तर्गत यश, अर्थ एवं सद्यः परनिर्वृत्ति के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान, शिवेतरक्षति तथा कान्तासम्मितोपदेश भी आते हैं। जैसा कि मम्मट ने कहा है—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे ॥ काव्यप्रकाश ॥

तो इस दृष्टि से भी भास की यह कृति पूर्ण सफल सिद्ध हुई है। अविमारक के अन्तर्गत आये हुए अनेकानेक सुभाषितों से उक्त प्रयोजनों की सिद्धि स्वतः हो जाती है। "जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा०" (१।३), "छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्०" (१।६), "विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्त्तव्या भवन्ति", "न भृत्यदूषणीया राजानः", "सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्", "को विश्रमो न म विभ्रष्टमनोरथानाम्" आदि अनेक सुभाषित श्लोक, श्लोकांश तथा गद्यांश हैं जिनसे व्यावहारिक ज्ञान, शिवेतरक्षति तथा कान्तासम्मितोपदेशरूप प्रयोजनों की पूर्ति स्वतः हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि

भास का 'अविमारक' अभिनय एवं काव्य-दोनों ही कलाओं की कसौटी पर एक साथ खरा उतरने वाला एक सफल प्रकरण है।

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

अविमारक—अविमारक प्रस्तुत प्रकरण का नायक है। यह धीरोदात्त प्रकृति का है। प्रकरण के अन्त में देवर्षि नारद द्वारा किये गये रहस्योद्‌घाटन से ज्ञात होता है कि यह अग्निदेव से सुदर्शना में उत्पन्न हुआ था तथा घटना विशेष के कारण सौवीरराज पुत्र के रूप में जाना जाता था। इसका नाम विष्णुसेन है। अविरूपधारी किसी राक्षस को मारने के कारण यह अविमारक के ही नाम से लोक में प्रख्यात हो गया था।

अविमारक या विष्णुसेन में नायक के लिये अपेक्षित सारे गुण समवेतरूप से विद्यमान हैं। प्रथम अङ्क में कौञ्जायन की—"दर्शनीयोऽप्यविस्मितस्तरुणोऽप्यनहङ्कारः शूरोऽपि दाक्षिण्यवान् सुकुमारोऽपि बलवान् ...." इस उक्ति से जहाँ इसके सौम्यरूप, निरहङ्कारता, नम्रता एवं सौकुमार्य का संकेत मिलता है वहीं भूतिक के—"स मुहूर्तमनादरमत्वरितं सललितं प्रियवयस्येनेव तेन हस्तिना प्रक्रीड्य............" इस कथन से इसके श्लाघनीय साहस तथा अतुलनीय पराक्रम का भी परिचय प्राप्त हो जाता है। देवता के समान रूप, ब्राह्मण के समान वाणी, क्षत्रिय के समान बल, तेज तथा सौकुमार्य इसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देते हैं—(दैवं रूपं० श्लो० १।७)। इसके इसी आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर स्वयं विद्याधर को भी इसके मानुषत्व पर विश्वास नहीं होता। चतुर्थ अङ्क में विद्याधर की—"आः ज्ञातम्। विद्याधरः खलु मन्त्रभ्रष्टः। कुतः, रूपमीदृशं हि नान्येषाम्।" इस उक्ति से इसके अनुपम दिव्य सौन्दर्य का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

अविमारक सच्चा एवं आदर्श प्रेमी है। प्रेम की रक्षा के लिये यह जान की भी बाजी लगा बैठता है। कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी से यह अन्तिम सीमा तक प्रेम करता है। पहली बार अर्धरात्रि के समय, निविड अन्धकार में राजकीय रक्षापुरुषों के कड़े पहरे के बावजूद यह अपने साहस, पराक्रम

एवं बुद्धि कौशल से अपनी प्रियतमा कुरङ्गी तक पहुँचने में अन्ततः सफल हो जाता है किन्तु पश्चात् प्रियतमा के वियोग में यह आत्महत्या तक करने के लिये तत्पर हो जाता है जो इसके प्रगाढ एवं उदात्त प्रेम का परिचायक है।

यह स्वयं परोपकारी है। पगले हाथी से कुरङ्गी की रक्षा करना या अविरूपधारी दुर्दान्त राक्षस का संहार करना इसकी परोपकारिता एवं लोक-कल्याण की भावना को उजागर करता है। साथ ही दूसरों द्वारा अपने प्रति किये गये उपकार के प्रति भी यह कम कृतज्ञ नहीं है। द्वितीय अङ्क में कुरङ्गी से मिलने का आमन्त्रण देने के लिये आई हुई धात्री तथा नलिनिका को यह—"भवति ! पुनर्दत्ता इव प्राणाः।" कहकर प्रकारान्तर से उनका आभार हीं व्यक्त करता है। इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में विद्याधर से अंगूठी प्राप्त करने के बाद इसकी—"विद्यावशानां तु भवद्विधानां॰" (४।१७) इस उक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृतज्ञता की भावना से इसका हृदय ओत-प्रोत है।

इस प्रकार, अनुपम सौन्दर्य, अतुलित पराक्रम, अतिमानवीय शौर्य-वीर्य, नम्रता, परोपकारिता, कृतज्ञता, निरहङ्कारता आदि विविध उदात्त गुणों से समन्वित इसका चरित्र एक आदर्श नायक के स्वरूप की अभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम है।

कुरङ्गी—कुरङ्गी प्रस्तुत प्रकरण की नायिका है। यह वैरन्त्य नगर के स्वामी राजा कुन्तिभोज की पुत्री है। हस्ति संभ्रम के दिन अविमारक के पराक्रम पर मुग्ध होकर यह उससे मन ही मन प्रेम कर बैठती है और उसे चाहने लगती है। यह सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति है। इसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए द्वितीय अङ्क में स्वयं अविमारक कहता है—"प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु॰" (२।३)। अविमारक पुनः आगे कहता है—"उसका वक्षस्थल स्तन-भार से अलस है, शरीर जघन-भार से खिन्न है, मुख नेत्रों की सुन्दरता से परिपूर्ण है, अधर स्वाभाविक लालिमा से भरा है; भय के समय भी जब उसकी आकृति इतना आकर्षण उत्पन्न करती है तो सुरतकाल में विलासों से पूर्ण उसका चेहरा कितना सुन्दर होगा" (२।६)। इन

उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका सौन्दर्य अलोकसामान्य है जो किसी भी युवक के हृदय में उथल-पुथल मचा देने के लिये पर्याप्त है।

अविमारक से यह प्रेम करती है। अपने प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये यह इतनी विह्वल हो जाती है कि इसकी दशा नलिनिका एवं मागधिका आदि सखियों के लिये चिन्ता का विषय बन जाती है। प्रियतम के वियोग में यह पागल-सी होती जा रही है। इसे पुष्पमाल्य भी अच्छा नहीं लगता, लोगों से मिलना-जुलना बिल्कुल नहीं सुहाता और बार-बार यह मूर्च्छित हो जाती है। प्रेम के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव इसके चरित्र की अन्यतम विशेषता है। प्रेम की वेदी पर अपने प्राणों तक की आहुति डालने के लिये यह तैयार हो जाती है। प्रियतम से प्रथम मिलन के बाद जब पुनः वियोग हो जाता है तो यह उसे सहन नही कर पाती है और गले में फाँसी का फन्दा डालकर मरने के लिये तैयार हो जाती है। इन घटनाओं से यह पता चलता है कि इसके हृदय में अपने प्रियतम के प्रति कैसा अथाह प्रेम है। प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पित प्रेमिका के रूप में यद्यपि इसकी भूमिका दृष्टिगोचर होती है किन्तु यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इसका प्रेम कहीं भी और कभी भी मर्यादा की परिधि का उल्लङ्घन नहीं करता है। इसका प्रेम उत्कट अवश्य है किन्तु उच्छृंखल नहीं। तृतीय अङ्क में अविमारक को नलिनिका समझ कर यह उससे गाढ आलिङ्गन कर बैठती है किन्तु नलिनिका द्वारा वास्तविकता का पता लगने पर यह अकस्मात् बहुत घबड़ा जाती है— "हा हीनं चारित्रम्। भीताऽस्मि (तृतीय अङ्क)। इसी एक घटना से इसके चारित्रिक उत्कर्ष का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रस्तुत प्रकरण में प्रेम-समर्पिता नायिका के रूप में इसका चरित्र आदर्श मानवीय गुणों से पूर्ण सम्पन्न है।

विदूषक—यह हास्य नेता है। इसका नाम सन्तुष्ट है तथा यह जाति से ब्राह्मण है। यह अविमारक का अनन्य मित्र तथा विपत्ति में उसका परम सहायक है। इसका प्रमुख कार्य लोगों को हंसाना ही है। सर्व प्रथम द्वितीय

अङ्क में इसका अवतरण होता है। चेटी के साथ वार्त्तालाप करते हुए यह बार-बार निमंत्रण की ही चर्चा करता है जिससे यह सिद्ध होता है कि यह प्रथम श्रेणी का भोजन-भट्ट है। रामायण महाकाव्य को नाट्य शास्त्र बतलाना ("अस्ति रामायणं नाम नाट्यशास्त्रम्" द्वितीय अङ्क) इसका यह कहना कि—'रामायण के केवल श्लोक ही नहीं बल्कि उनका अर्थ भी मैंने पढ़ लिया है। मेरी विशेषता है कि अक्षर भी जाने और अर्थ भी तथा चेटी द्वारा अंगूठी पर अंकित अक्षर को पढ़ने का प्रस्ताव रखे जाने पर इसका यह कथन— "एतदक्षरं मम पुस्तके नास्ति" (द्वितीय अङ्क) (यह अक्षर मेरी पुस्तक में नहीं है)—इसकी हास्य-प्रियता के कतिपय उदाहरणों में से हैं।

केवल हास्य उत्पन्न करना ही इसका कार्य नहीं है। विषम परिस्थिति में यह गम्भीर भी हो जाता है। अविमारक के अचानक गायब हो जाने पर यह मित्र-वियोग में काफी शोकाकुल हो जाता है। चतुर्थ अङ्क में अविमारक को खोजने के क्रम में इसका यह कथन—"अहमपि कुमारं वा कुमारस्य शरीरं वा प्रेक्षिष्ये तावत् सर्वलोकं परिभ्रम्या यदि न प्रेक्षे, तत्र भवतः परमसहायो भवामि"। इसके हृदय के प्रगाढ मैत्री-स्नेह एवं कोमल भावनाओं का परिचायक है। इसी अङ्क में अविमारक द्वारा इसके सम्बन्ध में कहे गये—

"गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः, शोके गुरुः साहसिकः परेषु।
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैर्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ॥"

इस श्लोक से ही इसके चरित्र की सारी विशेषतायें उभर कर पाठकों के समक्ष उपस्थित हो जाती हैं।

धात्री एवं नलिनिका—ये कुरङ्गी की अन्तरङ्ग सहेलियाँ हैं। साधारण पात्र होते हुए भी प्रस्तुत प्रकरण में अभिनय एवं घटना-क्रम की दृष्टि से इनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। द्वितीय अङ्क में इन दोनों का प्रवेश होता है जब कि ये दोनों अविमारक को कुरङ्गी से मिलने का आमन्त्रण देने गई हैं। अविमारक के साथ वार्त्तालाप करने के समय अपने २ वाक्चातुर्य का परिचय दोनों ने ही दिया है। प्रियतम को प्रियतमा से मिलाने की कला से दोनों ही

सिद्धहस्त हैं। कुरङ्गी की प्रसन्नता से प्रसन्न रहना एवं उसकी खिन्नता में खिन्न हो जाना दोनों के ही स्वभाव में सम्मिलित है। कुरङ्गी की वियोगावस्था में ये दोनों उसके कल्याण के लिये कुछ भी उठा नहीं रखती हैं। तृतीय अङ्क में कुरङ्गी एवं अविमारक को परस्पर आलिङ्गनबद्ध करा देने में नलिनिका ने जिस चतुराई से काम लिया है वह शृङ्गारिक दृष्टि से नितान्त श्लाघनीय है।

"अविमारक" के आधार पर धात्री तथा नलिनिका का चरित्र चतुर एवं वाक्पटु दूती, विश्वसनीय सहेली तथा भावुक-हृदया परिचारिका के रूप में पूर्ण सफल रहा है।

दीपावली
वि. सं. २०४१

—महाप्रभुलाल गोस्वामी

विषय-सूची

पात्र-परिचयः

पुरुषाः—

सूत्रधारः—	प्रधाननटः, रङ्गमञ्चाध्यक्षः।
राजा—	कुरङ्ग्याः पिता कुन्तिभोजः।
कौञ्जायनः— भूतिकः—	कुन्तिभोजस्यामात्यौ।
भटः—	कुन्तिभोजस्य प्रतिहारो जयसेननामा।
अविमारकः—	सौवीरराजपुत्रः।
विदूषकः—	अविमारकस्य सखा सन्तुष्टनामा।
सौवीरराजः—	अविमारकस्य पिता।
नारदः—	देवर्षिः।
विद्याधरः—	अविमारकाय अंगरीयकप्रदाता।

स्त्रियः—

नटी—	सूत्रधार-स्त्री, प्रधानसहायिका।
देवी—	कुन्तिभोजस्य महिषी।
कुरङ्गी—	कुन्तिभोजस्य पुत्री।
सुदर्शना—	अविमारकस्य जननी काशिराजस्य महिषी।
प्रतीहारी—	कुन्तिभोजस्य द्वारपालिका।
चेटी—	कुरङ्ग्याः किङ्करी चन्द्रिकाख्या।
धात्री—	कुरङ्ग्या उपमाता जयदा नाम।
नलिनिका—	कुरङ्ग्याः परिजनः।
मागधिका—	,, ,,
विलासिनी—	,, ,,
वसुमित्रा— हरिणिका—	देव्याश्चेटयौ।
सौदामिनी—	विद्याधरस्य प्रियतमा।

भासनाटकचक्रे

अविमारकम्

'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उत्क्षिप्तां सानुकम्पं सलिलनिधिजलादेकदंष्ट्राग्ररूढा-
माक्रान्तामाजिमध्ये निहतदितिसुतामेकपादावधूताम् ।

नान्द्यन्ते इति । देवद्विजनृपादीनां स्तुत्याशीरन्यतरपरं वचः नान्दी भवति । तथा चोक्तं मुनिना भरतेन—"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।" इति । सा च द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैर्युक्ता भवति । भासनाटकचक्रस्य परम्परायान्तु नान्द्यनन्तरमेव स्तुतिकरणव्यवहारः दृष्टिपथमवतरति ।

सूत्रधार इति । सूत्रधारः=प्रधाननटः । "नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ।" इति लक्षणात् । "सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्" इति नियमात्, वक्तीत्यादि योग्यक्रियाध्याहारो विधेयः ।

उत्क्षिप्तामिति । अन्वयः—सलिलनिधिजलात् सानुकम्पम्, उत्क्षिप्ताम्, एक-

---

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रवेश करता है)

सूत्रधार—जिस भगवान् ने जिस पृथ्वी को दयापूर्वक समुद्र के जल से ऊपर निकाला, अपने एक दांत के अग्रभाग पर जिसे संलग्न किया, युद्ध में

सम्भुक्तां प्रीतिपूर्वं स्वभुजवशगतामेकचक्राभिगुप्तां
श्रीमान् नारायणस्ते प्रदिशतु वसुधामुच्छ्रितैकातपत्राम्॥१॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये ! इतस्तावत् ।

दंष्ट्राग्ररूढाम्, आजिमध्ये, आक्रान्ताम्, निहतदितिसुताम्, एकपादावधूताम्, प्रीतिपूर्वं, संभुक्ताम्, स्वभुजवशगताम्, एकचक्राभिगुप्ताम्, उच्छ्रितैकातपत्राम्, वसुधाम्, श्रीमान्, नारायणः, ते, प्रदिशतु ।

सलिलस्य = जलस्य निधिः = भण्डारः इति सलिलनिधिः समुद्रः, तस्य बलात् । सानुकम्पम् = अनुकम्पया सहितं यथा स्यात्तथा, कृपापूर्वमिति भावः । उत्क्षिप्तां = उपर्युत्थापितां । (उत् + क्षिप् + टाप् द्वितीयैकवचने रूपम्) । एकदंष्ट्राग्ररूढाम् = एकस्य दंष्ट्रस्य = दन्तस्य अग्रे = अग्रभागे रूढाम् = संलग्नाम् । (रुह् + क्त + टाप् + अम् इति रूढाम्)। आजिमध्ये = आजिः = समरः तस्य मध्ये अर्थात् समरे । आक्रान्ताम् = आक्रमणेन पराभूतीकृताम् । निहतदितिसुताम् = निःशेषेण हताः इति निहताः, दितेः सुताः इति दितिसुताः = राक्षसाः, निहताः दितिसुताः यस्याम् तादृशाम् अर्थात् राक्षसविहीनां । एकपादावधूताम् = एकेन पादेन = चरणेन अवधूताम् = परिमापिताम् । प्रीतिपूर्वम् = सस्नेह । संभुक्ताम् = सम्यक् प्रकारेण भुक्ताम् = पालिताम् । स्वभुजवशगताम् = निजबाहुबलेन वशमानीताम् = स्वाधीनीकृताम् । एकचक्राभिगुप्ताम् = एकेन चक्रेण = चक्राभिधेनास्त्रेण पालिताम् । उच्छ्रितैकातपत्राम् = व्यक्तैकछत्राम् । वसुधाम् = पृथिवीम् । श्रीमान् = श्रीः = लक्ष्मीः अस्ति अस्य इति श्रीमान् अर्थात् लक्ष्म्या सहितो नारायणः । ते = तुभ्यम् । प्रदिशतु = प्रददातु । पद्येऽस्मिन् भगवतो नारायणस्य मत्स्य-शूकर-नृसिंह-वामन-रामावताराणां संकेतः । स्रग्धरावृत्तम् ।। १ ।।

नेपथ्येति । नेपथ्यं = वेशपरिग्रहस्थानम्, 'अन्तर्जवनिकामाहुर्नेपथ्यम्'। केचित्तु

राक्षसों का संहार कर जिसकी रक्षा की, जिसे एक पाँव से नापा, जिसे प्रेमपूर्वक पाला, अपने चक्रायुध से जिसका पालन किया वही लक्ष्मी सहित भगवान् नारायण तुम्हें वह एकछत्र पृथ्वी प्रदान करे ।। १ ।।

(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये ! इधर आओ ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअम्हि । [आर्य ! इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! तव वदनजनितकौतूहलेन स्मितेन निवेदित इवान्तर्गतो भावः । ननु किञ्चिद् वक्तुकामासि ।

नटी—को एत्थ विम्हओ अय्यो भावञ्ञो त्ति । [कोऽत्र विस्मय आर्यो भावज्ञ इति ।]

सूत्रधारः—तेन हि स्वैरमभिधीयताम् ।

नटी—इच्छेमि अय्येण सह उय्याणं गन्तुं । अत्थि मे तहिं इत्थिआकरणीअं णिअमकय्यं । [इच्छाम्यार्येण सहोद्यानं गन्तुम् । अस्ति मे तत्र स्त्रीकरणीयं नियमकार्यम् ।]

(नेपथ्ये)

मेदिनीकारानुरोधेन नेपथ्यं रङ्ग इत्यर्थमाहुः ।

तव वदनजनितेति । तव मुखे कौतुकोत्पादकेन ईषद्धास्येन सूचित इव तव मनोगतो भावः । त्वम् किमपि वक्तुमिच्छसीति तव सस्मितं मुखमवलोक्यैव मयानुमितमिति तात्पर्यम् । स्वैरम् = स्वेच्छानुसारम् । अभिधीयताम् = उच्यताम् । स्त्रीकरणीयम् = नारीजनसम्पादनीयम् । नियमकार्यम् = आवश्यककृत्यम् । एतेन हि पुष्पवाटिकागमनस्यौचित्यं परिपुष्यते ।

(प्रवेश करके)

नटी—आर्य, यह हूँ ।

सूत्रधार—तुम्हारे मुखमण्डल पर कुतूहल उत्पन्न करनेवाली मुस्कुराहट ने ही तुम्हारे मनोगत भावों को सूचित कर दिया है । तुम कुछ कहना चाहती हो ?

नटी—इसमें आश्चर्य ही क्या है; आर्य तो भावों के ज्ञाता हैं ही ।

सूत्रधार—तो अपनी इच्छा के अनुसार कह डालो ।

नटी—आर्य के साथ पुष्पवाटिका जाना चाहती हूँ । वहाँ मुझे स्त्रियों के लिए सम्पादनीय कुछ आवश्यक कृत्य करने हैं ।

(नेपथ्य में)

भूतिक ! त्वमप्युद्यानं गच्छ कुरङ्गीरक्षणार्थम् । मदभावस्थो ह्यञ्जनगिरिः ।

सूत्रधारः—आर्ये ! ननु भवत्या श्रुतम्-उद्यानं गता राजपुत्रीति । तस्मात् सम्प्रति सर्वतः परिगुप्तानि भवन्त्युद्यानानि । प्रतिनिवृत्तायां राजसुतायां स्वैरं गमिष्यावः ।

नटी—जं अय्यो आणवेदि । [यदार्य आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति राजा सपरिवारः)

राजा—

इष्टा मखा द्विजवराश्च मयि प्रसन्नाः
प्रज्ञापिता भयरसं समदा नरेन्द्राः ।

मदभावस्थो ह्यञ्जनगिरिः=अञ्जनाभिधः पर्वतः सम्प्रति उत्फुल्लपुष्पादिकामोत्तेजकपदार्थैः मादकतामुदेतो वर्तते अतः कामयमानावस्थायां वर्त्तमानायास्तत्र गतायाः कुरङ्ग्याः विपदुपनिपातः सम्भवति, अतः तस्याः रक्षार्थम् भूतिकस्य पुष्पवाटिकायामुपस्थितिरावश्यकीति भावः ।

भवत्या श्रुतम्=त्वया आकर्णितम् । सर्वतः परिगुप्तानि=सर्वप्रकारेण अभिरक्षितानि । प्रतिनिवृत्तायाम्=उद्यानाद् राजभवनं गतायाम् ।

इष्टा मखा इति । अन्वयः—मखाः, इष्टाः, द्विजवराश्च, मयि, प्रसन्नाः, समदाः, नरेन्द्राः, भयरसम्, प्रज्ञापिता, एवंविधस्य, च, मे, मनःप्रहर्षः, नास्ति ।

भूतिक, तुम भी कुरङ्गी की रक्षा के लिए उद्यान जाओ । अंजनगिरि सम्प्रति मादक-भाव को उत्पन्न करने की अवस्था में है ।

सूत्रधार—आर्ये ! तुमने सुन लिया न कि राजकुमारी उद्यान में गई है । इसलिए उद्यान में इस समय कड़ा पहरा होगा । राजकुमारी के लौट जाने पर हम दोनों वहाँ चलेंगे ।

नटी—आर्य की जैसी आज्ञा । (दोनों जाते हैं)

(स्थापना)

(उसके बाद राजा सपरिवार प्रवेश करता है)

राजा—मैंने यज्ञ किये हैं, ब्राह्मण भी मुझ पर प्रसन्न हैं, गर्वशाली

एवंविधस्य च न मेऽस्ति मनःप्रहर्षः
कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् ॥ २ ॥

केतुमति ! गच्छ देवीमानय ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।] (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति सपरिवारा देवी)

देवी—जेदु महाराओ । [जयतु महाराजः ।]

राजा—देवि ! नित्यप्रसन्नमति ते मुखमद्यातिप्रसन्नमिव ।

हि, कन्यापितुः, सततम्, बहु, चिन्तनीयम् ।

मखाः = यज्ञाः । इष्टाः = सम्पादिताः । द्विजवराश्च = विप्राश्च । मयि = ममोपरि । प्रसन्नाः = सन्तुष्टाः । समदाः = सगर्वाः । नरेन्द्राः = राजानः । भयरसं = भयाख्यं रसम् । प्रज्ञापिताः = वेदिताः । एवंविधस्य = एवंस्वरूपस्य । च = पुनः । मे = मम । मनःप्रहर्षं = हार्दिकः प्रमोदः । नास्ति = नैव वर्तते । हि = यतः । कन्यापितुः = कुमारिकाजनकस्य । सततम् = सर्वदा । बहु = भृशम् । चिन्तनीयम् = शोचनीयम् । वर्तते इति शेष. ॥ २ ॥

अयं भावः—राजा कुन्तिभोजः स्वकीयं मानसं खेदं व्यञ्जयन् वक्ति यद् विपुलैश्वर्यशालितासाहाय्येन मया विविधाः यज्ञाः सम्पादिताः, प्रभूतदानदाक्षिण्यादिसाहाय्येन विप्राः अपि सन्तोषिताः, स्वीयशौर्यवीर्यातिशयसाहाय्येन गर्वशालिनो राजान अपि भीतिं प्रापिताः किन्तु एवंविधस्य ऐश्वर्यशालिनः दानशीलस्य वीरस्य च मे मनसि प्रमोदो नैवोत्पद्यते यतो हि अपरिणीतकन्यायाः पितुः अत्यधिकम् चिन्तनीयम् वर्तते ।

देवीम् = प्रधानराजमहिषीम् । जयतु = विजयताम् । नित्यप्रसन्नम् =

राजाओं को मैंने भयास्वादन करवाया है, किन्तु इतना सब-कुछ होने पर भी मेरे मन में प्रसन्नता नहीं है, क्योंकि कन्या के पिता को सदैव बहुत अधिक चिन्ता रहा करती है ॥ २ ॥

केतुमति ! जा, महारानी को बुला ला ।

प्रतिहारी—जैसी महाराज की आज्ञा । (जाती है)

(सपरिवार महारानी का प्रवेश)

देवी— महाराज की जय हो ।

राजा—देवि ! नित्य प्रसन्न रहनेवाला तुम्हारा मुखमंडल आज

किङ्कृतोऽयं प्रहर्षः।

देवी—णं महाराएण कहिदं–कुरङ्गीणिमित्तं ददो आअदत्ति। ता अइरेण जामादुअं पेक्खामि त्ति। [ननु महाराजेन कथितं— कुरङ्गीनिमित्तं दूत आगत इति। तदचिरेण जामातरं प्रेक्ष इति।]

राजा—तादृशमप्यस्ति। न तु तावत् क्रियते निश्चयः। एह्युपविश।

देवी—जं महाराओ आणवेदि। [यद् महाराज आज्ञापयति।]

(उपविशति।)

राजा–देवि! विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति। कुतः,

जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात्।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव॥ ३॥

सततं मोदमापन्नमत एव सुन्दरम्। प्रहर्षः=हर्षातिरेकः। किङ्कृतः=कस्मात् कारणात् सञ्जातः। कथितम्=उक्तम्। दूतः=सन्देशवाहकः। अचिरेण=अतिशीघ्रम्। जामातरम्=कुरङ्ग्याः भाविनं पतिम्। प्रेक्षे=अवलोकयिष्यामि। अहमिति योजनीयम्।

विवाहाः=परिणयाः। बहुशः परीक्ष्य=सर्वतोभावेन निरीक्ष्य।

जामात्रिति। अन्वयः—जामातृसम्पत्तिम्, अचिन्तयित्वा, पित्रा, तु, स्वमनोभिलाषात्, दत्ता, नारी, क्षुब्धजला, नदी, इव, कूलद्वयं, मदेन, कुलद्वयम्, हन्ति।

जामातृसम्पत्तिम् = जामातुः=वरस्य, सम्पत्तिम्=धनम्। अचिन्त-

अत्यधिक प्रसन्न दिखाई दे रहा है। यह हर्षातिरेक आखिर किस कारण है?

देवी—महाराज ने ही तो कहा है कि कुरङ्गी के लिए दूत आया है। अतः शीघ्र ही दामाद को देख सकूँगी।

राजा—वैसा तो है, पर अभी इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। आओ, बैठो।

देवी—महाराज की जो आज्ञा। (बैठती है)

राजा—देवि! विवाह बहुत सोच-विचार कर ही किये जाते हैं, क्योंकि जामाता की सम्पत्ति को बिना विचारे अपनी इच्छा के अनुसार पिता यदि अपनी कन्या को जिस-किसी को सौंप दे तो वह कन्या पितृवंश एवं श्वसुरवंश

अये शब्द इव । बहुभिः कारणैर्भवितव्यम् । अयं हि,

बहुत्वाद् दूरसंस्थोऽपि समीप इव वर्तते ।
सत्सु हेतुसहस्रेषु कुरङ्ग्यां शङ्कते मतिः ।। ४ ।।

देवी—हं उय्याणं गआ मे दुहिआ [हम्, उद्यानं गता मे दुहिता ।]

यित्वा = अविमृश्य । पित्रा = जनकेन । स्वमनोभिलाषात् = स्वेच्छानुसारेण । दत्ता = परस्मै अर्पिता । नारी = कन्या । क्षुब्धजला = प्रवाहशालिपानीया । नदीव = सरिदिव । मदेन = यौवनोन्मादेन । कूलद्वयम् = तटयुगलमिव । कुलद्वयम् = पितृवंशम्, श्वसुरवंशञ्चेति । हन्ति = विनाशयति । कन्यासम्प्रदानसमये वरस्य धनैश्वर्यादिकविचारेऽनवधानता न वर्त्तनीयेति भावः । उपजाति वृत्तम् ।। ३ ।।

शब्द इव = ध्वनिरिव श्रूयते इति शेषः । बहुभिः कारणैर्भवितव्यम् = श्रूयमाणशब्दस्य बहूनि कारणानि संभवन्तीति भावः ।

बहुत्वादिति । अन्वयः – दूरसंस्थः, अपि, बहुत्वात्, समीप, इव, वर्त्तते । हेतुसहस्रेषु, सत्सु, मतिः, कुरङ्ग्याम्, शङ्कते ।

दूरसंस्थः अपि = दूरवर्ती अपि एष शब्दः । समीप इव = निकटस्थ इव । वर्तते = भवति । हेतुसहस्रेषु = सहस्रकारणेषु । सत्सु = वर्त्तमानेषु । मतिः = मम बुद्धिः । कुरङ्ग्याम् = एतन्नामधेयायाम् स्वीयात्मजायाम् । शङ्कते = सन्दिह्यते । उच्चैरुच्चार्यमाणस्यास्य शब्दस्य यद्यपि सन्ति बहूनि कारणानि तथापि मे मनः स्वीयात्मजां कुरङ्गीम्प्रति अनिष्टाशंकया मोहयुतम् सञ्जायते इति भावः ।।४।।

हम् = एवम्, स्वीकारोक्तिसूचकमव्ययम् ।

को नष्ट कर डालती है, अर्थात् बदनाम कर देती है, जिस प्रकार बाढ़ आने पर नदी अपने दोनों तटों को तोड़ डालती है ।। ३ ।।

अरे, कुछ आवाज-सी सुनाई पड़ती है । इसके बहुत-से कारण हो सकते हैं । यह—

गम्भीर होने के कारण यह शब्द दूरस्थ होते हुए भी निकटस्थ ही प्रतीत हो रहा है । हजारों कारणों के होने पर भी कुरङ्गी के प्रति मेरा मन शङ्काशील हो रहा है ।। ४ ।।

देवी—हाँ, मेरी पुत्री उद्यान गई है ।

राजा—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । एष आर्यकौञ्जायनो निवेदयितुमागतः ।

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(ततः प्रविशति कौञ्जायनः ।)

कौञ्जायनः—(सनिर्वेदम्) भोः ! कष्टममात्यत्वं नाम । कुतः,

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति ।

निवेदयितुम् = किमपि विज्ञापयितुम् । प्रवेश्यताम् = सम्मुखीक्रियताम् । सनिर्वेदम् = सखेदम् । कष्टम् = कष्टकरम् । अमात्यत्वम् = मन्त्रित्वम् । मन्त्रिणा विधेयं कर्म क्लेशावहमिति भावः ।

प्रसिद्धाविति । अन्वयः—कार्याणां, प्रसिद्धौ, जनः, पार्थिवबलं, प्रवदति, विपत्तौ, विस्पष्टं, सचिवमतिदोषं, जनयति । नृपतिभिः, श्रुतिसुखम्, उदारम्, अमात्या, इत्युक्ताः, मतिबलविदग्धाः, कुपुरुषाः, सुसूक्ष्मं, दण्ड्यन्ते ।

कार्याणाम् = राज्यसञ्चालनकर्मणाम् । प्रसिद्धौ = निष्पत्तौ । जनः = प्रजाजनः । पार्थिवबलं = राज्ञः शक्तिम् । प्रवदति = प्रशंसति । विपत्तौ = कार्यस्य विघटने जाते सति । सचिवमतिदोषम् = मन्त्रिणो बुद्धिदोषम् । जनयति = उद्घाटयति । नृपतिभिः = राजभिः । श्रुतिसुखम् = श्रवणसुखदम् । उदारञ्च ।

राजा—कोई है ?

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो । ये आर्य कौञ्जायन कुछ निवेदन करने आये हैं ।

राजा—शीघ्र बुला लाओ ।

भट—महाराज की जो आज्ञा । (जाता है)

(कौञ्जायन प्रवेश करता है)

कौञ्जायन—(खेद के साथ) ओह, मन्त्री का पद बहुत कष्टप्रद होता है । क्योंकि—कार्य सम्पन्न हो जाने पर लोग राजा के बल की प्रशंसा करते हैं और कार्य के सिद्ध न होने पर मन्त्रियों की बुद्धि का दोष बतलाते हैं । राजा

अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः
सुसूक्ष्मं दण्डयन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ॥ ५ ॥

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी । किं ब्रवीषि—उपस्थानगृह इति । अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः (परिक्रम्य ससम्भ्रमम्) प्रसीदतु स्वामी ।

राजा—अलमलं सम्भ्रमेण । स्वैरमुपविश्य कथ्यतां वृत्तान्तः ।

कौञ्जायनः—शृणोतु स्वामी । ननु स्वामिनाहमुक्तः—स्वामिदारिकया सह गच्छोद्यानम् इति ।

अमात्याः = मन्त्रिणः । इत्युक्ताः = इत्यभिहिताः । मतिबलविदग्धाः = बुद्धिवैभवविहीनाः । कुपुरुषाः = कुत्सिताः, निन्दिताः पुरुषाः । सुसूक्ष्मम् = निभृतं यथा स्यात्तथा । दण्ड्यन्ते = दण्डिताः क्रियन्ते । कार्यं यदि सिद्धम् स्यात्तर्हि राज्ञो बलं प्रशस्यते, कार्यनाशे सति मन्त्रिणो बुद्धिदोषस्तत्र कारणत्वेनोद्घाट्यते, एवं प्रकारेणोभयथापि मन्त्रिणः प्रशंसार्हाः नैव भवन्ति । कर्णसुखार्थमुच्चार्यमाणेन मन्त्रिशब्देन मन्त्रिणो नैव गौरवेणातिरिच्यन्ते, अपि तु सूक्ष्मरूपेण दण्ड्यन्त एव । पद्येऽस्मिन् "रसैरीशैश्छिन्ना यमनसभलाः गः शिखरिणी"ति लक्षणात् शिखरिणी वृत्तम् ॥ ५ ॥

उपस्थानगृहे = साक्षात्कारगृहे । इयं भूमिः = इदं स्थानम् । अशङ्कनीया = न शङ्कार्हा । प्रसीदतु = हृष्यतु । स्वामी = महाराजः । सम्भ्रमेण = उद्वेगेन । अलमलम् = वारणार्थमव्ययमिदम् । स्वैरम् = स्वेच्छानुसारम् । वृत्तान्तः = समाचारः । स्वामिनाहमुक्तः = भवताहमादिष्टः । स्वामिदारिकया = राजकन्यकया कुरङ्गया ।

लोग मन्त्रियों को अमात्य शब्द से सम्बोधित कर उन्हें सूक्ष्मरूप से दण्ड ही दिया करते हैं ॥ ५ ॥

जयसेन ! महाराज कहाँ हैं ? क्या कहा ? उपस्थान गृह में हैं । खैर, वहाँ जाने में शंका की कोई बात नहीं है । (घूमकर घबराहट के साथ) महाराज प्रसन्न रहें ।

राजा—घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं । यथेच्छ बैठकर समाचार सुनाइये ।

कौञ्जायन—महाराज सुनें । महाराज ने मुझसे कहा था कि राजकुमारी के साथ तुम उद्यान जाओ ।

राजा—एवमुक्तम् । पुनः किम् ।

कौञ्जायनः—ततो गत्वोद्यानं यथासुखमाक्रीडय निवर्तमानायां राजसुतायां दासीदासहसितकथितश्रवणबृंहितमदस्रवन्मदजलार्द्रदुर्दिनाननो निहतपतितसादिपुरुषः क्षितिरजोवगुण्ठिताव्यक्तभीममूर्तिमूर्तिमानिव पवनो दृष्टादृष्टलघुप्रचारः स्वामिसचिवानां वक्तव्यं जनयितुकाम इवैकपुरुषविशेषं प्रकाशयितुमिच्छन्निव मदान्धस्तं देशमभ्युपगतो हस्ती।

आक्रीड्य = विहरणं कृत्वा । निवर्त्तमानायाम् = गृहं प्रति प्रतिवर्त्तमानायाम् । दासीति—दासीनाम् = अनुचरीणाम्, दासानाम् = भृत्यानाञ्च, हासस्य = पारस्परिकहासपरिहासात्मकवार्त्तालापस्य, श्रवणेन, बृंहितेन = वर्द्धितेन, मदेन = उन्मादेन, स्रवता = च्यवमानेन, मदजलेन = दानवारिणा, आर्द्रम् = सिक्तम्, अत एव दुर्दिनम् = क्लेदावहम्, आननम् = मुखम् यस्य तादृशः । दासीनां दासानाञ्च पारस्परिकं सहासपरिहासकं वार्त्तालापं श्रुत्वा अत्यधिकं मत्तो भूत्वा मदजलप्रस्रवणेनार्द्राानन इति यावत् । निहताः = पतिताः सादिनः = पुरुषाः येन तादृशः । क्षितिरजोभिः = भूमिधूलिकणैः, अवगुण्ठिताः = आवृताः, अत एव अव्यक्ता = अस्फुटा, भीमा = भीषणा मूर्तिर्यस्य तादृशः । मूर्तिमान् = शरीरी, पवनः = वायुः, अतिद्रुतगामित्वात् मूर्तवायुत्वेनोत्प्रेक्षा । दृष्टः क्वचिद् दृश्यमानः, अदृष्टः = क्वचिददृश्यमानश्च, लघुः प्रचारो यस्य तादृशः । स्वामिसचिवानाम् = राजमन्त्रिणाम्, वक्तव्यं = निन्दाम्, जनयितुकामः = बोधयितुमिच्छुरिव । प्रकाशयितुम् = प्रकटयितुम् । इच्छन्निव = कामायमान इव । मदान्धः = मदमत्तः । अभ्युपगतः = उपागतः । हस्ती = गजः ।

राजा—हाँ, ऐसा ही कहा था । फिर क्या ?

कौञ्जायन—इसके बाद उद्यान जाकर वहाँ सुखपूर्वक घूम-फिर लेने के बाद जब राजकुमारी लौट रही थी, उसी समय दासी-दासों के हँसने-बोलने की आवाज को सुनकर अत्यधिक उन्माद के कारण चूते हुए मदजल से गीले मुखवाला एक मतवाला हाथी महावत को मारकर पृथ्वी की धूल से धूसरित भयानक मूर्ति के समान तथा अत्यधिक वेग से चलने के कारण शरीरधारी वायु के सदृश तथा राजमन्त्रियों की शिकायत को प्रकट करने की इच्छा रखनेवाले के समान वहाँ पहुँच गया ।

राजा—तिष्ठतु विस्तरः। ननु कुशलिनी कुरङ्गी।

कौञ्जायनः—कथमकुशलिनी भवति विद्यमानेषु स्वामिभाग्येषु।

राजा—दिष्टया। यथेष्टमिदानीं ब्रूहि।

कौञ्जायनः—ततः प्रद्रुतेषु प्राकृतजनेषु हाहाकारमात्रप्रतीकारासु स्त्रीषु समाश्रितनिहतेषु सुपुरुषेषु उद्यानगतानां सर्वोपकरणानां परीक्षणाय मुहूर्तव्याक्षिप्ते मयि च नीतिगुप्ते सहसैव स्वामिदारिकाया यानमेव प्राप्तः स हस्ती।

तिष्ठतु = विरम्यताम्। विस्तरः = विस्तारेण कथनम्। कुशलिनी = कुशलम् अस्ति अस्याः इति कुशलिनी, निरापदेति भावः। विद्यमानेषु = वर्त्तमानेषु। स्वामिभाग्येषु = महाराजस्य भागधेयेषु, महाराजस्य भाग्यमेव एवं प्रबलम् वर्तते यस्माद्धि कुरङ्ग्याः विपद्ग्रस्ततायाः शङ्कैव नैव कर्त्तुं शक्यते इति भावः। दिष्ट्या = भाग्येन, भाग्यवशादेव कुरङ्गी इदानीम् पर्यन्तम् संरक्षितेत्यर्थः। यथेष्टम् = यथारुचि। ब्रूहि = उच्यताम्।

ततः = तदनन्तरम्। प्रद्रुतेषु = पलायितेषु। प्राकृतजनेषु = सामान्यपुरुषेषु। हाहाकारमात्रप्रतीकारासु = अन्यम् प्रतीकारम् अनालोक्य हाहाकारं कुर्वंतीषु। समाश्रितनिहतेषु = समाश्रिताः = प्राप्ताः, निहताः = व्यापादिताश्च, तेषु। सुपुरुषेषु = सेवकजनेषु। उद्यानगतानाम् = पुष्पवाटिकायाम् विद्यमानानाम्। सर्वोपकरणानाम् = निखिलवस्तूनाम्। परीक्षणाय = निरीक्षणाय। मुहूर्त्तव्याक्षिप्ते = मुहूर्तं यावत् आकुले सति। मयि = कौञ्जायने। सहसैव = अकस्मादेव। स हस्ती = गजः। स्वामिदारिकायाः = राजकन्यायाः। यानमेव = मनुष्यवाह्यम्

राजा—विस्तार छोड़ो। कुरङ्गी तो सकुशल है न?

कौञ्जायन—जब आपका भाग्य प्रबल है तो भला कुरङ्गी सकुशल क्यों न रहेगी?

राजा—अहोभाग्य! अब तुम जो कहना चाहते हो कहो।

कौञ्जायन—इसके बाद साधारण लोगों के भाग जाने पर, तथा अन्य कोई भी उपाय नहीं देखने से स्त्रियों के हाहाकार करने पर एवं कुछ लोगों के मारे जाने पर, उद्यानगत सामग्री को देखने के लिए जब मैं उधर गया तो वह हाथी राजकुमारी की सवारी पर टूट पड़ा।

देवी—हं इदो वरं किण्णु खु भविस्सदि। [हम्, इतः परं किन्नु खलु भविष्यति।]

राजा—अथ केन सनाथीकृता कुरङ्गी।

कौञ्जायनः—अथ कश्चिद् दर्शनी—(इत्यर्धोक्ते तिष्ठति)

राजा—यथेष्टमिदानीं ब्रूहि। निष्परिहारा व्यापदः।

कौञ्जायनः—अथ कश्चिद् दर्शनीयोऽप्यविस्मितस्तरुणोऽप्यनहङ्कारः शूरोऽपि दाक्षिण्यवान् सुकुमारोऽपि बलवान् स्वामिदारिकायां हस्तिनाभिभूयमानायां तत्कालदुर्लभमभयं प्रदाय निर्विशङ्कः समासादितवांस्तं द्विपवरम्।

राजा—अनृणः स कारुण्यस्य। ततस्ततः।

शिबिकारूपम् यानम्। प्राप्तः=आसादितः।

केन सनाथीकृता=केन पुरुषेण संरक्षिता। कश्चित्=अज्ञातनामधेयः। व्यापदः=आपत्तयः। निष्परिहाराः=अनभ्युपायाः।

दर्शनीयः=अवलोकनीयः, सुन्दर इति भावः। अविस्मितः=अचकितः। तरुणोऽपि=युवा भूत्वापि। अनहङ्कारः=गर्वरहितः। शूरोऽपि=पराक्रमी भवन्नपि। दाक्षिण्यवान्=शीलसम्पन्नः। अभिभूयमानायाम्=परिपीड्यमानायाम्। तत्कालदुर्लभम्=तस्मिन् समये दुष्प्रापम्। अभयम्=अभयदानम्। निर्विशङ्कः=शङ्कारहितहृदयः सन्। तम्=पूर्वोक्तम्। द्विपवरम्=गजश्रेष्ठम्।

देवी—हाय, इसके बाद क्या हुआ ?

राजा—फिर कुरङ्गी की रक्षा किसने की ?

कौञ्जायन—इसके बाद कोई सुन्दर (आधा कहकर रुक जाता है)।

राजा—कहते जाओ। विपत्ति के समय इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता।

कौञ्जायन—इसके बाद कोई सुन्दर होते हुए भी अचकित, युवक होते हुए भी गर्वरहित, पराक्रमी होते हुए भी सुशील तथा सुकोमल होते हुए भी शक्तिशाली युवक हाथी के द्वारा पीड़ित हो रही राजकुमारी को अभयप्रदान करता हुआ बिल्कुल निःशङ्क होकर हाथी के पास पहुँच गया।

राजा-उस युवकने दयालुता का ऋण चुका दिया। उसके बाद क्या हुआ?

कौञ्जायनः—ततस्तेन सललितसरभसकरतलताडनप्ररुष्टः सहसैव स्वामिदारिकां विहाय तमेव हन्तुकामः प्रतिनिवृत्तः स व्यालः।

देवी—कुसलो होदु। [कुशलं भवतु।]

राजा—ततस्ततः।

कौञ्जायनः—अथ तदनन्तरमभ्यागतेन भूतिकेन मया च पुनर्यानमारोप्य द्रुतमानीय कन्यान्तःपुरमेव प्रवेशिता स्वामिदारिका।

राजा—अहो महानयं प्रमादः। अथ भूतिकः किमर्थं नाभ्यागतः।

कौञ्जायनः—उक्तोऽहं भूतिकेन—गत्वेमं वृत्तान्तं स्वामिने कथय।

समासादितवान् = प्राप्तवान्। अनृणः = ऋणमुक्तः। कारुण्यस्य = दयालुतायाः।

सललितसरभसकरतलताडनप्ररुष्टः = सललितम् = लीलापूर्वकम्, सरभसम् = निर्विकारञ्च करतलेन यत् ताडनम् = प्रहारः, तेन प्ररुष्टः = क्रुद्धः। सः = पूर्वोक्तः। व्यालः = गजः। स्वामिदारिकाम् = राजकन्यकाम्। विहाय = परित्यज्य। तमेव = युवकमेव। हन्तुकामः = व्यापादयितुमिच्छुः। प्रतिनिवृत्तः = परावर्त्योद्यतोऽभूत्। कुशलम् = कल्याणम्। भवतु = जायताम्। स्वामिदारिका = राजदुहिता। अभ्यागतेन = अकस्मादागतेन। भूतिकेन = एतन्नामकेन राजसेवकेन। मया च = कौञ्जायनेन। पुनः यानमारोप्य = याने आरूढां विधाय। द्रुतमानीय = शीघ्रमानीय। कन्यान्तःपुरम् = राजकुमार्याः प्रासादम्। प्रवेशिता = सम्प्रापिता।

महानयं प्रमादः = महनीयं विपदागतासीत्। भूतिकेनोक्तः = तेन परामृष्टः।

कौञ्जायन—उसके बाद उस युवक ने खिलवाड़ के साथ एवं बिल्कुल निडर होकर अपने करतल से हाथी को पीटा जिससे वह हाथी रुष्ट होकर राजकुमारी को छोड़ युवक को ही मारने के लिए पलट पड़ा।

देवी—कल्याण हो उसका।

राजा—उसके बाद ?

कौञ्जायन—इसके बाद अचानक भूतिक के आ जाने पर मैंने एवं भूतिक ने पुनः राजकुमारी को सवारी पर बैठाकर तथा शीघ्र ले आकर कन्यान्तःपुर में पहुँचा दिया।

राजा-ओह, बहुत बड़ी भूल हो गई थी। अच्छा, भूतिक क्यों नहीं आये ?

कौञ्जायन—भूतिक ने मुझसे यह कहा कि जाकर यह समाचार महाराज

अहं तस्य पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञात्वा शीघ्रमागमिष्यामीति ।

राजा—तेन हि सर्वं परीक्ष्यागमिष्यति भूतिकः कौञ्जायन ! कतरकुलसमुद्भूतः परव्यसनसहायः ।

कौञ्जायनः—स्वामिन् इह विसंवादयत्यात्मानमन्त्यजोऽहमिति ।

देवी—महाराअ ! अकुलीणो कहं एव्वं साणुक्कोसो भवे । [महाराज ! अकुलीनः कथमेवं सानुक्रोशो भवेत् ।]

राजा—किन्नु खलु भवेदेतत् ।

(ततः प्रविशति भूतिकः ।)

भूतिकः—(सविस्मयम्) अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः । अस्य

स्वामिने = महाराजाय । तस्य पुरुषस्य = पूर्वोक्तस्य युवकस्य । प्रवृत्तिम् = समाचारम् । अन्वयञ्च = वंशञ्च । सर्वम् परीक्ष्य = युवकस्य कुलादिविषये सर्वम् परिज्ञाय । परव्यसनसहायः = परस्य = अन्यस्य, व्यसने = विपत्तौ, सहायः = साहाय्यं कर्त्तुम् प्रवृत्तः । कतरकुलसमुद्भूतः = कस्मिन् वंशे समुत्पन्नः । इह = कुलादिविषये । अन्त्यजः = नीचवर्णोद्भवः । इति = एवम् । आत्मानम् = निजरूपम् । विसंवादयति = गोपयति । अकुलीनः = असद्वंशोद्भवः । कथमेवम् = एतादृशः । सानुक्रोशः = दयाशीलः । भवेत् = स्यात् । किन्नु खलु भवेदेतत् = कथमेवं स्यादित्यर्थः ।

प्रच्छन्नरत्नता = प्रच्छन्नानि = गुप्तानि, रत्नानि = मणिकाञ्चनादीनि रत्नानि

से कहो । मैं उस युवक का समाचार तथा वंशादि का पता लगाकर शीघ्र आ जाऊँगा ।

राजा—तब तो भूतिक सब-कुछ पता लगाकर आयेगा । कौञ्जायन ! विपत्ति में दूसरों की सहायता करनेवाला वह युवक किस कुल में उत्पन्न हुआ है ?

कौञ्जायन—महाराज, वह अपने को अन्त्यज कहकर अपने असली वंश को छुपाना चाहता है ।

देवी—महाराज ! अकुलीन व्यक्ति इतना दयावान् कैसे हो सकता है ?

राजा—यह कैसे हो सकता है ।

(भूतिक का प्रवेश)

भूतिक—(आश्चर्य से) अह ! पृथ्वी में बहुत से रत्न छिपे पड़े हैं । इस पुरुष

तावत् पुरुषस्य निर्व्याजेन विक्रमेण मन्दीभूता इव मनस्विनां विक्रम-बुद्धयः। एकस्तु मे संशयः, किमर्थमात्मानमन्वयं चाच्छादयति। अथवा कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम्। इह हि,

छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति ॥ ६ ॥

यस्याम् तस्याः भावः। निर्व्याजेन = निष्कपटेन। विक्रमेण = पराक्रमेण। मनस्विनाम् = शूराणाम्। मन्दीभूताः = शिथिलीजाताः। किमर्थम् = कस्माद्धेतोः। आत्मानमन्वयम् = स्वम् स्वकीयम् नामकुलादिकञ्च। आच्छादयति = गोपयति, नैव प्रकटयितुमिच्छतीत्यर्थः। अथवा = सत्यमेतत्। सूर्यम् = भानुम्। हस्तेन = करेण। आच्छादयितुम् = आवृतं कर्त्तुम्। कः = कतमः। शक्तः = समर्थः। यथा हस्तेन सूर्यस्य पिधानमशक्यम् तथैव पराक्रमिणो जनस्य नामगोत्रादिगोपनमपि दुष्करमिति भावः।

छन्ना भवन्तीति। अन्वयः—कथञ्चित्, स्वैः, कारणैः, गुरुजनैश्च, नियम्यमानाः, सत्पुरुषाः, भुवि, छन्नाः, भवन्ति, भूयः, परव्यसनम्, एत्य, विमोक्तुकामाः, पूर्वनियमम्, विस्मृत्य, विवृताः, भवन्ति।

कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण। स्वैः कारणैः = आत्मानुभूतिमात्रविषयैः हेतुभिः। गुरुजनैश्च = पित्रादिभिः। नियम्यमानाः = निरुध्यमानाः। सत्पुरुषाः सज्जनाः। छन्नाः = गुप्ताः। भवन्ति = सन्तिष्ठन्ते। भूयः = पुनः। परव्यसनम् = अन्यस्य विपत्तिम्। एत्य = प्राप्य। विमोक्तुकामाः = विमोचयितुमिच्छवः। पूर्वनियमम् = प्राक्तनं नियमम्। विस्मृत्य। विवृताः = प्रकटिताः। भवन्ति।

के निष्कपट पराक्रम से वीरों का बुद्धि-विक्रम मन्द पड़ गया है। मुझे एक ही सन्देह हो रहा है कि आखिर यह अपने को तथा अपने वंश को छिपा क्यों रहा है। अथवा सूर्य को हाथ से कौन ढँक सकता है?

सज्जन लोग विशेष कारणों एवं गुरुजनों के नियन्त्रण से अपने को छिपाये रखते हैं किन्तु दूसरों को विपत्ति में देख उन्हें मुक्त करने के लिए अपने पूर्वनियम का परित्याग कर स्वतः प्रकट हो जाते हैं॥ ६ ॥

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी । किं ब्रवीषि--उपस्थानगृह इति । अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) अये अयं महाराजो देव्या सहास्ते । (उपगम्य) जयतु महाराजः ।

राजा—देवि ! त्वमभ्यन्तरं प्रविश्याश्वासय कुरङ्गीम् । अहमप्यनुपदमागमिष्यामि ।

देवी—जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्ता)

राजा—को वृत्तान्तस्तस्य परार्थमनवेक्षितशरीरस्य ।

भूतिकः – श्रृणोतु स्वामी । स मुहूर्तमनादरमत्वरितं सललितं प्रियवयस्येनेव तेन हस्तिना प्रक्रीडय निवर्तनानुवर्तनगतिविशेषैर्विमोह्य

सत्पुरुषाः जनाः पित्रादिगुरुजननियन्त्रणादिकेन च कियन्तं कालं यावत् कारणविरोपैरात्मानं गोपयन्तः तिष्ठन्ति किन्तु परान् विपदवस्थायामवलोक्य तेषामुद्धारार्थम् स्वत एव प्रकटिताः भवन्तीति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

देव्या सह = महाराज्ञ्या सह । उपगम्य = समीपं गत्वा ।

अभ्यन्तरम् = अन्तःपुरम् । आश्वासय = सान्त्वय । कुरङ्गीम् = दुहिताम् । अनुपदम् = शीघ्रमेव । परार्थम् = अन्येषाम् कल्याणार्थम् । अनवेक्षितशरीरस्य = उपेक्षितदेहस्य । अन्येषामुपकाराय यः स्वीयशरीरमुपेक्षते तादृशस्येति भावः । सः = युवकः । मुहूर्त्तम् = कियत्कालं यावत् । तेन = मदमत्तेन । हस्तिना = गजेन ।

जयसेन, महाराज कहाँ हैं ? क्या कहा, उपस्थानगृह में हैं ? तब तो वहाँ जाने में शङ्का की कोई बात नहीं है । प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश करके) यहीं तो महाराज महारानी के साथ विराजमान हैं । (निकट जाकर) महाराज की जय हो ।

राजा—देवि ! तुम अन्दर जाकर कुरङ्गी को सान्त्वना दो । मैं भी शीघ्र ही आ रहा हूँ ।

देवी—जैसी महाराज की आज्ञा । (जाती है ।)

राजा—दूसरों के लिए अपने शरीर की उपेक्षा करने वाले उस युवक का क्या समाचार है ?

भूतिक—महाराज सुनें । उस युवक ने कुछ देर तक उपेक्षा के साथ उस

लज्जित इव तेन कर्मणा महाजनप्रशंसामसहमानः समवनतशिरस्कः स्वैरं स्वमेवावासं गतः ।

राजा—भोः ! प्रीतोऽस्मि । अयं हि मे द्वितीयो लाभः ।

भूतिकः—अथ तदनन्तरमुपलभ्य हस्तिनीभिस्तं गजवरं सङ्ग्राह्येमां गजशालां प्रवेश्याहं तस्य पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञातुमन्यापदेशेन गतवानस्मि ।

राजा—अथ किं कृतो निश्चयः । श्रुतमस्माभिरन्त्यज इति ।

प्रियवयस्येनैव = हृद्यसुहृदेव । प्रक्रीड्य = क्रीडां विधाय । निवर्त्तानुवर्त्तगतिविशेषैः = पश्चाद्गमनमनुवर्त्तनम् साक्षाद्गमनञ्च, तथाभूतैर्गतिविशेषैः । विमोह्य = मोहमापाद्य । तेन कर्मणा = गजपराभवरूपकार्येण । महाजनप्रशंसाम् = श्रेष्ठपुरुषकृतस्तुतिम् । समवनतशिरस्कः = नम्रीकृतमस्तकः ।

प्रीतोऽस्मि = प्रसन्नोऽस्मि । द्वितीयो लाभः = अपरोपलब्धिः । दुहितुः सकुशलं गृहगमनं प्रथमो लाभः, तस्याः रक्षकस्य युवकस्य च सकुशलं गृहगमनं द्वितीयो लाभ इत्यर्थः ।

हस्तिनीभिः करिणीभिः । तम् = पूर्वोक्तम् । गजवरम् = हस्तिश्रेष्ठम् । संग्राह्य = वश्यं कृत्वा । इमां गजशालाम् = गजावासस्थलम् । प्रवेश्य = प्रापय्य । प्रवृत्तिम् = समाचारम् । अन्वयञ्च = कुलञ्च । ज्ञातुम् वेत्तुम् । अन्यापदेशेन = अन्यकार्यच्छलेन । किं कृतो निश्चयः = को निर्णयो विहितः ।

हाथी के साथ खेल किया, मानो अपने प्रिय मित्र के साथ खेल रहा हो । फिर आगे-पीछे हटकर उसने हाथी को लज्जित-सा कर दिया । इसके बाद लोगों द्वारा की गई प्रशंसा उसे अच्छी नहीं लगी और सिर झुकाये वह अपने घर को चला गया ।

राजा—मुझे बहुत प्रसन्नता हुई, यह मेरे लिए दूसरा लाभ हुआ ।

भूतिक—उसके बाद उस हाथी को हथिनियों की सहायता से पकड़वाकर गजशाला में भिजवा दिया और मैं उस पुरुष के वंश-वृत्त का पता लगाने चल पड़ा ।

राजा—फिर तुमने क्या निर्णय लिया । हमने सुना है कि वह अन्त्यज है ?

भूतिकः—शान्तं शान्तं पापम् । नायं तादृशः केनापि कारणेनात्मानमन्वयं चाच्छादयति ।

राजा—अथ किं भवता परीक्षितम् ?

भूतिकः—किमत्र परीक्षितव्यम् ।

दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं
क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च ।
यद्येवं स्यात् सत्यमस्यान्त्यजत्वं
व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः ।। ७ ।।

शान्तम् पापम् = नैवम् वक्तव्यमित्यर्थः । नायं तादृशः = सः युवकः कदापि अन्त्यजो भवितुं नैव शक्यः । केनापि कारणेन = कस्मादपि हेतुविशेषात् । आत्मानम् = स्वम् । अन्वयश्च = वंशश्च । अच्छादयति = गोपयति ।

अथ किं भवता परीक्षितम् = त्वया सर्वम् सम्यक् निरीक्षितम् किम् ? परीक्षितव्यम् = अन्वेष्टव्यम् ।

दैवं रूपमिति । अन्वयः—तस्य, दैवं, रूपम्, ब्रह्मजं वाक्यम्, क्षात्रं तेजः, सौकुमार्यम् बलम्, च, एवम्, सति, यदि, अस्य, अन्त्यजत्वम्, स्यात्, शास्त्रमार्गेषु, अस्माकम्, खेदः, व्यर्थः ।

तस्य = युवकस्य । दैवम् = देवोपमम् । रूपम् = शारीरिकी छविः । ब्रह्मजम् = विप्रोपयुक्तम् । वाक्यम् = वचनम् । क्षात्रम् = क्षत्रियोचितम् । तेजः = शौर्यम् । सौकुमार्यम् = कोमलताम् । बलञ्च = शक्तिञ्च । एवं सति = अस्यामपि स्थितौ । यद्यस्य = युवकस्य । अन्त्यजत्वम् = नीचवंशोद्भवत्वं सत्यं स्यात्तर्हि अस्माकम् शास्त्रमार्गेषु = शास्त्राध्ययनविषये । कृतः खेदः = श्रमः ।

भूतिक—राम राम ! ऐसा न कहें । वह जैसा नहीं है । किसी विशेष कारण से वह अपने को एवं अपने वंश को छिपा रहा है ।

राजा—तुमने इसकी परीक्षा कर ली है क्या ?

भूतिक—इसमें परीक्षा की क्या बात है ?

उसके देवतुल्य रूप, ब्राह्मणों जैसी वाणी, क्षत्रियों जैसा तेज, कोमलता एवं शक्ति को देखकर भी यदि उसे अन्त्यज कहा जाय तो शास्त्राध्ययन में किया गया हमारा सारा परिश्रम बेकार ही है ।। ७ ।।

राजा—किमस्त्यस्य कलत्रम् ?

भूतिकः—सर्वमस्ति । कलत्रं त्वयमभिनिविष्टः ।

राजा—यद्यपि स्त्रीदर्शनं परिहृतं, किमर्थं तस्य पिता न परीक्षितः ?

भूतिकः—दृष्टस्तत्रभवान् सत्पुत्रसम्पन्नः स हि,

व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसो
ज्याघातप्रचितकिणोल्बणप्रकोष्ठः ।
प्रच्छन्नोऽप्यनुकृतिलक्ष्यराजभावो
मेघान्तर्गतरविवत् प्रमानुमेयः ॥ ८ ॥

व्यर्थं = वृथा भवेदिति । शास्त्रदृष्ट्या एतावद्गुणयुक्तो नरः कदापि अन्त्यजो भवितुम्नार्हतीति भावः । पद्येऽस्मिन् 'मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः" इति लक्षणात् शालिनीछन्दः ॥ ७ ॥

कलत्रम् = पत्नी । अभिनिविष्टः = अत्यधिकः समादरशीलः । यद्यपि स्त्रीदर्शनम् परिहृतम् = यद्यपि परपत्न्या सह साक्षात्कारः शास्त्रवर्जितः । परीक्षितः = साक्षात्कृतः । तस्य पित्रा सह साक्षात्कारं विधाय तन्नामगोत्रादिकं कथन्न विज्ञातमिति भावः । दृष्टः = साक्षात्कृतः । स हि = तस्य युवकस्य पिता ।

व्यायामेति । अन्वयः—व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसः, ज्याघातप्रचितकिणोल्बणप्रकोष्ठः, प्रच्छन्नः, अपि, अनुकृतिलक्ष्यराजभावः, मेघान्तर्गतरविवत्, प्रभानुमेयः ।

व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसः = व्यायामेन = नियतपरिश्रमेण, स्थिरः = दृढः, विपुलः = विस्तृतः, उच्छ्रितः = उन्नतः, आयतः = विशालः, अंसः = स्कन्ध-

---

राजा—क्या उसकी पत्नी भी है ?

भूतिक—सब है । पत्नी को तो वह बहुत चाहता है ।

राजा—यद्यपि परपत्नी के साथ मिलना वर्जित है, फिर भी उसके पिता से मिलकर तुमने सारी बातों का पता क्यों नहीं लगा लिया ?

भूतिक—उस सुपुत्र सम्पन्न पिता के दर्शन हुए थे । वह—

व्यायाम के कारण उनके कन्धे उन्नत, विशाल एवं दृढ़ हैं, मौर्वीकर्षण के कारण उनके हाथों में घावों के अनेक चिह्न हैं । वह यद्यपि अपने को छिपा रहे हैं किन्तु मेघमण्डल द्वारा आच्छादित सूर्य की तरह ही कान्तिमात्र से ही उनके राजभाव का पता चल जाता है ॥ ८ ॥

राजा—अलमेतावता प्रसङ्गेन । पुनरप्येषा परीक्षा क्रियताम् ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

राजा—अथेदानीं काशिराजदूतं प्रति किं कर्तव्यम् ।

भूतिकः—स्वामिन् ! दूतशतान्यागतान्यागमिष्यन्ति च ।

न तत्र कर्तव्यमिहास्ति लोके
कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम् ।
सर्वे नरेन्द्रा हि नरेन्द्रकन्यां
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ॥ ९ ॥

प्रदेशो यस्य तथाभूतः । ज्याघातप्रचितकिणोल्बणप्रकोष्ठः = ज्यायाः = मौर्व्याः, आघातेन = नियतकर्षणेन, प्रचितैः = समुद्भूतैः, किणैः शुष्कव्रणचिह्नैः, उल्बणः = भीषणः, प्रकोष्ठः = भुजप्रदेशो यस्य तथाभूतः । प्रच्छन्नोऽपि = नाम-वंशादिगोपनेन तिरोहितस्वरूपोऽपि । अनुकृतिलक्ष्यराजभावः = अनुकृत्या = आचरणेन, लक्ष्यः = ज्ञेयः, राजभावः = नृपत्वम्, यस्य तादृशः । मेघान्तर्गतरविवत् = मेघमण्डलाच्छादितभानुवत् । प्रभानुमेयः = कान्त्या ज्ञेयः । तस्य स्कन्धेन, भुज-प्रदेशेन, प्रत्येकाचरणेन च तस्य राजभावः सूच्यते इति भावः । "म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्" इति लक्षणात् पद्येऽस्मिन् प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ८ ॥

एतावता प्रसङ्गेन = इयता परिकरेण । एषा परीक्षा = तदीयपरिचय-जिज्ञासा । काशिराजदूतं प्रति किं कर्त्तव्यम् = समागतस्य काशिराजसंदेशवाहकस्य कृते किं संदेष्टव्यम् ? दूतशतानि = बहवो दूताः । शतशब्दस्य बहुत्वेऽभिप्रायः ।

न त्रेतति । अन्वयः— इह लोके, तत्र, कर्त्तव्यम्, न, अस्ति । कन्यापितृत्वम्, बहुवन्दनीयम्, मल्लाः, पताकामिव, सर्वे, नरेन्द्राः, नरेन्द्रकन्याम्, तर्कयन्ति ।

इह लोके = अस्मिन् विषये । तत्र कर्त्तव्यम् नास्ति = न किमपि विधेयमस्ति ।

राजा—इतने विस्तार की आवश्यकता नहीं । फिर से इसका पता लगाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा ।

राजा—अब काशिराज के दूत का क्या किया जाय ?

भूतिक—महाराज ! सैकड़ों दूत आये और आते ही रहेंगे ।

इस विषय में कुछ भी करना नहीं है, कन्या का पिता होना सौभाग्य की बात होती है । सभी राजकुमारी को उसी प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार वीर पुरुष विजय-ध्वज को चाहते हैं ॥ ९ ॥

राजा—कोऽभिप्रायः।

भूतिकः—सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्तव्यम्। गुणबाहुल्यं तदात्वमायतिचावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यमित्यर्थः।

राजा—युक्तमभिहितं भूतिकेन। कौञ्जायन! किमर्थं तूष्णीं भूतः।

कौञ्जायनः—स्वामिन्! बहुष्वपि क्षत्रियेषु पूर्वसम्बन्धविशेषौ सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ अस्मत्सम्बन्धयोग्याविति स्वामिना चिन्तितौ। तत्र पूर्वमेव सौवीरराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः। स चास्माभिरतिबाला कन्येत्यपदेशमुक्त्वा सुपूजितो विसर्जितः। इदानीं तु काशिराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः। तत्र बलाबलचिन्तायां स्वामी प्रमाणम्।

कन्यापितृत्वम् बहुवन्दनीयम् = भृशम् श्लाघनीयम्। यतो हि कन्यावतां पुरतः सर्वे राजानः याचकरूपेणोपस्थिताः भवन्ति अतः कन्यापितृत्वं प्रशंसनीयम्. मल्लाः = योद्धारः। पताकामिव = विजयध्वजमिव। सर्वे नरेन्द्राः = राजानः। नरेन्द्रकन्याम् = राजकुमारीम्। तर्कयन्ति = स्वप्राप्याम् मन्यन्ते॥ ९॥

दाक्षिण्यम् = औदार्यम्। गुणबाहुल्यम् = नानागुणसमन्वितत्वम्। तदात्वम् = तात्कालिकीं स्थितिम्। आयतिम् = भविष्यम्। त्वरताम् = शीघ्रकारित्वम्।

राजा—इसका क्या तात्पर्य?

भूतिक—हर जगह उदारता नहीं बरतनी चाहिये। गुण की अधिकता, तात्कालिक स्थिति तथा भविष्य देखकर, जल्दीबाजी तथा दीर्घसूत्रता को छोड़कर देशकाल के अनुसार कार्य करना चाहिये।

राजा—भूतिक ने ठीक कहा। कौञ्जायन! तुम चुप क्यों हो?

कौञ्जायन–महाराज! बहुत से क्षत्रियों के रहने पर भी पुराने सम्बन्धी सौवीरराज एवं काशिराज आपके बहनोई होते हैं, अतः आपने सोचा था कि ये हमारे सम्बन्ध के योग्य हैं। सौवीरराज ने पहले ही अपने पुत्र के निमित्त दूत भेजा था। हम लोगों ने उसे आदर के साथ यह कहकर लौटा दिया कि कन्या अभी निरी बच्ची है। अब काशिराज ने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है। अब आप ही विचार करें कि सम्बन्ध कहाँ किया जाय।

राजा—सम्यगुक्तं कौञ्जायनेन । भूतिक ! सर्वराजमण्डलमपोह्य द्वयोः स्थापितयोः कं प्रति विशेषः ।

भूतिकः—न भृत्यदूषणीया राजानः; स्वामिनो हि स्वाम्यममात्यानाम् ।

राजा—अलमुपचारेण । ब्रूहि को निश्चयः ।

भूतिकः—इदानीं तु न प्रत्याख्यातव्यम् । स्वामिन् ! सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ । अथ देव्या भ्रातेति सौवीरेन्द्रो गुणाधिकः ।

राजा—न खलु भवानस्मत्सङ्कल्पानभिवादकः ।

भूतिकः—उभयथानुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—भोः ! किन्नु खलु सौवीरेन्द्रेण पुनर्न दूतसम्पातः क्रियते ।

दीर्घसूत्रताम् = विलम्बेन कार्यकारित्वम् । देशकालाविरोधेन = देशकालानुसारेण । अतिबाला = अत्यल्पवयस्का । अपदेशमुक्त्वा = छलं कृत्वा । बलाबलचिन्तायाम् = केन सह सम्बन्धो विधेय इति तारतम्यभावविचारे । स्वामीप्रमाणम् = भवानन्तिमनिर्णायकः ।

अपोह्य = अपास्य, अगणयित्वा । द्वयोः = सौवीरराजकाशिराजयोः । भृत्यदूषणीयाः = भृत्यैर्निन्दनीयाः । उपचारेण = शिष्टाचारप्रयुक्तव्यवहारेण । अस्मत्सङ्क-

---

राजा—कौञ्जायन ने ठीक कहा है । भूतिक ! समस्त राजमण्डल को छोड़कर चुने गये इन दोनों में कौन-सा अच्छा रहेगा ?

भूतिक—भृत्यों को राजा की निन्दा नहीं करनी चाहिये, राजाओं का मन्त्रियों पर स्वामित्व होता है ।

राजा—शिष्टाचार की बातें छोड़ो । बोलो, क्या निश्चय है ?

भूतिक—अब तो प्रत्याख्यान नहीं करना है । महाराज ! सौवीरराज एवं काशीराज आपके समान रूप से बहनोई हैं परन्तु महारानी के भाई होने के नाते सौवीरराज गुणाधिक सिद्ध होते हैं ।

राजा—तुम कभी भी हमारे निश्चय का विरोध नहीं करते हो ।

भूतिक—दोनों प्रकार से अनुगृहीत हुआ ।

राजा—अजी, सौवीरराज पुनः दूत क्यों नहीं भेजते हैं ?

भूतिकः---तत्रास्ति मे कश्चित् सन्देहः सुष्ठु परीक्ष्य वक्ष्यामीति नोक्तवानस्मि ।

राजा—ननु कुशली तत्रभवान् ।

भूतिकः -वदन्ति चारपुरुषाः—

न दृश्यते तत्रभवान् सपुत्रः
कार्याण्यमात्याः किल वर्तयन्ति ।
न विद्यते कारणमत्र किञ्चि-
न्न लभ्यते राजकुलप्रवेशः ॥ १० ॥

राजा—भोः ! किन्नु खलु भवेदेतत् ।
कामाहतः कुमतिभिः सचिवैर्गृहीतो

ल्पानभिवादकः = मदीयनिश्चयसमर्थकः । सुष्ठु = सम्यक्तया ।

न दृश्यते इति । अन्वयः—सपुत्रः, तत्रभवान्, न, दृश्यते, अमात्याः, किल, कार्याणि, वर्त्तयन्ति, अत्र, किञ्चित्, कारणम, न, विद्यते, न, लभ्यते, राजकुलप्रवेशः ।

सपुत्रः = पुत्रेण युक्तः । तत्रभवान् = सौवीरराजः । न दृश्यते = नावलोक्यते । अमात्याः = मन्त्रिणः । कार्याणि = राजकर्माणि । वर्तयन्ति = सम्पादयन्ति । अत्र = राज्ञः सपुत्रस्यादर्शने । किञ्चित् = किमपि । कारणम् = हेतुः । न विद्यते = न वर्तते । न लभ्यते = न प्राप्यते राजकुलप्रवेश इति ॥ १० ॥

कामाहत इति । अन्वयः-कामाहतः, कुमतिभिः, सचिवैः, गृहीतः, रोगातुरः,

---

भूतिक—यहाँ मुझे कुछ सन्देह है । भलीभाँति पता लगाकर कहूँगा, इसीलिए महाराज से अब तक नहीं कहा था ।

राजा—सौवीरराज कुशलपूर्वक तो हैं न ?

भूतिक— गुप्तचरों का कहना है कि—

आजकल पुत्रसहित सौवीरराज दिखाई नहीं देते हैं, सभी कार्यों का सम्पादन मंत्री लोग ही करते हैं, कुछ कारण समझ में नहीं आता, किसी को भी राजकुल में प्रवेश करने नहीं दिया जाता है ॥ १० ॥

राजा—अजी, इसमें क्या हो सकता है ?

कामासक्त हैं या मंत्रियों ने उन्हें बन्दी बना लिया है ? रुग्ण हैं, या

रोगातुरः स्वजनरागमवेक्षते वा ।
शप्तो द्विजैर्व्रतमुपेत्य करोति शान्तिं
को वा भवेन्नरपतेर्गृहरोधहेतुः ॥ ११ ॥

शीघ्रं परीक्ष्यतामेष वृत्तान्तः ।

भूतिकः---यदाज्ञापयति स्वामी ।

राजा—कौञ्जायन ! किमिदानीं काशिराजदूतं प्रति कर्तव्यम् ।

कौञ्जायनः---एवं गते काशिराजदूतः पूजयितव्यः । बहुमुखा विवाहा यथेष्टं साध्यन्ते ।

राजा—अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानां, न स्नेहम् ।

(नेपथ्ये)

वा, स्वजनरागम् अवेक्षते । वा, द्विजैः, शप्तः, व्रतम्, उपेत्य, शान्तिम् करोति, नरपतेः गृहरोधहेतुः, कः वा, भवेत् ।

कामाहतः = मदनासक्तः । कुमतिभिः = दुर्बुद्धिभिः । सचिवैः = मन्त्रिभिः । गृहीतः = रहसि निरुद्धः । रोगातुरः = रुग्णः । वा स्वजनरागम् = आत्मीयजनानां प्रेम । अवेक्षते = परीक्षते । द्विजैः = विप्रैः । शप्तः = निग्रहवचसा कर्दथितः सन् । व्रतमुपेत्य = व्रतं विधाय । शान्तिं करोति = शापनिवर्तनार्थम् विधानमा-

---

आत्मीयजनों के प्रेम की परीक्षा ले रहे हैं या ब्राह्मणों द्वारा अभिशप्त होकर उसकी शान्ति का उपाय कर रहे हैं, आखिर उनके छिपने का क्या कारण हो सकता है ? ॥ ११ ॥

इसका पता शीघ्र लगाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा ।

राजा—कौञ्जायन ! इस समय काशिराज के दूत का क्या किया जाय ?

कौञ्जायन---ऐसी स्थिति में काशिराज के दूत का आदर हो । विवाह में बहुत में से एक को चुनना पड़ता है ।

राजा---हाँ, मन्त्रियों की बुद्धि केवल कार्य की अपेक्षा रखती है, स्नेह की नहीं ।

(नेपथ्य में)

जयतु स्वामी, जयतु महाराजः। दश नालिकाः पूर्णाः।

भूतिकः---स्वामिन्! शेषमभ्यन्तरे चिन्तयिष्यामः। अतिक्रामति स्नानवेला। स्वामिदारिका चाश्वासयितव्या। महादेवी च चिरं प्रतीक्षते। महाजनोऽप्यस्मिन्नुपद्रवे स्वामिनं द्रष्टुमिच्छति।

राजा---अहो महद्भारो राज्यं नाम। कुतः,

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्धया
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥१२॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

प्रथमोऽङ्कः।

चरति। नरपतेः = राज्ञः। गृहरोधहेतुः = गृहे प्रच्छन्नरूपेणावस्थितौ। को वा भवेत् = किं कारणं स्यात् ॥ ११ ॥

धर्मः प्रागेवेति। अन्वयः—धर्मः, प्रागेव, चिन्त्यः, स्वबुद्धया, सचिवमतिगतिः, प्रेक्षितव्या, रागद्वेषौ, प्रच्छाद्यौ, कालयोगेन, मृदुपुरुषगुणौ, कार्यौ लोकानुवृत्तम्, ज्ञेयम्, परचरनयनैः, मण्डलम्, प्रेक्षितव्यम्, इह, यत्नात्, आत्मा, रक्ष्यः, पुनः, रणशिरसि, सोऽपि, न, अवेक्षितव्यः।

महाराज की जय हो, महाराज की जय हो, दस बज गये।

भूतिक---महाराज! अन्य बातों पर बाद में विचार किया जायगा। स्नान का समय बीत रहा है। राजकुमारी को सान्त्वना भी देनी है। महारानी देर से प्रतीक्षा कर रही है। अन्य लोग भी महाराज के दर्शनार्थ इच्छुक हैं।

राजा---ओह, राज्य भी एक बहुत भारी बोझ होता है, क्योंकि—

पहले धर्म देखना होता है, अपनी बुद्धि से मन्त्रियों की गतिविधि देखनी पड़ती है, राग एवं द्वेष को छिपाना पड़ता है, कोमलता एवं कठोरता का व्यवहार समयानुसार करना पड़ता है। गुप्तचर रखना पड़ता है, प्रजाजन की रक्षा करनी पड़ती है, अपनी रक्षा करनी पड़ती है तथा युद्ध में अपनी भी उपेक्षा करनी होती है ॥ १२ ॥

(सबका प्रस्थान)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः भो ! ण जाणन्ति अवत्थाविसेसं इस्सरपुत्ता णाम। अदो तत्तभवं अविमारओ इसिसावेण कुलपरिब्भंसं अन्तअकुलप्पवासं अत्तणो

धर्मः = कर्त्तव्यं कर्म। प्रागेव = पूर्वमेव। चिन्त्यः = सम्यग्विचारणीयः। स्वबुद्धया = निजमत्यनुसारम्। सचिवमतिगतिः = मन्त्रिबुद्धिधारा। प्रेक्षितव्या = निरीक्षणीया। रागद्वेषौ = प्रेमकलहौ। प्रच्छाद्यौ = बलान्निग्रहीतव्यौ। कालयोगेन = समयानुसारेण। मृदुपरुषगुणौ = कुत्रचित्कोमलता कुत्रचित्कठोरता च। कार्यौ = विधेयौ। लोकानुवृत्तम् = लोकवृत्तम्। ज्ञेयम् = बोद्धव्यम्। परचरनयनैः = उत्तमगुप्तचरनेत्रैः। मण्डलम् = प्रजामण्डलम्। प्रेक्षितव्यम् = ध्येयम्। इह = लोके। यत्मात् = प्रयत्नपूर्वकं यथा स्यात्तथा। आत्मा = प्राणाः। रक्ष्यः = रक्षणीयः। पुनः = भूयः। रणशिरसि = युद्धे। सोऽपि = आत्मापि। न = नहि। अवेक्षितव्यः = चिन्तनीयः॥ १२॥

इति कमलेश्वरी-टीकायां प्रथमोऽङ्कः

भोरिति। अवस्थाविशेषम् = स्वीयदशापरिवर्तनम्। ईश्वरपुत्राः = राजकुमाराः। अत्रेश्वरशब्दः स्वामिपर्याय। तथाहि—"स्वामी

विदूषक—अरे ! ये राजकुमार अवस्था-परिवर्तन को समझते ही नहीं। इसीलिए यह अविमारक—कुलभ्रंश, अन्त्यजकुल-प्रवास, अपना ज्ञान एवं

विण्णाणं गुरुजणं च अचिन्तअन्तो जदा हत्थिसम्भमदिअसे कुन्तिभो-अदुहिआ कुरङ्गी दिट्ठा, तदप्पहुदि, अण्णादिसो विअ संवुत्तो। ही ही किं बहुणा, मए वि सह गोट्ठि णेच्छदि, सव्वआलं चिन्तअन्तो अहिर-मदि। सच्चो खु लोअप्पवादो 'सङ्घआरिणो अणत्थ' त्ति। को एत्थ सम्बन्धो। सा राअदारिआ सअं अन्तअ त्ति। अहं पि दाव बम्हणपरि-वादं परिहरन्तो बम्हणकुलेसु परिब्भमिअ पच्छण्णो तत्तहोदो आवासं एव्व गच्छामि। [भोः ! न जानन्त्यवस्थाविशेषमीश्वरपुत्रा नाम। अतस्तत्रभवान् अभिसारकः ऋषिशापेन कुलपरिभ्रंशमन्त्यजकुलप्रवासमात्मनो विज्ञानं गुरुजनं चाचिन्तयन् यदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुन्तिभोजदुहिता कुरङ्गी दृष्टा, तदाप्रभृत्य-न्यादृश इव संवृत्तः। ही ही किं बहुना, मयापि सह गोष्ठीं नेच्छति, सर्वकालं चिन्तयन्नभिरमते। सत्यः खलु लोकप्रवादः 'सङ्घचारिणोऽनर्था' इति। कोऽत्र सम्बन्धः। सा राजदारिका, स्वयमन्त्यज इति। अहमपि तावद् ब्राह्मणपरिवादं परिहरन् ब्राह्मणकुलेषु परिभ्रम्य प्रच्छन्नस्तत्रभवत आवासमेव गच्छामि।]

स्वीश्वरः पतिरीशिता'' इत्यमरः। ऋषिशापेन = कस्यापि ऋषेर्निग्रहवचसा। हस्तिसंभ्रमदिवसे = यस्मिन् दिवसे मत्तो हस्ती कन्योद्यानं प्रविश्य तत्रस्थान् जनान् पीडयितुम् प्रवृत्तस्तस्मिन् दिवसे। अन्यादृशः = पूर्वापेक्षया विलक्षणः। संवृत्तः = संजातः। सह गोष्ठीं नेच्छति = जनैः सार्द्धम् नैव संसर्गमिच्छति। सर्वकालम् = सर्वदा। चिन्तयन्नभिरमते = चिन्तायुक्तमानसस्तिष्ठति। संघ चारिणोऽनर्थाः = विपत्तयः खलु संघचारिण्यः अर्थात् कश्चिदप्यनर्थो नैव कदापि एकाकी समापतति अपि तु संघे एव समापतति इति भावः। कोऽत्र सम्बन्धः = नैव कश्चन सम्बन्ध यस्मात्तु अनुरागोत्कर्षः समर्थ्येत। ब्राह्मणपरिवादं परिहरन् = अयं ब्राह्मणः इति मन्तव्यमपाकुर्वन्।

गुरुजन—सब कुछ भूलकर जभी से उस हस्तिसंभ्रम के दिन कुन्तिभोजपुत्री कुरङ्गी दीख गई, तभी से कुछ अन्य प्रकार का ही हो गया है। हः हः और क्या, मेरे साथ भी नहीं बैठना चाहता। हमेशा चिन्तित रहा करता है। लोगों का यह कहना ठीक ही है कि अनर्थ हमेशा समुदाय में ही आता है। इसमें क्या सम्बन्ध ? वह राजकुमारी है और आप स्वयं अन्त्यज हैं। मैं भी तब तक ब्राह्मण की शिकायत को बचाता हुआ ब्राह्मणों के घर का चक्कर लगाकर छिपकर उसी के आवास को जाता हूँ।

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—एदस्सिं अवत्थापरिब्भट्ठे राअउले अबहुकय्यदाए णअरं पेक्खिदुं णिग्गदम्हि । (परिक्रम्यावलोक्य) अयि एसो अय्यसन्तुट्ठो गच्छइ । होदु, एदेण सह हसन्ती मुहुत्तअं णिव्वेदं विणोदेमि । (उपसृत्योर्ध्वमवलोक्य) हला कोमुदिए । किं लद्धो बम्हणो । किं भणासि-ण लभामि त्ति । [एतस्मिन्नवस्थापरिभ्रष्टे राजकुलेऽबहुकार्यतया नगरं प्रेक्षितुं निर्गतास्मि । अयि एष आर्यसन्तुष्टो गच्छति । भवतु, एतेन सह हसन्ती मुहूर्तकं निर्वेदं विनोदयामि । हला ! कौमुदिके ! किं लब्धो ब्राह्मणः । किं भणसि —न लभ इति ।]

विदूषकः—चन्दिए । किं एदं ! [चन्द्रिके ! किमेतत् ।]

चेटी—अय्य ! कञ्चि बम्हणं अण्णेसामि । [आर्य ! कञ्चिद् ब्राह्मणमन्विष्यामि ।]

विदूषकः—बम्हणेण किं कय्यं ! [ब्राह्मणेन किं कार्यम् ।]

चेटी—किमण्णं, भोअणत्थं णिमन्तेदुं । [किमन्यद्, भोजनार्थं निमन्त्रयितुम् ।]

अवस्थापरिभ्रष्टे = स्वदशायाः वियुक्ते । अबहुकार्यतया = कार्याधिक्यस्याभावेन । निर्वेदम् = मनःखेदम् । विनोदयामि = विनोदे परिवर्त्तयामि । भणसि = कथयसि ।

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—इस अवस्थाच्युत राजकुल में कार्य की बहुलता के न रहने से नगर को देखने के लिए मैं निकल पड़ी हूँ । (चलकर तथा देखकर) अरे ! ये आर्य सन्तुष्ट जा रहे हैं । अच्छा, इनके साथ हँसकर कुछ देर के लिए मन की खिन्नता को विनोद में बदल लूँ । (नजदीक जाकर तथा ऊपर देखकर) सखी कौमुदिके ! क्या ब्राह्मण मिल गये ? क्या कहा ? नहीं मिले ?

विदूषक—चन्द्रिके ! यह क्या ?

चेटी—आर्य ! किसी ब्राह्मण को खोज रही हूँ ।

विदूषक—ब्राह्मण से क्या काम है ?

चेटी—और क्या ? भोजन के लिए निमन्त्रण देना है ।

विदूषकः--भोदि ! अहं को, समणओ। [भवति ! अहं कः, श्रमणकः ।]

चेटी—तुवं किल अवेदिओ । [त्वं किलावैदिकः ।]

विदूषकः--किस्स अहं अवेदिओ । सुणाहि दाव । अत्थि रामाअणं णाम णट्टसत्थं । तस्सि पञ्च सुलोआ असम्पुण्णे संवच्छरे मए पठिदा । [कस्मादहमवैदिकः । शृणु तावत् । अस्ति रामायणं नाम नाट्यशास्त्रम् । तस्मिन् पञ्च श्लोका असम्पूर्णे संवत्सरे मया पठिताः ।]

चेटी--जाणामि जाणामि । अय्यस्स कुलोइदो ईदिसो मेधाविभावो । [जनामि जानामि । आर्यस्य कुलोचित ईदृशो मेधाविभावः]

विदूषकः--ण केवलं सुलोआ एव, तेसं अत्थो वि मुणिओ । अण्णं च । अवरो विसेसो, बम्हणो दुल्लहो अक्खरण्णो अत्थण्णो अ । [न केवलं श्लोका एव, तेषामर्थोऽपि ज्ञातः । अन्यच्च । अपरो विशेषः, ब्राह्मणो दुर्लभोऽक्षरज्ञोऽर्थज्ञश्च ।]

श्रमणकः = बौद्धभिक्षुः । अब्राह्मण इत्यभिप्रायः । अवैदिकः = वेदज्ञानहीनः । रामायणेति = रामायणे नाट्यशास्त्रत्वारोपात्साहित्याऽनभिज्ञता सूच्यते । तस्मिन् = रामायणे । असम्पूर्णे = असमाप्ते । संवत्सरे = वर्षे । "संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः" इत्यमरः । यावत्संवत्सरोऽपि न समाप्त-स्तावदेव मया पञ्चश्लोकाः अधीता इत्यनेन मम बुद्धेः तीक्ष्णता अनुमेयेति भावः । मेधाविभावः = बुद्धिवैभवम् ।

विदूषक - अरी ! मैं क्या बौद्ध भिक्षु हूँ ।

चेटी-- तुम अवैदिक हो ।

विदूषक—कैसे मैं अवैदिक हूँ ? तो सुनो-रामायण नामक नाट्यशास्त्र है । वर्ष पूरा भी नहीं हो पाया और उसके पाँच श्लोक मैंने पढ़ लिये ।

चेटी--जानती हूँ, जानती हूँ । आपकी बुद्धि की यह तीक्ष्णता आपके खानदान में उचित ही है ।

विदूषक- केवल श्लोक ही नहीं, उनका अर्थ भी मैंने पढ़ा है और मुझमें यह विशेषता है, अर्थ भी जाने और अक्षर भी, ऐसा ब्राह्मण बड़ी मुश्किल से मिल पाता है ।

चेटी—तेण हि भणाहि किं णाम एदं अक्खरं। (नाममुद्रिकां दर्शयति) [तेन हि भण किं नामैतदक्षरम्।]

विदूषकः--(आत्मगतम्) अजाणमाणो किं भणिस्सं। (विचार्य) भोदु दिट्ठं। एवं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) भोदि! इदं अक्खरं मम पुत्थए णत्थि। [अजानानः किं भणिष्यामि। भवतु दृष्टम्। एवं तावद् भणिष्यामि। भवति! एतदक्षरं मम पुस्तके नास्ति।]

चेटी—जदि ण जाणासि, अदक्खिणं भुञ्जेहि। [यदि न जानासि, अदक्षिणं भुङ्क्ष्व।]

विदूषकः--भोदु भोदु। [भवतु भवतु।]

चेटी—पेक्खामि दाव अय्यस्स अङ्गुलीअअं। [पश्यामि तावदार्यस्याङ्गुलीयकम्।]

विदूषकः—पेक्ख पेक्ख ममकेरअं दंसणीअं। [पश्य पश्य मदीयं दर्शनीयम्।]

चेटी—(गृहीत्वा) एसो भट्टिदारओ इदो एव्व आअच्छदि। [एष भर्तृदारक इत एवागच्छति।]

विदूषकः—(परावृत्यावलोक्य) कहिं कहिं तत्तभवं। [कुत्र कुत्र तत्रभवान्।]

नाममुद्रिकाम् = नामाङ्किताङ्गुरीकम्। अजानानः = अनभिज्ञः। अदक्षिणं भुङ्क्ष्व = दक्षिणां विनैव भोजनं कुरु। भर्तृदारकः = राजकुमारः।

चेटी—अच्छा तो बोलो यह कौन-सा अक्षर है? (अँगूठी दिखलाती है)

विदूषक—(स्वगत) मैं अनजान क्या बताऊँ? (सोचकर) समझ गया, यही कह दूँ। (प्रकट) यह अक्षर मेरी पुस्तक में नहीं है।

चेटी— अगर नहीं जानते तो विना दक्षिणा के भोजन करो।

विदूषक—अच्छा, अच्छा।

चेटी—जरा आपकी अँगूठी देखूँ।

विदूषक—देखो-देखो, मेरी अँगूठी देखने योग्य है।

चेटी—(लेकर) यह राजकुमार इधर ही आ रहे हैं।

विदूषक—(मुड़कर देखकर) कहाँ? कहाँ हैं राजकुमार?

चेटी—विलोभिदो मुद्धबम्हणो। इमं जणसमूहं पविसिअ चउप्पहमग्गे वञ्चिअ गमिस्सं। (निष्क्रान्ता) [विलोभितो मुग्धब्राह्मणः। इमं जनसमूहं प्रविश्य चतुष्पथमार्गे वञ्चयित्वा गमिष्यामि।]

विदूषकः—(सर्वतो विलोक्य चन्दिए! चन्दि! कहिंए कहिं चन्दिआ हा वञ्चिदो म्हि। गण्डभेददासीए सीलं आणन्तो वि अत्तणो भोअणविस्सम्भेण छालिदो म्हि (परिक्रम्य) भोअणं वि अलिअं चिन्तेमि। (अग्रतो विलोक्य) हन्त एसा धावइ। चिट्ठ चिट्ठ अधम्मिट्ठदासि! चिट्ठ। किं धावइ एव। जाव अहं वि धावामि। (धावति) मम पादा सिविणे हत्थिणा आसादिअमाणस्स विअ तहिं तहिं एव्व पडन्ति। हन्त कुम्भदासीए वुत्तन्तं तत्तहोदो णिवेदइस्सं। [चन्द्रिके! चन्द्रिके! कुत्र कुत्र चन्द्रिका। हा वञ्चितोऽस्मि। गण्डभेददास्याः शीलं जानन्नप्यात्मनो भोजनविस्रम्भेण च्छलितोऽस्मि। भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि। हन्तैषा धावति। तिष्ठ तिष्ठ अधर्मिष्ठदासि! तिष्ठ। किं धावत्येव। यावदहमपि धावामि। मम पादौ स्वप्ने हस्तिनासाद्यमानस्येव तत्र तत्रैव पततः। हन्त कुम्भदास्या वृत्तान्त तत्रभवते निवेदयिष्यामि।] (निष्क्रान्तः)

विलोभितः = छलितः। मुग्ध-ब्राह्मणः = सरलबुद्धिविप्रः।

गण्डभेददास्याः = गर्हितचरितायाः दास्याः। भोजनविस्रम्भेण = भोजनोपलब्धेर्विश्वासेन। छलितः = प्रतारितः। भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि = अनया दास्या प्रदत्तं भोजनस्य निमन्त्रणमपि मिथ्यैव संभवतीति भावः। अधर्मिष्ठदासि = पापिनि दासि। हस्तिना साद्यमानस्य = गजेन गृह्यमाणस्य।

चेटी—ठग लिया इस मूर्ख ब्राह्मण को। लोगों की इस भीड़ में मिलकर चौराहे पर निकल जाऊँगी। (जाती है)

विदूषक—(चारों ओर देखकर) चन्द्रिके, चन्द्रिके। कहाँ, कहाँ है चन्द्रिका। हाय, ठगा गया। इस दुश्चरित्र दासी का स्वभाव जानते हुए भी भोजन मिलने के विश्वास में ठगा गया। (चलकर) भोजन का निमन्त्रण भी शायद झूठा ही था। (आगे देखकर) हाय यही तो दौड़ी जा रही है। ठहर, ठहर री पापिनि दासी, ठहर। क्यों भागती जा रही है। मैं भी दौड़ता हूँ। (दौड़ता है) मेरे पाँव जहाँ के तहाँ ही पड़ रहे हैं मानो सपने में हाथी ने पकड़ लिया हो! हाय, इस अभागी दासी की सारी बातें मैं महाराज से कह दूँगा। (जाता है।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टोऽविमारकः ।)

अविमारकः—

अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गी
बालां भयाकुलविलोलबिषादनेत्राम् ।
स्वप्नेषु नित्यमुपलभ्य पुनर्विबोधे
जातिस्मरः प्रथमजातिमिव स्मरामि ॥ १ ॥

तत्र तत्रैव पतितः = एकस्मिन्नेव स्थाने निपततः, नाग्रे सरतः ।

प्रवेशकः समाप्तः

अद्यापीति । अन्वयः-अद्यापि, हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीम्, भयाकुलविलोलविषादनेत्राम्, बालाम्, नित्यम्, स्वप्नेषु, उपलभ्य, पुनः, विबोधे । जातिस्मरः प्रथमजातिमिव स्मरामि ।

अद्यापि = प्रभूतकालयापितेऽपि । हस्तिनः = गजस्य, करस्य = शुण्डादण्डस्य, शीकरैः = जलकणैः, "शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः" इत्यमरः । शीतलानि = शीतानि अङ्गानि यस्यास्ताम् = तथोक्ताम् । भयाकुलेति = भयेन = भीत्या, आकुले = व्याकुले, विलोलविषादे = विषादयुक्ते च नेत्रे = नयने यस्यास्ताम् । बालाम् = कन्याम् । नित्यम् = नियतरूपेण यथास्यात्तथा । स्वप्नेषु = शयनेषु । उपलभ्य = प्राप्य । पुनः = भूयः, बारम्बारमिति यावत् । विबोधे = जाग्रदवस्थायाम् । जातिस्मरः = पूर्वजन्मस्मरणशक्तिशाली । प्रथमजातिमिव = पूर्वजन्मेव । स्मरामि = चिन्तयामि । यथा जातिस्मरः पूर्वजन्म केवलं स्मरति न चोपलभते तथैवाहं हस्तिशुण्डादण्डाम्बुकणार्द्राम्, सर्वाङ्गशीतलाम्, भयाकुलविषादनेत्राम्, तां बालां शयनेषु साक्षात्कृत्य जाते जागरे ध्याने भावयामीति भावः उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१॥

(प्रवेशक समाप्त)

(बैठे हुए अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—हाथी के शुण्डादण्ड से निकले हुए जलकण से सिक्त सर्वगात्री, भयाकुल नयना, उस बाला को स्वप्न में प्राप्त करता हूँ, फिर जागने पर उसी प्रकार उसका ध्यान करता हूँ जिस प्रकार जातिस्मर लोग पूर्वजन्म को स्मरण करते हैं ॥१॥

अहो बलमनङ्गस्य । कुतः,

दृष्टिस्तदाप्रभृति नेच्छति रूपमन्यद्
बुद्धिः प्रहृष्यति विषीदति च स्मरन्ती ।
पाण्डुत्वमेति वदनं तनुतां शरीरं
शोकं व्रजामि दिवसेषु निशासु मोहम् ॥ २ ॥

अथवा अयुक्तमधृतित्वं पुरुषाणाम् । सङ्कल्प्यमानो हि विजृम्भते मदनः । तस्मादहमिदानीं न सङ्कल्पयामि । (स्मृत्वा) अहो तस्या रूप-

---

अहो बलमनङ्गस्य = आश्चर्यजनकः कामदेवस्य प्रभावः । तदेवोपपादयति—कुत इति ।

दृष्टिरिति । अन्वयः— तदाप्रभृति, दृष्टिः, अन्यद्, रूपम्, नेच्छति । स्मरन्ती, बुद्धिः, प्रहृष्यति, विषीदति, च । वदनम्, पाण्डुत्वम्, शरीरम्, च, तनुताम्, एति । दिवसेषु, शोकम्, निशासु, मोहम्, व्रजामि ।

तदाप्रभृति = ततःकालात् । यदा सा युवतिर्दृष्टेति भावः । दृष्टिः अन्यद्रूपम् = दृष्टियुवतिव्यतिरिक्तायाः कस्याश्चिदन्यस्याः रूपम् । नेच्छति = नैव कामयते । स्मरन्ती = प्रेमिकायाः ध्याने संलग्ना बुद्धिः । प्रहृष्यति = लाभाशया मोदमाप्नोति । विषीदति च = विघ्नाशंकया विषादयुक्ता च भवति । वदनम् = मुखम् । पाण्डुत्वम् = पीतवर्णत्वम् । शरीरम् = गात्रम् । च = पुनः । तनुताम् = कृशताम् । एति = प्राप्नोति । दिवसेषु = दिनेषु । शोकम् = अभीष्टानुपलब्धिजन्यं दुःखम् । निशासु = रात्रिषु च । मोहम् = मूर्च्छाम् । व्रजामि = प्राप्नोमि । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥२॥

अयुक्तम् = अनुपयुक्तम् । अधृतित्वम् = अधैर्यशालित्वम् । सङ्कल्प्यमानः = निश्चयीकृतः । मदनः = कामः । विजृम्भते = समेधते । रूपसम्पद् = सौन्दर्य-

---

अहो ! कामदेव कितना प्रबल है । क्योंकि—उस समय से मेरी दृष्टि दूसरे रूप को नहीं देखना चाहती है । मेरी बुद्धि उसके स्मरण से हर्ष तथा विषाद, दोनों प्राप्त करती है । चेहरा पीला तथा शरीर दुबला होता जा रहा है । दिन में शोक तथा रात्रि में मोह घेरे रहते हैं ॥२॥

अथवा—पुरुषों का अधैर्य ठीक नहीं है । संकल्प करने से ही काम में वृद्धि होती है, अतः मैं अभी संकल्प ही नहीं करूँगा । (स्मरण करके) अहा,

सम्पद्, रूपानुरूपं यौवनं, यौवनसदृशं सौकुमार्यम्। अत्र हि,

प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं
गता वा स्त्रीरूपं कथमपि च ताराधिपरुचिः।
विहाय श्रीः कृष्णं जलशयनसुप्तं कृतभया
धृतान्यस्त्रीरूपं क्षितिपतिगृहे वा निवसति ॥ ३ ॥

कथमहं पुनरारब्धश्चिन्तयितुम्। किमिदानीं करिष्ये। मनश्च तावदस्मदिच्छया न प्रवर्तते। इह हि,

---

वैभवम्। रूपानुरूपं यौवनम् = यादृशं रूपं तादृशमेव यौवनम्। यौवनसदृशं सौकुमार्यम् = यादृशं यौवनं सौकुमार्यम्।

प्रतिच्छन्दमिति०। अन्वयः—धात्रा, युवतिवपुषाम्, प्रतिच्छन्दम्, किन्नु, रचितम्? वा, ताराधिपरुचिः, कथमपि, स्त्रीरूपम्, गता? वा, जलशयनसुप्तम्, कृष्णम्, विहाय, कृतभया, श्रीः, धृतान्यस्त्रीरूपम्, क्षितिपतिग्रहे, निवसति?

धात्रा = परमेष्ठिना। युवतिवपुषाम् = कामिनिशरीराणाम्। प्रतिच्छन्दम् = प्रशस्यरूपम्। किन्नु रचितम् = विनिर्मितम्? वा = अथवा। ताराधिपरुचिः = ताराणामधिपः ताराधिपः = चन्द्रः, तस्य रुचिः = कान्तिः। कथमपि = केनापि प्रकारेण। स्त्रीरूपम् = योषितस्वरूपताम् प्राप्ता? वा = अथवा। जलशयनसुप्तम् = समुद्रशय्यायाम् शयानम्। कृष्णम् = भगवन्तम् विष्णुम्। विहाय = त्यक्त्वा। कृतभया = भयमापन्ना। श्रीः = लक्ष्मीः। धृतान्यस्त्रीरूपम् = अन्यस्याः स्त्रियः रूपम् धृत्वा। क्षितिपतिगृहे = राज्ञः कुन्तिभोजस्य प्रासादे। निवसति = तदात्मजारूपेण वासं करोति। उत्प्रेक्षालङ्कारः। शिखरिणीवृत्तम् ॥ ३ ॥

कैसा था उसका रूप! जैसा ही रूप वैसा ही यौवन, यौवन के अनुरूप ही सुकुमारता भी।

यहाँ—क्या उसे ब्रह्मा ने युवतियों के रूप का नमूना बनाया है? अथवा किसी तरह चन्द्रमा की कान्ति ने ही स्त्री का रूप धारण कर लिया है! या लक्ष्मी समुद्र में सोते हुए भगवान् विष्णु को छोड़कर भय से अन्य स्त्री का रूप धारण कर राजा के घर में निवास कर रही है ॥ ३ ॥

पुनः किस प्रकार मैंने सोचना प्रारम्भ कर दिया! अब क्या करूँगा? मन तो हमारी इच्छा से नहीं चलेगा। यहाँ पर,

प्रतिषिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते ।
चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा ॥ ४ ॥

अथवा न शक्यं मनो जेतुम् । चिन्तयिष्याम्येनाम् । अहो सर्वेषां स्त्रीगुणानामेकत्र समवायः । (चिन्ताभिभूत उपविशति)

(ततः प्रविशति धात्री नलिनिका च)

धात्री—(सवितर्कम्) अहो सङ्कडदा कय्यस्स । जइ एवं करीअदि, राअउलं दूसिअं होइ । जदि ण करीअदि, अवस्सं सा विवज्जइ । मए अणेएहि उवाएहि विआरिदं च । मम वि सा अज्ज वि पच्छादेदि । अहव किं ताए पच्छादिदं । सा तदप्पहुदि सुमणावण्णअं णच्छदि,

---

प्रतिसिद्धमिति० । अन्वयः—प्रयत्नेन, प्रतिषिद्धम्, क्षणमात्रम्, न, वीक्षते । यथा, दुर्गुणितम्, शास्त्रम्, चिरम्, अभ्यस्तपथम्, याति ।

प्रयत्नेन=आयासेन । प्रतिषिद्धम्=वारितम् । मे मनः क्षणमात्रम्=अल्पकालं यावदपि । न वीक्षते=नावलोकयति । यथा=येन प्रकारेण । दुर्गुणितम्=सम्यक्तया नाधीतं शास्त्रम् । चिरम्=सदैव । अभ्यस्तपथम्=अशोभनमार्गम् । याति=गच्छति । यथा न सम्यगभ्यस्तं शास्त्रं कदापि अशोभनमार्गं परित्यज्य समीचीनमार्गमधिरोहति तथैव कुरङ्गी प्रति आसक्तम्मे मनः प्रभूतायासेनापि न मुहूर्त्तमपि स्वमार्गमवलोकयति अर्थात् स्वाभाविकदशायाम् सन्तिष्ठते ॥ ४ ॥

स्त्रीगुणानाम्=स्त्रियः कृते ये ये गुणाः अपेक्ष्यन्ते तेषां तेषां गुणानाम् । समवायः=समूहत्वेनोपस्थितिः ।

प्रयत्नपूर्वक रोकने पर भी यह (मन) क्षण भर के लिए नहीं मानता है। यह बार-बार उसी को याद किया करता है जिस प्रकार अनभ्यस्त शास्त्र बराबर गलत रास्ते पर ही चला करता है ॥ ४ ॥

अथवा -- मन को जीता नहीं जा सकता । उसके बारे में मैं सोचूँगा ही । अहा स्त्रियों के लिए अपेक्षित सारे के सारे गुण उसमें मौजूद हैं । (चिन्ताकुल होकर बैठा रहता है)

(धात्री तथा नलिनिका का प्रवेश)

धात्री—(कुछ सोचती हुई) ओह ! बड़ा कठिन कार्य है । यदि ऐसा करती हूँ

आहारं णाभिलसदि, ण रमदि गोट्ठीजणेण, दिग्धं णिस्ससदि, असम्बद्धं कहेदि, कहिदं ण जाणादि गूढं हसदि, विवित्ते रोदिदि, रोअं अवदिसदि, तणुआ होदि, पण्डभावं गच्छदि। एक्कं पि तहिं अच्छरिअं। एवं विधेहि अवत्थाविसेसेहि अत्तणो लज्जाए भएण कुलमाणेण बालभावेण अ एकस्सा वि किञ्चि ण मन्तेदि। [अहो सङ्कटता कार्यस्य। यद्येवं क्रियते, राजकुलं दूषितं भवति। यदि न क्रियतेऽवश्यं सा विपद्यते। मयानेकैरुपायैर्विचारितं च। ममापि साद्यापि प्रच्छादयति। अथवा किं तया प्रच्छादितम्। सा तदाप्रभृति सुमनोवर्णकं नेच्छति, आहारं नाभिलषति, न रमते गोष्ठीजनेन, दीर्घं निःश्वसिति, असम्बद्धं कथयति, कथितं न जानाति, गूढं हसति, विविक्ते रोदिति, रोगमपदिशति, तन्वीभवति, पाण्डुभावं गच्छति। एकमपि तत्राश्चर्यम्। एवंविधैरवस्थाविशेषैरात्मनो लज्जया भयेन कुलमानेन बालभावेन च एकस्या अपि किञ्चिन्न मन्त्रयते।]

विपद्यते = विपन्ना भविष्यति। ममापि साद्यापि प्रच्छादयति इदानीमपि सा मम समीपे स्वकीयमभिप्रायं सुस्पष्टतया न व्यनक्ति। प्रच्छादितम् = निगूहितम्। सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्। न रमते = नाह्लादमाप्नोति। असम्बद्धम् = अप्रस्तुतम्। विविक्ते = रहसि। रोगमपदिशति = रोगव्याजं करोति। पाण्डुभावम् = पीतवर्णत्वम्। लज्जया = ह्रिया। भयेन = भीत्या। कुलमानेन = कुलगौरवेण। बालभावेन च = बाल्यावस्थाजन्यमुग्धतया च। एकस्याः अपि = कस्याः अपि सख्याः समीपे। किञ्चित् = आत्मगतां वेदनाम्। न मन्त्रयते = शब्दैर्नैव प्रकटीकरोति।

तो राजकुल कलङ्कित होता है और यदि ऐसा नहीं करती हूँ तो निश्चय ही वह मर जायेगी। मैंने अनेक प्रकार से सोचकर देख लिया है। वह आज भी मुझसे छिपाती है अथवा उसने छिपाया क्या? उसे उसी दिन से फूलकी माला अच्छी नहीं लगती, खाना अच्छा नहीं लगता, सखी का साथ नहीं सुहाता, लम्बी साँस लेती है, बे-सिर पैर की बका करती है, कहा हुआ नहीं समझ पाती है, छिपाकर हँसती है, एकान्त में रोती है, रोग का बहाना बनाती है, दुबली होती जा रही है और पीली पड़ गई है। इतना होने पर भी आश्चर्य की एक बात है—इस अवस्था में भी वह भय, लज्जा, कुल-गौरव तथा बाल्य के चलते किसी से कुछ नहीं कहती है।

नलिनिका— किस्स ण मन्तेदि। मम सव्वं कहेदि। [कस्मान्न मन्त्रयते । मम सर्वं कथयति ।]

धात्री—हला ! जाणामि दे अभिप्पाअं, अवत्थं जाणिअ सव्वहा इमं एदेण जोजेहि त्ति । [हला ! जानामि तेऽभिप्रायम् , अवस्थां ज्ञात्वा सर्वथेमामेतेन योजयेति ।]

नलिनिका—किकु खु ईदिसो तादिसेहि गुणविसेसेहि अकुलीणो भवे । [किन्तु खल्वीदृशस्तादृशैर्गुणविशेषैरकुलीनो भवेत् ।]

धात्री—तहि च सन्देहो । सुदं च भए भट्टिणीए समीवे अमच्चेहि क । भणिदं—ण सो तदिसो दुक्खुलजो त्ति । अत्ताणं केणवि कारणेण पच्छादेदि त्ति । [तत्र च सन्देहः । श्रुतं च मया भट्टिन्याः समीपेऽमात्यैः किल भणितं-न स तादृशः दुष्कुलज इति । आत्मानं केनापि कारणेन प्रच्छादयतीति ।]

नलिनिका—को णु खु भवे । [को नु खलु भवेत् ।]

धात्री—जदि सो सन्देहो णत्थि, को अण्णो अदिरित्तगुणो जामादुओ भवे । [यदि स सन्देहो नास्ति, कोऽन्योऽतिरिक्तगुणो जामाता भवेत् ।]

कस्मान्न मन्त्रयते=नूनमेव आत्मगतं भावं विज्ञापयतीति भावः। अवस्थाम्= स्थितिम् । ज्ञात्वा=समीक्ष्य । इमाम्=राजकन्याम् । एतेन=राजकुमारेण। योजय=मेलय । भट्टिन्याः=राज्ञ्याः । भणितम्=कथितम् । दुष्कुलजः=नीच-

---

नलिनिका—क्यों नहीं कहती है ! मुझसे तो सब कुछ कहती है ।

धात्री—हाँ री, मैं तुम्हारा मतलब समझती हूँ । अवस्था देखकर उसे उस पुरुष से मिला दो ।

नलिनिका—क्या ऐसा व्यक्ति इस प्रकार के गुणों से युक्त होता हुआ भी भला अकुलीन हो सकता है ?

धात्री—उसमें सन्देह है, मैंने महारानी के पास मंत्रियों से सुन रखा है कि वह उतने नीच कुल का नहीं है । अपने को वह किसी कारण छिपा रहा है ।

नलिनिका—यह कौन हो सकता है ?

धात्री—यदि यह सन्देह नहीं है तो कौन इससे अधिक गुणवान जामाता मिल सकता है ।

(नेपथ्ये)

यदि च विभवरूपज्ञानसत्वादयः स्यु-
र्न तु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः ।
ध्रुवमिह कुलमस्य श्रोष्यसि प्राप्तकाले
त्यज कुलगतशङ्कां साध्यतां स्वन्तमेतत् ।। ५ ।।

धात्री—हला ! केण खु भणिदं [हला ! केन खलु भणितम् ।]

नलिनिका—एत्थ को वि ण दिस्सदि । [अत्र कोऽपि न दृश्यते ।]

धात्री—पहिट्ठरोमकूवं मे सरीरं । असंसअं दव्वेण भणिदं । अहं पुण जाणामि ण एसो केवलो माणुसत्ति । [प्रहृष्टरोमकूपं मे शरीरम् ।

वंशोत्पन्नः । सः सन्देहः = चाण्डालत्वशङ्का । अतिरिक्तगुणः = इतोऽधिकगुणवान् ।

यदि चेति० । अन्वयः--यदि, कुलविकलानाम्, विभवरूपज्ञानसत्वादयः स्युः, च, वृत्तिशुद्धिः, न, वर्त्तते (तर्हि) इह, प्राप्तकाले, ध्रुवम्, अस्य, कुलम्, श्रोष्यसि, (अतः) कुलगतशङ्काम्, त्यज, स्वन्तम्, साध्यताम् ।

कुलविकलानाम् = नीचवंशोद्भवानाम् । विभवरूपज्ञानसत्वादयः = समृद्धि-सौन्दर्यशास्त्रज्ञानशक्त्यादयो गुणाः । यदि स्युः = भवेयुः । किन्तु वृत्तिशुद्धिः = निर्मलचरित्रता । न = न वर्तते । तर्हि इह = एतद्विषये । प्राप्तकाले = समये समागते सति । ध्रुवम् = निश्चयेन । अस्य = कुमारस्य । कुलम् = सद्वंश-प्रसूतत्वम् । श्रोष्यसि = आकर्णयिष्यसि । अतः कुलगतशङ्काम् = कस्मिन् कुलेऽय-मुत्पन्न इति विवेकतारतम्यम् । त्यज = परिहर । स्वन्तम् साध्यताम् = तथा प्रयतनीयम् यथाऽनयोः सङ्गमः सुखावसानो भवेदिति । मालिनीवृत्तम् ।।५।।

प्रहृष्टरोमकूपम् = सञ्जातपुलकम् । मे = मम । शरीरम् = गात्रम् । असंशयम् =

(नेपथ्य में)

यदि सम्पत्ति, रूप, ज्ञान, बल आदि हो भी जाय, फिर भी अकुलीनों का चरित्र निर्मल नहीं हुआ करता है । निश्चय ही आप इसके कुल के विषय में समय आने पर सुन लेंगे । इस कार्य का अन्त भला होगा । यह कार्य अवश्य करो ।। ५ ।।

धात्री—अरी, यह किसने कहा ?

नलिनिका—यहां तो कोई भी नहीं दिखाई दे रहा है ।

धात्री—मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये हैं । निश्चय ही दैव ने कहा है । मैं

असंशयं दैवेन भणितम् । अहं पुनर्जानामि नैष केवलो मानुष इति ।]

नलिनिका--गदो तस्स कुलसन्देहो । अम्हाणं वअणं करेदि ण करेदि त्ति चिंतेमि । (विचिन्त्य) धण्णो खु सो जणो इमं एवं उम्मादेदि । किं बहुणा, सअं कामदेवो वि भट्टिदारिआए रूवं पेक्खिअ किलिस्सिदि । तेण सो वि किलिस्सिदि त्ति तक्केमि । [गतस्तस्य कुलसन्देहः : अस्माकं वचनं करोति न करोतीति चिन्तयामि । धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति । किं बहुना, स्वयं कामदेवोऽपि भर्तृदारिकाया रूपं प्रेक्ष्य क्लिश्यते । तेन सोऽपि क्लिश्यत इति तर्कयामि ।]

धात्री—हला ! एसो तस्स आवासो, जं तदा हत्थिसम्भमदिअसे कोदूहलेण आअदम्ह । [हला ! एष तस्यावासः, यं तदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कौतूहलेनागते स्वः ।]

नलिनिका—हला ! अहो दस्सणीअं किदोवहारं च दुवारमुहं हला ! एहि पविसामो । [हला ! अहो दर्शनीयं कृतोपहारं च द्वारमुखम् । हला ! एहि प्रविशावः ।]

धात्री—हला ! कहिं भट्टिदारओ किं भणासि-चउस्साले वत्तदि त्ति । [परिक्रम्यावलोक्य] अअं अम्हाणंभट्टिदारओ । एक्को एव किं वि चिन्तअन्तो चिठ्ठई । [हला ! कुत्र भर्तृदारकः । किं भणसि--चतुःशाले वर्तत इति ।

निस्सन्देहम् । भर्तृदारिकायाः = कुरङ्ग्याः । प्रेक्ष्य = अवलोक्य । क्लिश्यते = दुःख्यति । कृतोपहारम् = सुसज्जितम् । चतुःशाले = सज्जवने । (बहिर्गृहे) ।

जानती हूँ यह निरा मनुष्य ही नहीं है ।

नलिनिका—इसके कुल के विषय में जो सन्देह था वह तो दूर हो गया । देखें हमारी बात मानता है या नहीं । धन्य है वह जिसके लिए यह पागल की तरह कर रहा है । और क्या, स्वयं कामदेव भी राजकुमारी के रूप को देखकर दुःखी हो जाय । इसीलिए यह भी दुःखी हो रहा है ऐसा मैं सोचती हूँ ।

धात्री—अरी, यही उसका निवास स्थान है, जहाँ हाथी के उपद्रव वाले दिन हम आई थीं ।

नलिनिका—इसका दरवाजा कितना सुन्दर और सुसज्जित है ! आओ, प्रवेश करें ।

धात्री--अरी, राजकुमार कहाँ हैं ? क्या कहा—चतुःशाल में हैं ? यहीं

अयमस्माकं भर्तृदारक एक एव किमपि चिन्तयंस्तिष्ठति ।]

नलिनिका—हला ! णं पिविसामो । [हला ननु प्रविशावः ।]

धात्री - एवं करेम्ह । (प्रविश्य) सुहं अय्यस्स । [एवं कुर्वः । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—अहो तस्या रूपसम्पत् ।

धात्री—(साकुलम्) किण्णु हु भवे । सुहं अय्यस्स ! [किन्नु खलु भवेत् । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—

उरः स्तनतटालसं जघनभारखिन्ना तनुः

धात्री—अम्मो पिप्पलवदि । [अम्भो विप्रलपति ।]

अविमारकः—

मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् ।

रूपसम्पत् = सौन्दर्यवैभवम् ।

उर इति० । अन्वयः—उरः, स्तनतटालसम्, तनुः, जघनभारखिन्ना, मुखम्, नयनवल्लभम्, प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम्, भयेऽपि, यदि, तादृशम्, नयनपात्रपेयम्, वपुः, कथन्नु, तद्, सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम्, भवेत् ।

यस्याः उरः = वक्षः प्रदेशः । स्तनतटालसम् = कुचभारभराक्रान्तम् । तनुः = शरीरम् । जघनभारखिन्ना = नितम्बभारपीडिता । मुखम् = आननम् । नयन-

---

तो हमारे राजकुमार कुछ सोचते हुए बैठे हैं ।

नलिनिका—अरी, चलो, चलें ।

धात्री—ऐसा करें (प्रवेश करके) आर्य आनन्द से तो हैं ?

अविमारक—अहा, कैसा विलक्षण था उसका रूप !

धात्री—(आकुलता के साथ) जाने क्या होता है । आप आनन्द से तो हैं ?

अविमारक—छाती स्तन के भार से अलस है, शरीर जंघाओं के भार से खिन्न है ।

धात्री—अरे यह तो विप्रलाप कर रहा है ।

अविमारक—मुख नेत्र की शोभा से परिपूर्ण है, अधर स्वाभाविक रक्तिमा से भरा है ।

धात्री—धण्णो खु सो जणो इमं एवं उन्मादेदि। [धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति।]

अविमारकः—

भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः

धात्री—सुत्थिदं कय्यं [सुस्थितं कार्यम्।]

अविमारकः—

कथन्नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत्॥ ६॥

धात्री—सा एव इमं उम्मादेदि। [सैवेममुन्मादयति।]

नलिनिका—सुट्ठ भणिदं-एसो वि किलिस्सिदि त्ति। [सुष्ठु भणितम्-एषोऽपि क्लिश्यत इति।]

धात्री—सुट्ठु विञ्ञादं तुए। सुहं अय्यस्स। [सुष्ठु विज्ञातं त्वया। सुखमार्यस्य।]

वल्लभम् = नेत्राभिरामम्। प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् = स्वाभाविकरक्तवर्णेन बिम्बोपमेन चाधरेण युक्तम्। भयेऽपि = भयोत्पादकाऽवसरेऽपि। यदि तादृशम् = तथाभूतम्। नयनपात्रपेयम् = नेत्ररूपपात्रेणास्वाद्यमानम्। वपुः = शरीरम्। तद् = वपुः। सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम् = सुरतान्तरे = रतिक्रीडासमये, प्रचुरविभ्रमं = प्रभूतविलासोपेतम्। कथन्नु = कीदृशन्नु। भवेत् = स्यात्। भयावसरेऽपि यद् वपुः तादृशं रमणीयकं, तद् वपुः सुरतसमये नानाविलाससंवलितत्वे कीदृशं रमणीयं भवेदिति मनोमात्रकल्पनीयमिति भावः। पृथ्वीछन्दः॥ ६॥

धात्री—धन्य है वह, जिसके लिए यह पागल हो रहा है।

अविमारक—भय के समय भी नयनरूपी पात्र से पेय उसका शरीर ऐसा है तो--

धात्री—काम बन गया।

अविमारक—रतिक्रीडा के समय नानाविलासों से युक्त उसका मुखमण्डल कितना सुन्दर होगा?॥ ६॥

धात्री—वही इसे पागल बना रही है।

नलिनिका—ठीक कहती हो, यह भी दुःख में है।

धात्री—तुमने ठीक समझा। आर्य आनन्द से तो हैं?

अविमारकः—(विलोक्य सव्रीडम्) स्वागतम् भवतीभ्याम् ।

उभे—अवि सुहं । [अपि सुखम् ।]

अविमारकः—भविष्यति वां दर्शनेन ।

धात्री—अय्य ! किं चिन्तीअदि । [आर्य ! किं चिन्त्यते ।]

अविमारकः—भवति । शास्त्रं चिन्त्यते ।

धात्री—किं णाम एदं रमणीअं सत्थं विवित्थे चिन्तीअदि । [किं नामैतद् रमणीयं शास्त्रं विविक्ते चिन्त्यते ।]

अविमारकः—भवति ! योगशास्त्रं चिन्त्यते ।

धात्री—(सस्मितम्) पडिग्गहिदं मङ्गलवअणं । जोअसत्थं एव्व होदु । [प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनम् । योगशास्त्रमेव भवतु ।]

अविमारकः—(आत्मगतम्) को नु खलु वाक्यार्थः । अन्यदप्यभिलाषवशादन्यथा सङ्कल्पयामि (प्रकाशम्) किमभिप्रेतं भवत्याः ।

उन्मादयति = प्रमत्त इवाचरति । सव्रीडम् = सलज्जम् । प्रतिगृहीतम् = स्वीकृतम् । निष्ठितम् = सिद्धम् । विविक्ते = एकान्ते । कोऽपि जन इति राजकुमार्यां तात्पर्यम् ।

अविमारक—(देखकर लज्जापूर्वक) आप लोगों का स्वागत है ।

दोनों—आप सुखपूर्वक तो हैं ?

अविमारक—आपके दर्शन से मैं भी सानन्द हो जाऊँगा ।

धात्री—आर्य ! आप क्या सोच रहे हैं ?

अविमारक—देवि ! मैं शास्त्र की चिन्ता कर रहा हूँ ।

धात्री—कौन-सा वह रमणीय शास्त्र है जिसकी चिन्ता आप एकान्त में कर रहे हैं ?

अविमारक—देवि ! मैं योगशास्त्र की चिन्ता कर रहा हूँ ?

धात्री—(मुस्कुराहट के साथ) इस मंगलवचन को मैं मानती हूँ । योगशास्त्र ही हो ।

अविमारक—(स्वगत) इसका क्या मतलब ? दूसरी वस्तु को भी मैं अभिलाषावश दूसरे ढंग से सोचने लगता हूँ । (प्रकट) आपका क्या अभिप्राय है ?

धात्री--जोअं इच्छन्तीओ आअदम्ह। अणुमदो अय्येण जोओ त्ति णं णिट्ठिदं कय्यं अम्हाअं राअउले विवित्ते अवआसे। तहिं पि को वि जणो अहिअदरं जाअं चिन्तअन्तो अच्छदि। तेण सह तहिं एव अय्येण सुट्ठु जोअविहाणं चिन्तीअदु त्ति। [योगमिच्छन्त्यावागते स्वः। अनुमत आर्येण योग इति ननु निष्ठितं कार्यमस्माकं राजकुले विविक्ते अवकाशे। तत्रापि कोऽपि जनोऽधिकतरं योगं चिन्तयन्नस्ति। तेन सह तत्रैवार्येण सुष्ठु योगविधानं चिन्त्यतामिति।

अविमारकः—कथमद्यापि सावशेषाणि मे भाग्यानि। (आसनादुत्थाय) भवति! पुनर्दत्ता इव मे प्राणाः। कुतः,

तस्या भयाकुलितदृष्टिविषं मनोज्ञं
सौम्यप्रकारमतितीक्ष्णमवेक्ष्य वक्त्रम्।
उन्मादमभ्युपगतोऽस्मि चिरं भवत्यो-
र्वाक्यामृतेन पुनरद्य कृतः ससंज्ञः ॥ ७ ॥

तस्या० इति। अन्वयः—भयाकुलितदृष्टिविषम्, सौम्यप्रकारम्, अति-तीक्ष्णम्, तस्याः, वक्त्रम्, अवेक्ष्य, चिरम्, उन्मादम्, अभ्युपगतः, अस्मि। अद्य, पुनः, भवत्योः, वाक्यामृतेन, ससंज्ञः, कृतः।

भयाकुलितदृष्टिविषम् = भयेन = हस्तिसंभ्रमसमये समुद्भूतया भिया, आकुलिता = वैक्लव्यमापन्ना, दृष्टिरेव विषम् = हालाहलम्, प्राणापकर्षकम् यत्र तादृशम्। सौम्यप्रकारम् = अतिशयहृद्यरूपम्। अतितीक्ष्णम् = उत्कृष्टभ्रू नासिका-गण्डकपोलादिभिर्युक्तमतिरमणीयम्। तस्याः = राजकुमार्याः। वक्त्रम = आननम्।

धात्री—हम दोनों योग की ही इच्छा लेकर आई थीं। आपने भी योग की अनुमति दे दी है। इससे हमारा कार्य बन गया, वह एकान्त राजकुल में सम्पन्न होगा। वहाँ भी कोई उत्कटरूप में योग-चिन्तन कर रहा है। उसके साथ वहीं पर आप भी अच्छी तरह योग-चिन्तन करें।

अविमारक—क्या मेरे भाग्य अभी भी बच रहे हैं? (आसन से उठकर) आपने मानो मेरे प्राण फिर से मुझे दे दिये हैं। क्योंकि—

उसके भयाकुल नेत्रों से सुन्दर, सौम्य और अतितीक्ष्ण मुख को देखकर मैं पागल हो रहा था। अभी आप लोगों के अमृतोपम वाक्य ने मुझे मेरी चेतना वापस ला दी है॥ ७॥

धात्री—दिट्ठआ अय्येण परिपालिदो अअं जणो । अलमदिप्पसङ्गेण । अज्ज एव पविसिदव्वं कण्णाउरं अमच्चो अय्यभूदिओ कण्णाउररक्खओ कासिराअदूदेण सह अम्हाअं महाराएण पूइदो पत्थिदो अ । [दिष्ट्यार्येण परिपालितोऽयं जनः । अलमतिप्रसङ्गेन । अद्यैव प्रवेष्टव्यं कन्यापुरम् । अमात्य आर्यभूतिकः कन्यापुररक्षकः काशिराजदूतेन सहास्माकं महाराजेन पूजितः प्रस्थितश्च ।]

अविमारकः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । भवति ! कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः ।

धात्री—पवेसमत्तं एव्व दुल्लहं । सक्कं अब्भन्तरे चिरं वसिदु । [प्रवेशमात्रमेव दुर्लभम् । शक्यमभ्यन्तरे चिरं वस्तुम् ।]

अविमारकः—प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः । क्रियतामनर्गलविशाला प्रासादमाला ।

अवेक्ष्य = अवलोक्य । चिरम् = प्रभूतकालपर्यन्तम् । उन्मादम् = चित्तविक्षोभम् । अभ्युपगतोऽस्मि = सम्प्राप्तोऽस्मि । अद्य = अधुना । भवत्योः = धात्रीनलिनिकयोः । वाक्यामृतेन = अमृतवत् प्राणप्रदेन वाक्येन । पुनः = भूयः । अहम् । ससंज्ञः = चैतन्ययुक्तः । कृतोऽस्मि = विहितोऽस्मि । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७ ॥

दिष्ट्या = दैवेन । परिपालितः = संरक्षितः । बाढम् = स्वीकृतिसूचकमव्ययम् । प्रथमः कल्पः = प्राथम्येन सम्पादनीयमिति भावः । औषधम् = भेषजम् । उपलभ्य = प्राप्य । मन्दीभवत्यातुरः = नैव कश्चन रुग्णो जनः भेषजं प्राप्य

धात्री—भाग्य से आपने मुझे बचा लिया । देर करने की आवश्यकता नहीं है । आज ही कन्यापुर में प्रवेश करना चाहिये । कन्यापुर के रक्षक अमात्य आर्य भूतिक काशिराजदूत के साथ गये हैं ।

अविमारक—ठीक है । कौन ऐसा रोगी होगा जो दवा मिलने पर भी विलम्ब करेगा ?

धात्री—प्रवेश करना ही कठिन है । अन्दर में बहुत समय तक रहा जा सकता है ।

अविमारक—आप लोग यही समझें कि मैं प्रविष्ट हो गया । केवल आप महल के किवाड़ को खुला छोड़ दें ।

धात्री—एवं करेम्ह । सव्वं अब्भन्तरकरणीअं संपादेम्ह । अप्पमत्तो एव पविसदु अय्यो । [एवं कुर्वः । सर्वमभ्यन्तरकरणीयं संपादयावः । अप्रमत्त एव प्रविशत्वार्यः ।]

अविमारकः—भवति ! सकृदभिधीयतां राजकुलस्य विधानम् ।

धात्री—एवं विअ । [एवमिव ।]

अविमारकः—हन्त भोः !

श्रुत्वा तु राज्ञो गृहसंविधानं
प्रविष्टमात्मानमवैति बुद्धिः ।
न पौरुषं वै परदूषणीयं
न चेद् विसंवादमुपैति दैवम् ॥ ८ ॥

तत्पानार्थम् शैथिल्यमाचरतीति तात्पर्यम् । वस्तुम् = स्थातुम् । अनर्गलविशाला = अर्गलाविरहितविस्तीर्णा । प्रासादमाला = राजभवनपरम्परा । अप्रमत्त इव = सतर्क इव । सकृत् = एकवारम् यावत् । अभिधीयताम् = कथ्यताम् ।

श्रुत्वेति । अन्वयः—राज्ञः, गृहसंविधानम्, श्रुत्वा, बुद्धिः, आत्मानम्, प्रविष्टम्, अवैति । पौरुषम्, परदूषणीयम्, वै, न, चेत्, दैवम्, विसंवादम्, न, उपैति ।

राज्ञः = भूपतेः । गृहसंविधानम् = अन्तःपुरसमाचरणीयम् नियमम् । श्रुत्वा = आकर्ण्य । बुद्धिः = मम मतिः । आत्मानम् = स्वम् । प्रविष्टम् = प्रवेशमापन्नम् । अवैति = प्राप्नोति । अतिसौलभ्येनैव मयाऽन्तःपुरम् प्रविष्टमित्यनुभूयते । पौरुषम् = मम पुरुषोचितः पराक्रमः । परदूषणीयम् = अन्येन गर्हणीयम् । वै = निश्चयेन । न = नास्ति । चेत् = यदि । दैवम् = भाग्यम् ।

धात्री—हम ऐसा ही करती हैं । अन्दर का सारा कार्य हम कर लेंगी । आप सावधानी से प्रवेश करें ।

अविमारक—देवि ! आप एक बार यह तो बता दें कि राजकुल का नियम क्या है ?

धात्री—(कान में) ऐसे ही ।

अविमारक—अहा ! राजा के घर का व्यवहार सुनकर मेरी बुद्धि ऐसा ही समझ रही है मानो मैं राजकुल में प्रविष्ट हो गया हूँ । मेरा पराक्रम दूसरों के द्वारा दूषित करने योग्य नहीं है; यदि भाग्य प्रतिकूल न हो तो ॥ ८ ॥

(विचिन्त्य) भवति ! कोऽस्माकमस्मिन् कार्ये प्रत्ययः ।

उभे--अअं पच्चओ । जेदु भट्टिदारओ । [अयं प्रत्ययः । जयतु भर्तृदारकः ।]

अविमारकः—हन्त गम्यतां सम्प्रति । प्रतीक्ष्यतामर्धरात्रम् ।

उभे--जं भट्टिदारओ आणवेदि (निष्क्रान्ते) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अहो णअरस्स सोहा संपदि । अत्थं आसादिदो भअवं सुय्यो दीसइ दहिपिण्डपण्डरेसु पासादेसु अग्गापणालिन्देसु पसारिअगुलमहुरसङ्गदो विअ । गणिआजणो णाअरिअजणो अ अण्णोण्णविसेसमण्डिदा अत्ताणं दंसइदुकामा तेसु तेसु पासादेसु सविब्भमं सञ्चरन्ति । अहं तु तादिसाणि पेक्खिअ उन्मादिअमाणस्य तत्तहोदो रत्तिसहाओ होमि त्ति णअरादो णिग्गदो म्हि । सो वि दाव अम्हाअं अधण्णदाए केण वि अणत्थसञ्चिन्तणेण अण्णादिसो विअ संवुत्तो । एदं तत्तहोदो आवासगिहं । अज्ज णअरापणालिन्दे सुणामि तत्तहोदो गिहादो णिग्गदा राअदारिआए धत्ती सही अ त्ति । किं णु खु एत्थ कय्यं । अहव हत्थिहत्थचञ्चलाणि पुरुसभग्गाणि होन्ति । अहव गच्छदु अणत्थो अम्हाअं । अवत्थासदिसं राअउलं पविसामि । (प्र वश्य) ही ही एसो अत्तभवं कामुअजणवण्णएण अणुलित्तो विअ पण्डुभावेण इदो एव आअच्छदि । अहव सव्वं अलङ्कारो होदि सुरूवाणं (उपेत्य)

विसंवादम् = प्रतिकूलताम् । न उपैति = न प्राप्नोति । यदि भाग्यं नैव प्रतिकूलम् तर्हि मम पुरुषोचितः पराक्रमः केनाप्यन्येन नैव तिरस्कार्यं इति भावः ॥ ८ ॥

प्रत्ययः = विश्वासः । अर्धरात्रम् = मध्यरात्री

(सोचकर) भद्रे ! मुझे इस कार्य में विश्वास कैसे हो ?

दोनों—ऐसे विश्वास होगा । जय हो राजकुमार की ।

अविमारक—अच्छा, तो आप भी जायें । आधी रात के समय प्रतीक्षा करें ।

दोनों—राजकुमार की जो आज्ञा (प्रस्थान) ।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अहा, नगर की शोभा इस समय कितनी न्यारी है ? अस्ताचल

जेदु भवं। [अहो नगरस्य शोभा सम्प्रति। अस्तमासादितो भगवान् सूर्यो दृश्यते दधिपिण्डपाण्डरेषु प्रासादेष्वग्रापणालिन्देषु प्रसारितगुडमधुरसङ्गत इव। गणिकाजनो नागरिकजनश्चान्योन्यविशेषमण्डितावात्मानं दर्शयितुकामौ तेषु तेषु प्रासादेषु सविभ्रमं संचरतः। अहं तु तादृशानि प्रेक्ष्योन्माद्यतस्तत्रभवतो रात्रिसहायो भवामीति नगरान्निर्गतोऽस्मि। सोऽपि तावदस्माकमधन्यतया केनाप्यनर्थसंचिन्तनेनान्यादृश इव संवृत्तः। एतत् तत्रभवत आवासगृहम्। अद्य नगरापणालिन्दे शृणोमि तत्रभवतो गृहान्निर्गता राजदारिकाया धात्री सखी चेति। किं नु खल्वत्र कार्यम्। अथवा हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति। अथवा गच्छत्वनर्थोऽस्माकम्। अवस्यासदृशं राजकुलं प्रविशामि। ही ही एषोऽत्रभवान् कामुकजनवर्णकेनानुलिप्त इव पाण्डुभावेनेत एवागच्छति। अथवा सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्। जयतु भवान्।]

अस्तमासादितः = अस्तंगतः। दधिपिण्डपाण्डरेषु = दध्नः पिण्डमिव श्वेतवर्णेषु। पाण्डरशब्दः श्वेतवर्णवाचकः तद्यथा—"शुक्ल-शुभ्र-शुचि-श्वेत-विशद-श्वेत-पाण्डराः" इत्याद्यमरः। प्रासादेषु = राजभवनेषु। अग्रापणालिन्देषु = आपणाग्रस्थितबहिर्द्वारप्रकोष्ठेषु। प्रसारितगुडमधुरसङ्गतः = प्रसारितस्य गुडस्य मधुनश्च रसम्प्राप्त इव। गणिकाजनः = वेश्या। अन्योन्यविशेषमण्डितौ =

को प्राप्त सूर्यदेव दधिपिण्ड के समान श्वेत राजभवनों तथा बाह्य प्रकोष्ठों पर फैले हुए गुड-मधु के समान प्रतीत हो रहे हैं। वेश्यायें तथा नागरिक जन खूब सज-धज कर इस विलास से विचर रहे हैं मानो आत्म-प्रदर्शन कर रहे हों। मैं तो इसीलिए निकल पड़ा हूँ कि इन वस्तुओं को देखकर पागल की तरह आचरण करने वाले राजकुमार की सहायता कर सकूँ। आजकल किसी अनिष्ट की आशंका से कुछ दूसरी तरह के ही हो रहे हैं। यही तो उनका निवास है। मैंने बाजार में सुना है कि उनके घर से राजकुमारी की सखी तथा धात्री निकली हैं। उनका यहाँ क्या काम हो सकता है ? अथवा हाथी की सूँड़ के समान ही चञ्चल पुरुषों का भाग्य हुआ करता है। हा, हा, यही तो कामुक व्यक्ति के समान पाण्डुता से युक्त राजकुमार हैं, जो इधर ही आ रहे हैं अथवा सुन्दर व्यक्ति के लिए सब कुछ आभूषण ही होता है। जय हो आप की।

अविमारकः—वयस्य ! अतिविलम्बितमिव भवता नगरे ।

विदूषकः—तुमं दाव आमन्तणविप्पलद्धो विअ बम्हणो अहोरत्तं चिन्तेसि । अहं पि दाव दिअसे णअरं परिब्भमिअ अलद्धभोआ पाअडगणिआ विअ रत्ति पस्सदो सइदुं आअच्छामि । [त्वं तावदामन्त्रणविप्रलब्ध इव ब्राह्मणोऽहोरात्रं चिन्तयसि । अहमपि तावद् दिवसे नगरं परिभ्रम्यालब्धभोगा प्राकृतगणिकेव रात्रौ पार्श्वतः शयितुमागच्छामि ।

अविमारकः—सखे ! प्रियं ते कथयिष्यामि ।

विदूषकः—किं समत्तो अम्हाअं इसिसावो । [किं समाप्तोऽस्माकमृषिशापः ।]

अविमारकः—मूर्ख ! अवश्यं भवितव्येऽर्थे कः प्रहर्षः ।

पारस्परिकस्पर्धयेव विशेषरूपेणालङ्कृतशरीरौ । सविभ्रमम् = सविलासम् । संचरतः = विचरणं कुरुतः । प्रेक्ष्य = अवलोक्य । उन्माद्यतः = उन्मादयुक्तस्य । तत्र भवतः = राजकुमारस्य । रात्रिसहायः = रात्रौ सहायताकरः । अधन्यतया = दुर्भाग्यवशात् । हस्तिहस्तसम्स्खलनानि = गजशुण्डादण्ड इव चपलानि । अवस्थासदृशम् = अवस्थानुकूलम् । कामुकजनवर्णकेन = कामिपुरुषोचितेन वर्णेन । अनुलिप्तेन = युक्तेन । पाण्डुभावेन = पीतवर्णमापन्नेन । सुरूपाणाम् = सौन्दर्यशालिनाम् ।

अतिविलम्बितम् = प्रभूतो विलम्बः कृतः । आमन्त्रणविप्रलब्धः = निमन्त्रणलोलुपः । अलब्धभोगा = अप्राप्तभोगसाधना । प्राकृतगणिकेव = सामान्यवेश्येव ।

अविमारक—मित्र, आपने नगर में बहुत देर कर दी ।

विदूषक—तुम तो निमन्त्रण के लालची ब्राह्मण की तरह दिन-रात चिन्ता ही करते रहते हो । मैं भी दिनभर नगर में घूमकर उपलब्ध-भोग वेश्या की तरह रात में बगल में सोने आ जाता हूँ ।

अविमारक—मित्र, मैं तुम्हें एक शुभ समाचार सुनाऊँगा ।

विदूषक—क्या ऋषि द्वारा दिये गये शाप का हमारा समय समाप्त हो गया ?

अविमारक—मूर्ख, जो अवश्यंभावी है उसके लिए कैसी प्रसन्नता ?

विदूषकः—किं पुण अण्णं। [किं पुनरन्यत्।]

अविमारकः—किं न दृष्टा कुरङ्ग्या धात्री नलिनिका च।

विदूषकः—आम भो! दिट्ठाओ तत्तहोदीओ! किं आणीदं। [आम भोः दृष्टे तत्रभवत्यौ। किमानीतम्।]

अविमारकः—अस्मच्छोकौषधमानीतम्।

विदूषकः—पेक्खामि दाव। [पश्यामि तावत्।]

अविमारकः—काले द्रक्ष्यसि। अद्य तावत् श्रूयताम्।

विदूषकः—भणादु भणादु भवं [भणतु भणतु भवान्।]

अविमारकः—किं बहुना। तत्र भवती ब्रवीति अद्यैव प्रवेष्टव्यं कन्यापुरमिति।

विदूषकः—(विहस्य) केण खु उवाएण अब्भन्तरं पविसिअ जीवग्गहणं पत्तुकामोऽसि। अमच्चा णाम विसमसीला कुन्तिभोअस्स। [केन खलूपायेनाभ्यन्तरं प्रविश्य जीवग्रहणं प्राप्तुकामोऽसि। अमात्या नाम विषमशीलाः कुन्तिभोजस्य।]

प्रियम्=सुसमाचारम्। अस्मच्छोकौषधम्=मदीयक्लेशं निवारयितुं यद् भेषजं तदेव। जीवग्रहणं प्राप्तुकामः=जीवनं धारयितुमिच्छुः। अमात्याः=मन्त्रिणः। विषमशीलाः=दुष्टप्रकृतयः।

विदूषक—तो फिर और क्या है?

अविमारक—क्या तुमने कुरङ्गी की धात्री और नलिनिका को नहीं देखा?

विदूषक—हाँ, उन दोनों को तो देखा है। क्या लाई थी?

अविमारक—वे दोनों हमारे शोक की दवा ले आईं थी।

विदूषक—देखूँ तो!

अविमारक—समय आने पर देख लेना, अभी सुनो।

विदूषक—कहिये, कहिये आप।

अविमारक—अधिक क्या, उसने कहा है आज ही कन्यान्तःपुर में प्रवेश करना है।

विदूषक—(हंसकर) किस उपाय से अन्तःपुर में प्रवेश करके जीवित रह सकोगे? कुन्तिभोज के मन्त्री लोग बड़े ही दुष्ट स्वभाव के हैं।

अविमारकः—कथं भवतापि शङ्कनीयम्। पश्य,

भग्ना मयैकेन पराः ससैन्या
अद्यापि गन्धेन न संश्रयन्ते।
किं मानुषैः सोऽप्यसुरेश्वरो मे
हतो भुजाभ्यामविरूपधारी ॥ ९ ॥

विदूषकः—जाणामि जाणामि भवदो अमाणुसाणि कम्माणि। सव्वहा सङ्कणीओ रत्तिच्छण्णो परगिहप्पवेसो। [जानामि जानामि भवतोऽमानुषाणि कर्माणि। सर्वथा शङ्कनीयो रात्रिच्छन्नः परगृहप्रवेशः।]

भग्नेति०। अन्वयः—मया, एकेन, पराः, ससैन्याः, भग्नाः। अद्यापि, गन्धेन, न, संश्रयन्ते। किम्, मानुषैः, अविरूपधारी, सः, असुरेश्वरः, अपि, मया, हतः।

मया एकेन = मया एकाकिनैव। कस्याप्यन्यसहायकस्य साहाय्यं न गृहीतमितिभावः। पराः = अरयः। ससैन्याः = सैन्यसहिताः। भग्नाः = पराजिताः। अद्यापि = अधुनापि। गन्धेन = गर्वेण। न = नहि। संश्रयन्ते = युज्यन्ते। गर्वयुक्ता नैव भवितुमर्हन्तीति भावः। अत्र गन्धशब्दः गर्वपर्यायः, तद्यथा—"गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयो" रिति विश्वः। किं मानुषैः = का गणना मानुषाणाम्? अविरूपधारी = मेषरूपधारी। सः = विश्रुतपराक्रमः। असुरेश्वरोऽपि = असुरराजोऽपि। मे = मम। भुजाभ्याम् = कराभ्याम्। हतः = व्यापादितः। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्। तल्लक्षणं हि—"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ"। इति। ९॥

अमानुषाणि = मानवैरसाध्यानि। रात्रिच्छन्नः = रात्रौ प्रच्छन्नरूपेण

अविमारक—तुम्हें भी क्यों शङ्का होती है? देखो,—

मैंने अकेले ही सैन्यसहित शत्रुओं को ऐसा पराजित किया कि वे आज भी गर्व से सर नहीं उठा पा रहे हैं। मनुष्यों की क्या गिनती? वह मेषरूपधारी असुरराज भी मेरे हाथों मारा जा चुका है ॥ ९ ॥

विदूषक—जानता हूँ, जानता हूँ मैं तुम्हारे अमानवीय कार्यों को। फिर भी रात में दूसरे के घर में छिपकर प्रवेश करना सर्वथा शङ्कनीय है।

अविमारकः—एष समासः। सर्वथा प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। तदनुगन्तुमर्हति महाब्राह्मणः।

विदूषकः—कहं मं उज्झिअ गच्छसि। अहं भवन्तं सव्वकालं ण मुञ्चामि। अक्कोसन्तो वि एक्को इच्छिदव्वो। [कथं मामुज्झित्वा गच्छसि। अहं भवन्तं सर्वकालं न मुञ्चामि। आक्रोशन्नप्येक एष्टव्यः]

अविमारकः—न जानाति भवान् शास्त्रमार्गम्।

एकः परगृहं गच्छेद् द्वितीयेन तु मन्त्रयेत्।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः॥ १०॥

तस्मादेकेनैव मया प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। न ते वयं शङ्कनीयाः। पश्यतु भवान्,

---

सम्पाद्यमानः। समासः = सारांशः। उज्झित्वा = त्यक्त्वा। मुञ्चामि = त्यजामि। आक्रोशन् = चीत्कारादिशब्दान् कुर्वन्। एष्टव्यः = वाञ्छनीयः। शास्त्रमार्गम् = शास्त्रनिर्देशम्।

एक इति। अन्वयः—एकः, एव, परगृहम्, गच्छेत्, द्वितीयेन, तु, मन्त्रयेत्, बहुभिः, समरम्, कुर्यात्, इति, अयम्, शास्त्रनिर्णयः।

एकः = एकाकी। सहायकान्तररहित एव। परगृहम् = अन्यस्य गेहम्। गच्छेत् = प्रविशेत्। द्वितीयेन तु मन्त्रयेत् = स्वातिरिक्तेन केनचित् द्वितीयेनैव सह मन्त्रणां कुर्यात्। मन्त्रणायाम् द्वितीयातिरिक्तानाम् जनानामपेक्षा नैव कार्येति भावः। बहुभिः = अधिकसंख्यकैर्जनैः सह। समरम् = युद्धम्। कुर्यात् = विधीयेत। इत्ययम् = इत्येष एव। शास्त्रनिर्णयः = शास्त्रनिर्देशः॥ १०॥

अविमारक—सारांश यही है कि किसी भी प्रकार कुन्तिभोज के कन्यान्तःपुर में प्रवेश करना है। तुम महाब्राह्मण हो, अनुमति दो।

विदूषक—मुझे छोड़कर क्यों जाते हो! मैं तुम्हें कभी भी नहीं छोड़ूँगा। चीखने-चिल्लाने वाला व्यक्ति भी तो चाहिये।

अविमारक—आप शास्त्र की बातें नहीं जानते।

दूसरे के घर में अकेला ही प्रवेश करना चाहिये, अपने अलावे किसी दूसरे एक ही व्यक्ति से मंत्रणा करनी चाहिये तथा बहुत व्यक्तियों के साथ युद्ध करना चाहिये, यही शास्त्र का निर्णय है॥ १०॥

इसलिए मुझे अकेले ही कुन्तिभोज के कन्यान्तःपुर में प्रवेश करना चाहिये। मेरे बारे में तुम लोग चिन्ता मत करो। देखो—

मितगुणमिह कुन्तिभोजसैन्यं
नृपभवनं विभवैः सुखं प्रवेष्टुम् ।
वयमपि च भुजायुधप्रधानाः
किमिह सखे ! भवतापि शङ्कनीयाः ॥ ११ ॥

विदूषकः—जइ एवं किदो णिच्चओ, संपदि णअरं पविसामो । तहिं मम अत्थि भित्तो । तस्स आवासे कालं पडिवालम्ह । [यद्येवं कृतो निश्चयः, संप्रति नगरं प्रविशावः । तत्र ममास्ति मित्रम् । तस्यावासे कालं प्रतिपालयावः ।]

अविमारकः--सम्यग् भवानाह । साम्प्रतमभ्यतरं प्रविश्य कृताह्निको महाराजेनाभ्यनुज्ञातो वासगृहे शयनसंविधानं प्रविश्याज्ञातो नगरं प्रविश्य भवतो मित्रगृहे कालं प्रतिपालयामि ।

मितगुणमिहेति । अन्वयः—इह, कुन्तिभोजसैन्यम्, मितगुणम्, विभवैः, नृपभवनम्, सुखम्, प्रवेष्टुम् । भुजायुधप्रधानाः, वयमपि, किम्, सखे, भवता, शङ्कनीयाः ?

इह = अत्र कुन्तिभोजस्य कन्यान्तःपुरे । कुन्तिभोजसैन्यम् = राज्ञः सेना । मितगुणम् = अल्पबलम् । विभवैः नृपभवनम् = वैभवशालिनं राजप्रासादम् । सुखं प्रवेष्टुम् = कष्टमन्तरा प्रवेशार्हम् । भुजायुधप्रधाना = बाहुरूपाणि अस्त्राण्येव प्राधान्येन येषाम् तादृशाः । वयमपि किं शङ्कनीयाः = मद्विषये शङ्का नैव कार्येति भावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ११ ॥

प्रतिपालयावः = प्रतीक्षावहे ।

कुन्तिभोज की सेना साधारण है, वैभवशाली राजकुल में प्रवेश करना आसान है । मेरे हाथ में अस्त्र के रहने पर भी क्या तुम्हें मेरे विषय में शङ्का करनी चाहिये ? ॥ ११ ॥

विदूषक—यदि ऐसा ही निश्चय कर लिया है तो चलो नगर में प्रवेश करें । वहाँ मेरा एक मित्र है, उसी के यहाँ बैठकर समय की प्रतीक्षा करें ।

अविमारक—आपने ठीक कहा, अब भीतर जाकर आह्निक कृत्य समाप्त कर महाराज की अनुमति से वासगृह में प्रवेश कर छिपे-छिपे आपके मित्र के घर में समय की प्रतीक्षा करें ।

(प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिदारओ। आवुत्त ह्णाणोदअं। [जयतु भर्तृदारकः। आवृत्तं स्नानोदकम्।]

अविमारकः—अयमयमागच्छामि। गच्छाग्रतः।

चेटी—ज भट्टिदारओ आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति।]

अविमारकः—वयस्य ! अस्तमितो भगवान् दिवाकरः। सम्प्रति हि—

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥ १२ ॥

पूर्वेति। अन्वयः—पूर्वा, तु, काष्ठा, तिमिरानुलिप्ता, पश्चिमाशा, च, सन्ध्यारुणा, भाति। अन्तरिक्षम्, द्विधा, विभक्तान्तरम्, सत्, अर्धनारीश्वर-रूपशोभाम्, याति।

पूर्वा काष्ठा = प्राची दिशा। "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः" इत्यमरः। तिमिरानुलिप्ता = अन्धकारेण व्याप्ता। पश्चिमाशा = प्रतीची दिशा। सन्ध्यारुणा = सान्ध्यरक्तिमया रक्ता। भाति = शोभते। अन्तरिक्षम् = गगनम्। द्विधा = द्वेधा। विभक्तान्तरम् = विभज्यमानम् सत्। अर्धनारीश्वररूपशोभाम् = अर्धाङ्गाश्रितदारस्य शङ्करस्य सादृश्यम् धारयति ॥ १२ ॥

(प्रवेश करके)

चेटी—जय हो राजकुमार की। नहाने का जल तैयार है।

अविमारक—यह आया, तुम आगे चलो।

चेटी—राजकुमार की जो आज्ञा। (जाती है)

अविमारक—मित्र ! भगवान् सूर्य अस्त हो गये। अभी—

पूर्व दिशा अन्धकार से पूर्ण एवं पश्चिम दिशा सान्ध्य लालिमा से युक्त हो रही है। दो रूपों में विभक्त यह अन्तरिक्ष अर्धनारीश्वर की शोभा को धारण कर रहा है ॥ १२ ॥

विदूषकः—सुट्ठु, भवं भणादि । अदिक्कन्दो दिअसो । आरूढो पओसो । [सुष्ठु भवान् भणति । अतिक्रान्तो दिवसः । आरूढः प्रदोषः ।]

अविमारकः—अहो विचित्रस्वभावता जगतः । कुतः ।

व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः ।
संलीननकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥ १३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

द्वितीयोऽङ्कः ।

अतिक्रान्तः = व्यतीतः । आरूढः = समारब्धः । विचित्रस्वभावता = विस्मयोत्पादकप्रकृतिता ।

व्यामृष्टेति । अन्वयः—व्यामृष्टसूर्यतिलकः, विततोडुमालः, नष्टातपः, मृदुमनोहरशीतवातः । संलीनकामुकजनः, प्रविकीर्णशूरः, मनुष्यलोकः, वेषान्तरम्, रचयतीव ।

व्यामृष्टसूर्यतिलकः = प्रोञ्छितरविचन्दनः । विततोडुमालः = विस्तृतनक्षत्रमालः । नष्टातपः = शमितसूर्यकिरणातपः । मृदुमनोहरशीतवातः = कोमलमनोज्ञशीतवायुः, संलीनकामुकजनः = गृहान्तर्गतकामिपुरुषः । प्रविकीर्णशूरः = इतस्ततो भ्रमन्तः शूरपुरुषा इव । अयं मनुष्यलोकः = मर्त्यलोकः । वेषान्तरम् = रूपान्तरम् । रचयति = विधत्ते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १३ ॥

इति कमलेश्वरीटीकायां द्वितीयोऽङ्कः ।

विदूषक—आप ठीक कहते हैं । दिन बीत गया । प्रदोष प्रारम्भ हो गया ।

अविमारक—अहा, जगत् का स्वभाव भी विचित्र है । क्योंकि—

सूर्यरूपी चन्दन पुंछ गया है, तारों की माला फैल गई है, धूप समाप्त हो गई, कोमल एवं मनोहर ठंढी हवा चल रही है, कामुक व्यक्ति घरों में छिप गये हैं, वीर पुरुष इधर-उधर घूम रहे हैं, इस प्रकार यह मनुष्य-लोक मानों अपनी वेष-भूषा बदल रहा है ॥ १३ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त ।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुरङ्गी चेटयौ च)

कुरङ्गी—हला ! किं तेण भणिअं [हला ! किं तेन भणितम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! केण । [भर्तृदारिके ! केन ।]

कुरङ्गी—(स्वगतम्) हं भिन्दामि खु मन्दभाआ । (प्रकाशम्) कण्णेउरचेडेण । [हं भिनद्मि खलु मन्दभागा । कन्यापुरचेटेन ।]

मागधिका—दिट्ठो मए कण्णेउरचेडो । भणिदं च । ण किञ्चि आह । [दृष्टो मया कन्यापुरचेटः । भणितं च । न किञ्चिदाह ।]

कुरङ्गी—हन्त भट्टिणीए णिवेदेमि—कण्णेउरचेडो मम सुअपञ्जरं ण करेदि त्ति । [हन्त भट्टिन्यै निवेदयामि— कन्यापुरचेटो मम शुकपञ्जरं न करोतीति ।]

मागधिका—णं णिट्ठिदो सुअपञ्जरो भट्टिदारिए । [ननु निष्ठितः शुकपञ्जरो भर्तृदारिकायाः ।]

भिनद्मि = तिरस्कारक्षोभेन विषीदामि । मन्दभागा = भाग्यहीना । कन्यापुरचेटेन = कन्यापुरभृत्येन । भट्टिन्यै = महाराज्ञ्यै । निष्ठितः = निर्मितः ।

(दो चेटियों के साथ कुरङ्गी का प्रवेश)

कुरङ्गी—सखी, उसने क्या कहा ?

चेटी—राजकुमारी, किसने ?

कुरङ्गी—(स्वगत) मैं अभागी तिरस्कार-दुःख से मरी जाती हूँ । (प्रकट) कन्यापुर के भृत्य ने ।

मागधिका—मैंने कन्यापुर के भृत्य को देखा है । कहा भी था, उसने कुछ भी नहीं कहा ।

कुरङ्गी—अच्छा, महारानी से कहूँगी । कन्यापुर का भृत्य मेरा शुकपञ्जर नहीं बना दे रहा है ।

मागधिका—राजकुमारी का शुकपञ्जर तो बनकर आ चुका है ।

कुरङ्गी—वाचाडे ! किं अण्णो वि अत्थि । [वाचाटे ! किमन्योऽप्यस्ति ।]

मागधिका—भोदव्वं [भवितव्यम् ।]

कुरङ्गी—हला ! का वेला । [हला ! का वेला ।]

मागधिका—ओगाहो पओसो । [अवगाढः प्रदोषः ।]

कुरङ्गी—तेण ही पासादं आलुहामो । [तेन हि प्रासादमारोहामः ।]

मागधिका—विलासिणि ! अग्गदो जाहि । विरएहि सअणासणाणि । [विलासिनि ! अग्रतो याहि । विरचय शयनासनानि ।]

विलासिनी—सुत्ता खु तुवं ! को कालो विरइदाणि सअणासणाणि । [सुप्ता खलु त्वम् । कः कालो विरचितानि शयनासनानि ।]

मागधिका—हला ! जाणामि दे अलसत्तणं । दिवसरइदाणि भणासि रइदाणि त्ति । [हला ! जानामि तेऽलसत्वम् । दिवसरचितानि भणसि रचितानीति ।]

विलासिनी—हला ! मा एव्वं भणाहि । भट्टिदारिअं अन्तदेण अण्णादिसाणि होन्ति । [हला ! मैवं भण । भर्तृदारिकामन्तरेणान्यादृशानि भवन्ति ।]

वाचाटे=बहुभाषिणि । "स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्" इत्यमरः । अवगाढः=सघनः । विरचय=परिष्कुरु ।

कुरङ्गी—अरी वाचाल, क्या दूसरी भी है ?

मागधिका—होना चाहिये ।

कुरङ्गी—सखी, क्या समय है ?

मागधिका—प्रदोष गाढा हो रहा है ।

कुरङ्गी—तो हमलोग छत पर चलें ।

मागधिका—विलासिनि ! तू आगे चल, बिछावन ठीक कर ।

विलासिनी—तू क्या सो रही थी ? मैंने तो कब का बिछावन ठीक कर दिया है ।

मागधिका—अरी, मैं तेरे आलस्य को जानती हूँ । दिन में किये गये बिछावन को ही अभी का ठीक किया गया बता रही है ।

विलासिनी—अरी, ऐसा मत कह । राजकुमारी क्या समझेंगी ।

मागधिका—हला ! गदुअ जाणामि । [हला ! गत्वा जानामि ।]

(सर्वाः परिक्रामन्ति ।)

मागधिका—एसो पासादो । [एष प्रासादः ।]

कुरङ्गी—अग्गदो जाहि ! [अग्रतो याहि ।] (आरोहणं नाटयति ।)

मागधिका—साहु विलासिणि ! साहु ! अत्तणो णामसदिसं किदं एदस्सि सिलादले रइदं सअणं । [साधु विलासिनि ! साधु ! आत्मनो नामसदृशं कृतम् । एतस्मिन् शिलातले रचितं शयनम् ।]

विलासिनी—अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं । मागधिए ! पेक्ख पेक्ख मे अलसत्तणं । [अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम् । मागधिके ! पश्य पश्य मेऽलसत्वम् ।]

मागधिका—अदिपण्डिदा खु सवुत्ता । एवं पण्डितचेडवुत्तं भत्तारं लभेहि । [अतिपण्डिता खलु संवृत्ता । एवं पण्डितचेटवृत्तं भर्तारं लभस्व ।]

कुरङ्गी—हला ! इमस्सि सिलादले मुहुत्तअं उवविसामि । [हला ! अस्मिन् शिलातले मुहूर्तकमुपविशामि ।]

मागधिका—जं भट्टिदारिआए रुइदं । होदु । [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम् । भवतु ।]

अतिपण्डिता = अतिनिपुणा । पण्डितचेटवृत्तम् = चेटेषु पण्डितत्वेन प्रसिद्धम् । भर्त्तारम् = पतिम् । लभस्व = प्राप्नुहि ।

मागधिका—सखी, जाकर पता लगाती हूँ ।

(सभी जाती हैं ।)

मागधिका—यही तो प्रासाद है ।

कुरङ्गी—आगे चल । (चढ़ने का अभिनय करती है)

मागधिका—शाबाश विलासिनि, शाबाश । तूने अपने नाम के अनुसार ही काम किया है । इस शिलातल पर बिछावन लगा रखा है ।

विलासिनी—मैंने भीतर के मण्डप पर बिछावन लगा दिया । मागधिके! देख, देख मेरा आलस्य ।

मागधिका—तुम बहुत पण्डित हो रही हो । अपने समान ही पण्डित पति को प्राप्त करो ।

कुरङ्गी—सखी, इस शिलातल पर कुछ देर बैठ लेती हूँ ।

मागधिका—राजकुमारी को जो अच्छा लगे । अस्तु ।

(सर्वा उपविशन्ति)

मागधिका—भट्टिदारिए। कहेमि वक्खाणं। [भर्तृदारिके ! कथयामि व्याख्यानम्।]

कुरङ्गी—हला ! जाणामि दे असम्बद्धप्पलावं। [हला ! जानामि तेऽसंबद्धप्रलापम्।]

मागधिका—भट्टिदारिए ! अभिणवा खु कहा। [भर्तृदारिके ! अभिनवा खलु कथा।]

कुरङ्गी—याचेमि, मा णिब्बन्धिअ, मुहूत्तअं सआमि। [याचे, मा निर्बन्धय, मुहूर्त्तकं शये।]

विलासिनी—सुहं सइदु भट्टिदारिआ। मे कहेहि। [सुखं शेतां भर्तृदारिका। मम कथय।]

कुरङ्गी- (आत्मगतम्) किंणु खु भवे। [किं नु खलु भवेत्।

मागधिका—हला ! सुणाहि भट्टिदारिअं अन्तरेण...। [हला ! शृणु भर्तृदारिकामन्तरेण।]

कुरङ्गी—हं विदिदं रहस्सं। परिब्भट्ठम्हि। [हं विदितं रहस्यम्। परिभ्रष्टास्मि।]

व्याख्यानम् = विशिष्टमाख्यानम्, कथाविशेषमिति भावः। असंबद्धप्रलापः = अप्रस्तुतविषयको वार्त्तालापः। मा निर्बन्धय = हठं न कुरु। विदितम् = अभि-

---

(सभी बैठती हैं)

मागधिका—राजकुमारी, मैं कहानी कहती हूँ।

कुरङ्गी सखी, मैं जानती हूँ कि तुम किस तरह ऊटपटांग बातें करती हो।

मागधिका—राजकुमारी, यह कहानी बिल्कुल नई है।

कुरङ्गी—मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, जिद मत करो, थोड़ा सो लेती हूँ।

विलासिनी—राजकुमारी आराम से सोवें, मुझे सुनाओ।

कुरङ्गी—(स्वगत) न जाने क्या बात है........।

मागधिका—सखी, सुनो, राजकुमारी के बिना........।

कुरङ्गी—हाय, मेरा रहस्य उसे मालूम है। मैं भ्रष्ट हो गई।

विलासिनी—हला ! कहिं तुए सुदं । [हला ! कुत्र त्वया श्रुतम् ।]

मागधिका—भट्टिणीपरिचारिआए वसुमित्ताए कहिदं । [भट्टिनीपरिचारिकया वसुमित्रया कथितम् ।]

विलासिनी—सअं णाम भट्टिणीए कहिदं होदि । [स्वयं नाम भट्टिन्या कथितं भवति ।]

मागधिका—अत्थि कासिराअपुत्ता जअवम्भा णाम । तस्स दिण्णा भट्टिदारिआ । तस्स अ दूदो आअदो महाराएण पूइदो । पडिग्गहिदं च वण्णिआरं । [अस्ति काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम । तस्मै दत्ता भर्तृदारिका । तस्य च दूत आगतो महाराजेन पूजितः । प्रतिगृहीतं च वर्णिकारम् ।]

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) एदं अलिअं । अहं अत्तणो पभवामि । [एतदलीकम् । अहमात्मनः प्रभवामि ।]

मागधिका—तहि किल भट्टिणीए भणिदं—बाला खु मे दुहिआ, ण सक्कुणोमि एक्कंपि दिअसं अपेक्खन्ती जीविउं । जदि मे महाराओ पसण्णो, एत्थ एव्व जामादुओ आणीदव्वो त्ति । [तत्र किल भट्टिन्या भणितं--बाला खलु मे दुहिता, न शक्नोम्येकमपि दिवसमपश्यन्ती जीवितुम् । यदि मे महाराजः प्रसन्नः, अत्रैव जामातानेतव्य इति ।]

ज्ञातम् । परिभ्रष्टास्मि = च्युतास्मि । दूतः = सन्देशवाहकः । पूजितः = सत्कृतः । प्रतिगृहीतम् = स्वीकृतम् । वर्णिकारम् = वरणसामग्री । अलीकम् = मिथ्या ।

विलासिनी—अरी, तुमने कहाँ सुना ?

मागधिका—महारानी की परिचारिका वसुमित्रा ने कहा है ।

विलासिनी—तब तो स्वयं महारानी ने ही कहा है ।

मागधिका—काशिराज का एक पुत्र जयवर्मा नाम का है । राजकुमारी उसे ही दी गई है । उसका दूत भी आया था । महाराज ने उसका सत्कार किया । वरण सामग्री भी ले ली ।

कुरङ्गी—(स्वगत) यह झूठ है, मैं स्वयं अपनी मालिक हूँ ।

मागधिका—इस पर महारानी ने कहा—मेरी पुत्री अभी छोटी है । उसे देखे बिना मैं एक दिन भी नहीं जी सकती हूँ । यदि महाराज मुझ पर प्रसन्न हैं तो दामाद को यहीं बुला लें ।

विलासिनी—तदो तदो। [ततस्ततः ।]

मागधिका—तदो तं पि किल अणुमदं महाराएण। अज्ज णक्खत्तं सोभणं त्ति तेण अ दूदेण अमच्चो अय्यभूदिओ पत्थिदो। [ततस्तदपि किलानुमतं महाराजेन। अद्य नक्षत्रं शोभनमिति तेन च दूतेनामात्य आर्यभूतिकः प्रस्थितः ।]

कुरङ्गी-(स्वगतम्) हन्त कालन्तरिदं कय्यं। (हन्त कालान्तरितं कार्यम्।)

विलासिनी—पिअं भट्टिदारिआए रूवजोव्वणं सफलं संवुत्तं त्ति। (प्रियं भर्तृदारिकाया रूपयौवनं सफलं संवृत्तमिति।)

(प्रविश्य)

नलिनिका—भणिदं हि मम मादाए-गच्छ एदं वुत्तन्तं भट्टिदारिआए कहेहि। पिअणिवेदिअमाणाणि पिआणि पिअदराणि होन्ति। अह अ सा वि मं पेक्खन्ती सव्वं विस्सत्थं ण भणादि। अहं पि काले पस्मदो पभवामि त्ति। जा भट्टिदारिआये पिअं णिवेदेमि। (परिक्रामति) (भणितं हि मम मात्रा-गच्छैतं वृत्तान्तं भर्तृदारिकायै कथय। प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति। अथ च सापि मां पश्यन्ती सर्वं विश्वस्तं न भवति। अहमपि काले पार्श्वतः प्रभवामीति यावद् भर्तृदारिकायै प्रियं निवेदयामि।)

कालान्तरितम् = विलम्बेन सम्पादनीयम्। भणितम् = कथितम्। वृत्तान्तम् = समाचारम्। प्रियम् = श्रवणसुखदम्, हृद्यम्।

विलासिनी—फिर क्या हुआ ?

मागधिका—तब महाराज ने इसे भी मान लिया। आज शुभ मुहूर्त था इसलिए दूत के साथ अमात्य आर्यभूतिक भी गये हैं।

कुरङ्गी—(स्वगत) अच्छा, यह कार्य अब कालान्तरित हुआ।

विलासिनी—बड़ी खुशी की बात, राजकुमारी का रूप, यौवन सफल हुआ।

(प्रवेश करके)

नलिनिका--मेरी माँ ने कहा है कि जाओ यह समाचार राजकुमारी को सुना दो। प्रियजन द्वारा निवेदित प्रियवस्तु प्रियतर होती है। वह भी मुझे देखकर सारी बातें खुलकर नहीं कहती है। मैं भी समय पर नजदीक आ जाऊँगी। जब तक मैं राजकुमारी को यह खुश-खबरी सुना दूँ।

कुरङ्गी—कोणु खु अभूदपूव्वो रोओ चिन्तिअमाणो मं उम्मादेदि। सुमणावण्णअं णेच्छदि। ण तुस्सदि गोट्ठीए। इदं एत्थ दारुणं मणोहरं च। (निःश्वस्य) णलिणिए! किं एदं। [को नु खल्वभूतपूर्वो रोगश्चिन्त्यमानो मामुन्मादयति। सुमनोवर्णकं नेच्छति। न तुष्यति गोष्ठया। इदमत्र दारुणं मनोहरं च। नलिनिके! किमेतत्।]

मागधिका—भट्टिदारिए! माअधिआ खु अहं। [भर्तृदारिके! मागधिका खल्वहम्।]

विलासिनी—भट्टिदारिए! विलासिणी खु अहं। [भर्तृदारिके! विलासिनी खल्वहम्।]

नलिनिका—(उपगम्य) भट्टिदारिए! अहं णलिणिआ। सोवाणसद्देण खु भट्टिदारिआए विञ्ञादं। भट्टिदारिए! भट्टिणी भणादि। (भर्तृदारिके! अहं नलिनिका। सोपानशब्देन खलु भर्तृदारिकया विज्ञातम्। भर्तृदारिके! भट्टिनी भणति।)

कुरङ्गी—किं त्ति। (किमिति।)

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ। (एवमिव।)

अभूतपूर्वः = सर्वथाऽभिनवः। चिन्त्यमानः = विभाव्यमानः। सुमनोवर्णकम् = पुष्पमाल्यम्। गोष्ठया = जनसङ्गमेन। दारुणम् = कष्टकरम्। सोपानशब्देन = आरोहणार्थम् विनिर्मितम् विशिष्टमार्गम् सोपानम्, तत्र पादविक्षेपेनोत्पन्नेन

कुरङ्गी—यह कौन-सा अपूर्व रोग है जो मुझे पागल बनाये जा रहा है। मुझे फूल की माला अच्छी नहीं लगती, लोगों से मिलना-जुलना नहीं सुहाता, यह तो नितान्त कष्टकर होते हुए भी मनोहर है। (साँस छोड़कर) नलिनिके! यह क्या बात है?

मागधिका—राजकुमारी, मैं मागधिका हूँ।

विलासिनी—राजकुमारी, मैं विलासिनी हूँ।

नलिनिका—(समीप जाकर) राजकुमारी, मैं नलिनिका हूँ। सीढ़ी की आवाज से राजकुमारी ने जान लिया। राजकुमारी, महारानी ने कहा है···।

कुरङ्गी—क्या कहा है?

नलिनिका—(कान में) यही कहा है।

कुरङ्गी—हं हीणं चारित्तं। [हं हीनं चारित्रम्।]

नलिनिका—णं सम्भावणीओ एसो। णं सो एव सो। [ननु संभावनीयं एषः। ननु स एव सः।]

कुरङ्गी—णलिणिए ! संवाहेहि मं। [नलिनिके ! संवाहय माम्।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि। [यद् भर्तृदारिका ज्ञापयति।]

विलासिनी—णलिणिए ! विवाहो कदा भविस्सदि। [नलिनिके ! विवाहः कदा भविष्यति।]

(नेपथ्ये)

अद्य

नलिनिका—चिरं जीव।

(नेपथ्ये)

राजपुरुषाः ! अमात्यः प्रस्थित इति कश्चिदमात्यभृत्यः कन्यापुररक्षणार्थं नाभ्यागतः। तद् यथेष्टं भवतु। तावदहं श्वो राज्ञो निवेदयिष्यामि।

शब्देन। हीनम्=पतितम्। संभावनोयम्=सम्यक् विचारणीयम्। संवाहय=

कुरङ्गी—हाय, चरित्र-पतन हो गया।

नलिनिका—ऐसा मत सोचें। निश्चय ही वह वही है।

कुरङ्गी—नलिनिके ! पकड़ ले मुझे।

नलिनिका—राजकुमारी की जो आज्ञा।

विलासिनी—नलिनिके ! विवाह कब होगा ?

(नेपथ्य में)

आज।

नलिनिका—चिर काल तक जीती रहो।

(नेपथ्य में)

राजपुरुषो ! अमात्य चले गये हैं, इसलिए कन्यान्तःपुर की रक्षा करने के लिए अमात्य का कोई भृत्य नहीं आया है। जो होता है हो। कल मैं महाराज से निवेदन करूँगा।

विलासिनी—हला णलिणिए ! किं भणिदं । [हला नलिनिके ! किं भणितम् ।]

नलिनिका—जदा सो भट्टिदारओ पविसदि, तदा होदि विवाहो । [यदा स भर्तृदारकः प्रविशति, तदा भवति विवाहः ।]

विलासिनी—अविग्घेण पविसदु । [अविघ्नेन प्रविशतु ।]

नलिनिका—एवं होदु । [एवं भवतु]

मागधिका—हला ! एहि चउस्साले उपविसामो । [हला ! एहि चतुःशाले उपविशामः ।]

विलासिनी—एवं होदु । गदप्पाओ पओसो । आरूढा जोह्ला । [एवं भवतु । गतप्रायः प्रदोषः । आरूढा ज्योत्स्ना ।]

नलिनिका—हला ! मम वि अत्थरं अत्थरेहि । [हला ! ममाप्यास्तरमास्तृणु ।]

मागधिका—अत्थि अवआसो । सेवेहि भट्टिदारिअं. जाव णिद्दं लभदि । [अस्त्यवकाशः । सेवस्व भर्तृदारिकां, यावन्निद्रां लभते ।]

नलिनिका--एवं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभे निष्क्रान्ते ।)

धारय । अविघ्नेन = निर्बाधम् । गतप्रायः = समाप्तकल्पः । आरूढा ज्योत्स्ना =

विलासिनी—सखी नलिनिके ! क्या कहा ?

नलिनिका—जभी वह राजकुमार प्रवेश करेंगे तभी विवाह होगा ।

विलासिनी—विना किसी विघ्न के प्रवेश करें ।

नलिनिका—ऐसा ही हो ।

मागधिका—सखी, चलो, चतुःशाल में कुछ देर बैठें ।

विलासिनी—ऐसा ही हो । प्रदोष बीत गया । चन्द्र-किरण फैल रही हैं ।

नलिनिका—सखी, मेरा भी बिछावन लगा दे ।

मागधिका—अभी तो समय है, राजकुमारी की सेवा कर, जब तक वह सो रही है ।

नलिनिका—ऐसा ही हो ।

(दोनों का प्रस्थान)

(ततः प्रविशति खड्गहस्तश्चौरवेषेण रज्जुहस्तोऽविमारकः)

अविमारकः—(सविमर्शम्) भोः ! कष्टं तारुण्यं नाम । कुतः,

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं
बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥ १ ॥

कथमात्माधीनेष्वर्थेषु मन्दीभवामि । इह हि,

व्याप्ता चन्द्रिका । आस्तरमास्तृणु = शय्याम् विरचय । कष्टं तारुण्यं नाम = यौवनम् खलु अतिकष्टप्रदम् ।

रागमिति । अन्वयः—रागम्, विजृम्भयति, प्रमादम्, संश्रयते, दोषान्, न, चिन्तयति, साहसम्, अभ्युपैति । स्वच्छन्दतः, व्रजति, नीतिमार्गम्, न, इच्छति, सुविदुषाम्, शुभाम्, बुद्धिम्, अवशीकरोति ।

इदं हि तारुण्यं रागम् = आसक्तिम् । विजृम्भयति = वर्द्धयति । प्रमादम् = अनवधानताम् । संश्रयते = अवलम्बयति । दोषान् = अनिष्टानि । न चिन्तयति = न विचारयति । साहसम् = हठप्रवृत्तिम् । अभ्युपैति = स्वीकरोति । स्वच्छन्दतः = स्वातन्त्र्येण । व्रजति = गच्छति । किं कार्यम् किमकार्यमिति नैव परामृशति । नीतिमार्गम् = शास्त्रनिर्दिष्टं नयवर्त्म । न इच्छति = न समीहते । सुविदुषाम् = सुपण्डितानाम् । अपि शुभाम् = निर्मलाम् । बुद्धिम् = मतिम् । अवशीकरोति = कुण्ठितां विधत्ते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।। १ ।।

आत्माधीनेषु = स्वाधीनेषु । अर्थेषु = विषयेषु । मन्दीभवामि = शिथिलोत्साहो भवामि ।

(इसके बाद हाथ में तलवार तथा रस्सी लिये हुए चोर वेष में अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—(सोचकर) ओह, यौवन भी बड़ा कष्टदायक होता है । क्योंकि—

यह राग बढ़ाता है, अनवधानता को बढ़ावा देता है, दोषों की चिन्ता नहीं करता तथा साहस को प्राप्त कराता है । यह यौवन स्वच्छन्द विचरण करता है, नीतिमार्ग को नहीं चाहता एवं विद्वानों की अच्छी बुद्धि को भी विवश कर देता है ।। १ ।।

जो मेरे द्वारा साध्य हैं उन कार्यों में भी शिथिलता क्यों बरतूँ ? यहाँ पर—

नगरपरिचितोऽहं रक्षिणो ज्ञातसारा-
स्तिमिरगहनभीमं वर्तते चार्धरात्रम् ।
असिरपि सुसहायो निश्चितश्चान्तरात्मा
किमिह बहुविचारैः को मया दुष्करोऽर्थः ॥२॥

अहो अर्धरात्रस्य प्रतिभयता । सम्प्रति हि,

गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया
प्रासादाः सुखसुप्तनीरवजनाः ध्यानं प्रविष्टा इव ।

नगरेति । अन्वयः—अहम्, नगरपरिचितः, रक्षिणः, ज्ञातसाराः, अर्धरात्रम्, च, तिमिरगहनभीमम्, वर्त्तते । असिः, अपि, सुसहायः, अन्तरात्मा, च, निश्चितः, इह, बहुविचारैः, किमः, मया, कः, अर्थः, दुष्करः ।

अहम् = अविमारकः । नगरपरिचितः = नगरस्य स्थितिभिः सुविदितः । रक्षिणः = रक्षापुरुषाः । ज्ञातसाराः = विदितसत्त्वाः । अर्धरात्रम् च = मध्यरात्रिश्च । तिमिरगहनभीमम्—तिमिरेण = अन्धकारेण, गहनम् = नितान्तम्, भीमम् = भयङ्करम् । वर्तते । असिरपि = खड्गोऽपि । सुसहायः = अतिसहायकः । अन्तरात्मा च निश्चयः = कृतसङ्कल्पः । इह = एतस्मिन् काले । बहुविचारैः = नानाविधविचारैः । किम् = किं प्रयोजनम् ? मया = अविमारकेण । कः अर्थः = किं कार्यम् । दुष्करः = दुःसाध्यः । सर्वेषु साधनेषु सत्सु कार्ये शैथिल्यस्य नैव वर्तते नवाप्यवसर इति भावः । मालिनिवृत्तम् ॥२॥

प्रतिभयता = भयानकता ।

गर्भस्येति । अन्वयः—सर्वाः, प्रजाः, गर्भस्थाः, इव, निद्रया, मोहम्, अभ्युपगताः । सुखसुप्तनीरवजनाः, प्रासादाः, ध्यानम्, प्रविष्टाः, इव । सञ्चितेन,

---

मैं नगर से परिचित हूँ ही, रक्षकों का बल मुझे ज्ञात ही है, यह आधी रात का समय घने अन्धकार से काफी भयंकर हो रहा है । खड्ग भी मेरा सहायक है, अन्तरात्मा भी कृतसंकल्प है ही, तो फिर बहुत अधिक विचार करने की क्या आवश्यकता है ? कौन वैसा कार्य है जो मेरे लिए दुरूह हो सकता है ? ॥ २ ॥

अहो, अर्द्धरात्रि की यह भयानकता ! अभी—

सारी प्रजा गर्भस्थ शिशु की भाँति निद्रा से मुग्ध पड़ी है । सुखपूर्वक एवं निःशब्द सो रहे लोगों से युक्त ये महल मानो ध्यान-मग्न हैं । प्रगाढ

प्रग्रस्ता इव सञ्चितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगा
अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत् ।।३।।

अद्यैव खलु वर्तते कालरात्रिः ।

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ।।४।।

तमसा, प्रग्रस्ताः, इव, नगाः । सकलम्, जगत्, अन्तर्धानमिव, प्रच्छन्नरूपम्, उपयाति ।

सर्वाः प्रजाः = सर्वे जनाः । गर्भस्था इव = मातृकुक्षिस्थिता इव । निद्रया मोहमभ्युपगताः = चैतन्यविरहिताः सञ्जाताः । सुखसुप्तनीरवजनाः=सुखेन सुप्ताः अत एव नीरवाः = निःशब्दाः जनाः यत्र तादृशाः । प्रासादाः = राजभवनानि । ध्यानम् प्रविष्टा इव = चिन्तनशीला इव मौनमाश्रित्य स्थिताः । सञ्चितेन = राशीभूतेन । तमसा = अन्धकारेण । प्रग्रस्ताः = निगीर्णा इव । नगाः = वृक्षाः । सकलं जगत् = सम्पूर्णम् विश्वम् । अन्तर्धानमिव = तिरोधानमिव । प्रच्छन्नरूपम् = अदृष्टिगोचरताम् । उपयाति = प्राप्नोति । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ।।३।।

तिमिरमिवेति । अन्वयः—मार्गनद्यः, तिमिरमिव, वहन्ति, हर्म्यमालाः, पुलिननिभाः, प्रतिभान्ति । दश, दिशः, तमसि, निमग्नरूपाः, अयम्, अन्धकारः, प्लवतरणीयः, इव (जातः) ।

अन्धकार से ग्रस्त वृक्ष दिखाई नहीं दे रहे हैं अपितु स्पर्शमात्र से ही उनके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है और सम्पूर्ण जगत् इस प्रकार छिप गया है मानो अन्तर्धान को प्राप्त हो रहा हो ।।३।।

आज ही कालीरात है ।

मार्गरूपी नदियों में मानो अन्धकाररूपी जल प्रवाहित हो रहा है, भवन नदी-तट के समान प्रतीत हो रहे हैं, दशो दिशायें अन्धकार में डूब गई हैं और अन्धकार इतना घना है कि मानो इसे नाव से ही पार किया जा सकता है ।। ४ ।।

(परिक्रम्य कर्णं दत्वा) अये गान्धर्वध्वनिरिव श्रूयते। को नु खल्वयं सर्वकालसुखी पुरुषः कान्तया सह गान्धर्वमनुभवति व्यक्तं स्वयं वीणां वादयति। कुतः,

उच्चं हर्म्यं सन्निरुद्धाश्च जाला-
स्तन्त्रीनादः श्रूयते सानुनादम्।
बाह्यस्थानं व्यक्तमेवं प्रयोक्तुं
किं सामर्थ्यं स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम् ॥५॥

मार्गनद्यः = वर्त्मरूपिण्यः सरितः। तिमिरमिव = अन्धकारमिव। वहन्ति = प्रवहमानाः सन्ति। हर्म्यमालाः = धनवताम् वासगृहसमूहाः। पुलिननिभाः = तटसदृशाः। प्रतिभान्ति = प्रतीयन्ते। दश दिशः = पूर्वपश्चिमादि दश दिशाः। तमसि = अन्धकारे। निमग्नाः = संलीना जाताः। अयमन्धकारः = एतादृशो घनान्धकारः। प्लवतरणीय इव = नौकया तार्यं इव। प्रतिभातीति शेषः। पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥४॥

गान्धर्वध्वनिः—संगीतध्वनिः। सर्वकालसुखी = सततमानन्दवान्। गान्धर्वमनुभवति = गीतवाद्यादिभिः समुत्पन्नेनानन्देनात्मानम्प्रसादयति। व्यक्तम् = स्फुटम्।

उच्चं हर्म्यमिति। अन्वयः—हर्म्यम्, उच्चम्, जालाश्च, सन्निरुद्धाः, तन्त्रीनादः सानुनादम्, श्रूयते। बाह्यस्थानम्, व्यक्तम्। एवम्, प्रयोक्तुम्, स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम्, किम्, सामर्थ्यम् ?

हर्म्यम् = भवनम्। उच्चम् = उन्नतम्। जालाश्च = गवाक्षाश्च। सन्निरुद्धाः = पिहिताः। तंत्रीनादः = वीणाविनादः। सानुनादम् = प्रतिध्वनियुक्तम्। श्रवणस्पष्टं यथा स्यात् तथा श्रूयते = कर्णगोचरीभवति। बाह्यस्थानम् =

(चलकर, कान देकर) अहा, गीत की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। कौन यह सर्वकाल-सुखी पुरुष है जो कान्ता के साथ गीतादि का आनन्द ले रहा है। स्पष्ट है कि वह स्वयं वीणा बजा रहा है। क्योंकि—

भवन ऊँचा है, खिड़कियाँ बन्द हैं, वीणा का शब्द प्रतिध्वनि के साथ सुनाई पड़ रहा है, वीणा का बाह्य स्थान (तार आदि) बिल्कुल स्पष्ट हैं। वीणा को इस प्रकार बजाने में स्त्री के हाथ की अंगुलियों में सामर्थ्य कहाँ से आ सकती है ॥५॥

गीतं तु पुनः स्त्रियाः । इह हि,

तानस्तु मन्दो विशदप्रवृत्तो
जातश्च नादो मुखनासिकेन ।
स्थूलोऽपि हेतुः करतालनादः
सञ्जायते सद्वलयस्वनेन ॥ ६ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) हहह, अयमपरः कः क्रुद्धां कान्तां प्रसादयति । महान् खल्वस्यापराधः, येनेयमस्यां वेलायामपि न प्रसीदति । अथवा प्रसन्ना खल्वियं व्यपदेशमिच्छति । कुतः,

---

स्वरगततारत्वमान्दत्वादिकम् । व्यक्तम् = स्फुटम् । प्रतीयते इति शेषः । एवं प्रयोक्तुम् = इत्थं वीणां वादयितुम् । स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम् = नारीकरस्थाङ्गुलीनाम् । किं सामर्थ्यम् = कुतः क्षमत्वम् ? अर्थात् वीणाशब्देन ज्ञायते यत् केनचित्पुरुषेणैव भाव्यमिति । शालिनीछन्दः ॥५॥

तानस्त्विति । अन्वयः—विशदप्रवृत्तः, तानस्तु, मन्दः । नादश्च, मुखनासिकेन, जातः । स्थूलोऽपि, करतलनादः, सद्वलयस्वनेन, हेतुः, सञ्जायते ।

गानम् काचित्स्त्री करोति, तत्र हेतुत्वमुपपादयति—तानस्त्विति । विशदप्रवृत्तः = स्फुटमारब्धः । तानः = लयनिस्सारणविधिः । मन्दः = अनतिस्थूलः । नादश्च मुखनासिकेन जातः = अनुनासिकस्वरयुक्तो ध्वनिः सञ्जायते । स्थूलोऽपि = दीर्घीभूतोऽपि । करतलनादः = करतलध्वनिः । लोके 'ताली' इति प्रसिद्धम् । सद्वलयस्वनेन = करस्थकङ्कणनिनादेन । हेतुः = कारणम् । सञ्जायते = प्रतीयते । वलयध्वनिना निश्चीयते यद् गायनं काचित्स्त्र्येव करोतीति भावः ॥ ॥

क्रुद्धाम् = रुष्टाम् । कान्ताम् = प्रेयसीम् । प्रसादयति = अनुकूलयति ।

गीत स्त्री का ही है । इसमें—

तान मन्द किन्तु स्फुट है, अनुनासिक स्वर में आवाज निकल रही है, स्थूल करताल वलय शब्द के साथ हो रहा है, इसी से यह सिद्ध हो रहा है कि गीत किसी स्त्री के द्वारा गाया जा रहा है ॥ ६ ॥

(चलकर तथा देखकर) हः हः हः ! यह दूसरा कौन है जो अपनी रुष्ट प्रिया को मना रहा है । इसका अपराध निश्चय ही बड़ा है । इसीसे यह (नायिका) इस समय भी नहीं मान रही है । या यह प्रसन्न है किन्तु यह कोई बहाना ढूँढ़ रही है । क्यों कि—

बाष्पोपरुद्धजडगद्‌गदजिह्मकण्ठं
काऽहं तवेत्यसकलं प्रणयाद् वदन्ती ।
सद्भावतः प्रियवशं समुपागतापि
स्त्रीभावतः प्रवदति प्रतिकूलमेव ।। ७ ।।

को नु खल्वयं पक्षी भैरवस्वरः । आ उलूकः खल्वयम् । कथं हसितमनेन । उलूकस्वरश्रवणभीतया कान्तया परिष्वक्तः खल्वयं तपस्वी । सदृशं वयसः । किं परव्यापारवीक्षणम् । साधयामस्तावत् । (परिक्रम्य) को नु खल्वयमस्मिन् नगरापणालिन्दे सशङ्कितमतिस्निग्धां च सम्भाषते । अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी ।

वेलायाम् = समये । व्यपदेशम् = व्याजम् ।

बाष्पोपरुद्धेति । अन्वयः—बाष्पोपरुद्धजडगद्‌गदजिह्मकण्ठम्, का, अहम्, तव, इति, असकलम्, प्रणयात्, प्रवदन्ती, सद्भावतः, प्रियवशम्, समुपागता, अपि, स्त्रीभावतः, प्रतिकूलमेव, प्रवदति ।

बाष्पोपरुद्धजडगद्‌गदजिह्मकण्ठम्—बाष्पेण = अश्रुणा, उपरुद्धः = आकीर्णः, जडः, गद्‌गदः = श्लथवाक्प्रवृत्तिः, जिह्मः = कुटिलश्च कण्ठो यत्र तत्तथा । 'तवका अहम्' इत्यसकलम् = समस्तवर्णमनुच्चार्य । प्रणयात् = प्रेमहेतोः । वदन्ती = व्याहरन्ती । सद्भावतः = सौजन्यवशात् । प्रियवशं समुपागतापि = प्रियतमसमुपलभ्यापि प्रतिकूलमेव = विपरीतमेव । प्रवदति = भणति । वसन्त-तिलकं वृत्तम् ।। ७ ।।

भैरवस्वरः = भयानकशब्दकर्ता । परिष्वक्तः = आलिङ्गितः । सदृशं वयसः = अवस्थानुकूलम् । परव्यापारवीक्षणम् = अन्यदीयरहस्यावलोकनम् । साधयामः =

बाष्प के कारण उपरुद्ध, जड एवं गद्‌गद कण्ठ से वह "मैं तुम्हारी कौन लगती हूँ" ऐसा कह रही है । सद्भावनावश वह अपने प्रियतम के समीप होकर भी स्त्री-स्वभाव के कारण प्रतिकूल ही बोल रही है ।। ७ ।।

यह भयानक शब्द करने वाला कौन पक्षी है ! ओह, यह तो उल्लू है । यह हँस क्यों रहा है ? उल्लू की आवाज को सुनकर डरी हुई यह नायिका अपने प्रेमी का आलिङ्गन कर रही है । ओह, दूसरों के गुप्त कार्यों को नहीं देखना चाहिये । आगे चलें । (चलकर) यह कौन नगरापण के बहिर्भाग में सभय एवं स्निग्ध भाषण कर रहा है ? यह तपस्वी तो हमारे जैसा ही है ।

सम्पीडयते परिजनेन शनैर्वदेति
संविग्नवद् भवति भूषणनिस्वनेन ।
सङ्गं वदत्यसुखदं मदनाभिभूतः
सङ्केतमिच्छति च नेच्छति चाभिगन्तुम् ॥ ८ ॥

(परिक्रम्य) अये, ज्योत्स्ना । नैषा ज्योत्स्ना, उभयपङ्क्तिगतानां प्रासादानां गवाक्षान्तरगता दीपप्रभैषा । इह खलु प्रयत्नादात्मा रक्षितव्यः । अये अयं तु तस्करः । एष हि,

---

गच्छामः । नगरापणालिन्दे = नगरापणस्य बाह्यभागे । सशङ्कितम् = सभयम् । अतिस्निग्धञ्च = अतिस्नेहयुक्तम् । अस्मत्सब्रह्मचारी = अस्मत्सदृशः ।

सम्पीडयत इति । अन्वयः = परिजनेन, शनैः, वदेति, सम्पीडयते, भूषणनिस्वनेन, संविग्नवद्, भवति । सङ्गम्, असुखदम्, वदति । मदनाभिभूतः, सङ्केतम्, इच्छति, च, अभिगन्तुम्, न, इच्छति ।

परिजनेन = आत्मीयजनेन । शनैर्वदेति = उच्चैःस्वरेण यथा न स्यात्तथा ब्रूहीति । सम्पीडयते = बाध्यते । भूषणनिस्वनेन = कामिनिशरीरस्थालङ्कारशब्देन । संविग्नवत् = उद्विग्न इव । भवति = जायते । सङ्गम् = प्रियासङ्गम् असुखदम् = अकल्याणकारकम् । वदति = अभिधत्ते । मदनाभिभूतः = कामाविष्टः । सङ्केतम् = प्रियासङ्गमायेप्सितम् स्थानविशेषम् । इच्छति = कामयते । किन्तु अभिगन्तुम् = तत्र सङ्केतस्थलं गन्तुम् । नेच्छति = नोत्सहते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८ ॥

ज्योत्स्ना = चन्द्रिका । दीपप्रभैषा = अयम् दीपकालोकः । तस्करः = चोरः ।

परिजन इसे धीरे-धीरे बोलने को बाध्य कर रहे हैं । यह आभूषणों की झङ्कृति को सुनकर उद्विग्न हो जाता है । यह सङ्गम को सुखप्रद नहीं बताता फिर भी कामाविष्ट होने पर यह मिलन-स्थल की इच्छा रखता है किन्तु वहाँ तक जाना नहीं चाह रहा है ॥ ८ ॥

(चलकर) अरे, यह चाँदनी है । नहीं, नहीं, यह चाँदनी नहीं है । यह तो दोनों पंक्तियों में वर्त्तमान महलों की खिड़कियों से छनकर आ रही दीप-प्रभा है । यहाँ प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये । अरे, यह तो चोर है । क्यों कि यह—

दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः
परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः ।
द्रुतगतिरपि दीपिकावलोकी
भवति च पादनिपातनादभीरुः ॥ ९ ॥

हन्त, परिहरिष्याम्येनम् । (एकान्ते स्थितः) गतो नृशंसः । वयमपि तावत् प्रतिष्ठामहे । (परिक्रम्य) अये, रक्षिणः खल्वेते । किन्नु खल्विदानीं करिष्ये । भवतु दृष्टम् । इमां शृङ्गाटकस्थां विटसभां प्रविशामि । (विलङ्घ्य स्थित्वा)

दृढपरिकरेति । अन्वयः—दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः, परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः, द्रुतगतिः, अपि, दीपिकावलोकी, पादनिपातनादभीरुः, च भवति ।

दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः=दृढपरिकरस्य बन्धनेन हृष्टम्=प्रसन्नं,चित्तम्=हृदयम् यस्य तादृशः । परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः परकीयगृहवार्तालापे संलग्ना दृष्टिश्चेष्टा च यस्य तादृशः । अन्यस्य गृहे का वार्ता भवति इति द्रष्टुं यः सततं चेष्टते स इति भावः । द्रुतगतिरपि=शीघ्रगामी अपि । दीपिकावलोकी=प्रकाशद्रष्टा । पादनिपातनात्=चरणन्यासात् । अभीरुः=निर्भयः । भवति=जायते । एभिर्लक्षणैः प्रतीयते यदनेन नूनमेव चौरेण भाव्यमिति तात्पर्यम् ॥ ९ ॥

परिहरिष्यामि=त्यक्ष्यामि । नृशंसः=क्रूरवृत्तिः । प्रतिष्ठामहे=प्रस्थानं कुर्मः । शृङ्गाटकस्थाम् विटसभाम्=चतुष्पथस्थितम् विटोपवेशनस्थलम् ।

मजबूत पगड़ी बाँध लेने से इसका चित्त प्रसन्न लग रहा है । दूसरों के घर की बात सुनने-देखने में इसकी दृष्टि लगी रहती है । शीघ्र चलता है, फिर भी दीपक देखकर भी भय-रहित होकर पाँव बढ़ाये जा रहा है ॥ ९ ॥

अच्छा, इसे छोड़ दूँगा । (एकान्त में खड़ा हो जाता है) चला गया दुष्ट । मैं भी अब जाता हूँ । (चलकर) अरे, ये तो रक्षक लोग हैं । अब क्या करूँ ? खैर, देख लिया । इसी चौराहे की विटसभा में प्रवेश करता हूँ । (लाँघकर, खड़ा होकर)

आरक्षिणां तु विमुखं मितविक्रमाणां
मामभ्युपेत्य हसतीव ममैष खड्गः ।
नैते तु रक्षिपुरुषा मम भारभूता
मत्कार्यसाधनपरोऽहमिह प्रविष्टः ॥ १० ॥

गता रक्षिणः । के रक्षन्ति रक्षितात्मानम् ।

अबहुपुरुषपक्षमेत्य शौर्यं
निशि विचरन्ति सरागलोभमोहाः ।
इह तु पुरुषकारसारसाक्षी
बहुविषमश्च सुखश्च रात्रिचारः ॥ ११ ॥

आरक्षिणामिति । अन्वयः—मितविक्रमाणाम्, आरक्षिणाम्, विमुखम्, माम्, अभ्युपेत्य, एष, मम, खड्गः, हसति, इव । तु, एते, रक्षिपुरुषाः. मम, भारभूताः न, अहम्, इह मत्कार्यसाधनपरः, प्रविष्टः ।

मितविक्रमाणाम् = परिमितबलशालिनाम् । आरक्षिणाम् = रक्षापुरुषाणाम् । विमुखम् = पराङ्मुखम् । माम् = अविमारकम् । अभ्युपेत्य = ज्ञात्वा । एष मम खड्गः = मत्करस्थोऽयमसिः । हसति इव = ममोपहासं करोति इव । तु = किन्तु । एते रक्षिपुरुषाः = आरक्षकाः । मम भारभूताः = मम मार्गे विघ्नस्वरूपाः न । अहमिह = अहमत्र । मत्कार्यसाधनपरः = स्वाभिलषितं पूरयितुं सयत्नः सन् । प्रविष्टः = समायातः । रक्षापुरुषैः सह विरोधस्य नैव प्रसरति कश्चनावसरः । अतो निर्विघ्नमेव स्वकर्म्यम् साधनीयमिति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १० ॥

रक्षितात्मानम् = आत्मरक्षणक्षमम् ।

अबहुपुरुष इति । अन्वयः—अबहुपुरुषपक्षम्, शौर्यम्, एत्य, सरागमोहलोभाः, निशि, विचरन्ति । इह, तु, पुरुषकारसारसाक्षी, रात्रिचारः, बहुविषमः, सुखश्च ।

साधारण पराक्रम वाले रक्षकों से विमुख पाकर मेरा यह खड्ग मुझ पर हँस रहा है, किन्तु ये रक्षक मेरे मार्ग के विघ्न तो नहीं हैं और मैं तो अपना कार्य सिद्ध करने के लिए यहाँ आया हूँ ॥ १० ॥

रक्षक चले गये । जो स्वयं अपनी रक्षा करते हैं उनकी रक्षा कौन करेगा ?

थोड़े व्यक्तियों द्वारा प्राप्य पराक्रम को पाकर राग, लोभ एवं मोह से

एतद् राजकुलम् । अहो स्थिरत्वमुच्छ्रितत्वं प्राकारस्य । इह खलु प्रयुज्यते पुरुषाणां कक्ष्याबन्धः । अथवा प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः, यदि स्थिराः कपिशीर्षकाः । इह स्थित्वा रज्जुं प्रक्षिपामि । नमः प्रजापतये । नमः सर्वसिद्धेभ्यः । प्रसीदन्तु बलिशम्बरमहाकालाः । विजृम्भतां रात्रिः । वर्धतां निद्रा । अनुमन्यतां पन्था । लयं गताः सर्वविघ्ना भवन्तु । हताः परिपन्थिका भवन्तु । जयतु भगवती कात्यायनी । (रज्जुं क्षिप्त्वा) हन्त, बद्धः कर्कटकरज्ज्वा कपिशीर्षकः । अहो भवित-

---

अबहुपुरुषपक्षम् = स्वल्पजनप्राप्यम् । शौर्यम् = पराक्रमम् । एत्य = उपलभ्य । सरागलोभमोहाः = रागेण, लोभेन, मोहेन च समन्विताः । जनाः । निशि = रात्रौ । विचरन्ति = भ्रमन्ति । इह = राजभवने तु । पुरुषकारसारसाक्षी = पौरुषस्य प्रमाणयिता । रात्रिचारः = रात्रिभ्रमणम् । बहुविषमः = अतिकठिनः । सुखश्च = सुगमश्च, अस्तीति शेषः ॥ ११ ॥

उच्छ्रितत्वम् = उत्तुङ्गत्वम् । प्राकारस्य = सालस्य । अभितः रक्षणार्थं यष्टिमाकण्टकादिरचितवेष्टनं प्राकारः । तथा हि—'प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः । कक्ष्यबन्धः = परिकरबन्धनम् । कपिशीर्षकाः = कपिमस्तकतुल्यम् निर्मितमुच्चस्थानम् । विजृम्भताम् = दीर्घीभवतु । अनुमन्यताम् = अनुज्ञायताम् । परिपन्थिकाः = अरयः । 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः । द्विड्विपक्षाऽ-

---

युक्त व्यक्ति रात्रि में विचरण करते रहते हैं, किन्तु राजमहल में विचरण करना निःसन्देह बहुत ही कष्टसाध्य, सुखकर एवं असाधारण पुरुषार्थ को प्रकट करने वाला होता है ॥ ११ ॥

यह राजमहल है । अरे, इस प्राकार की स्थिरता और ऊँचाई तो देखो ! यहीं पुरुषों को परिकर बाँधना पड़ता है । अथवा मैं तो प्रविष्ट हो ही गया हूँ । यदि ये कंगूरे मजबूत हैं तो इन्हीं पर रस्सी फेंकता हूँ । प्रजापति को प्रणाम है । सभी सिद्धों को नमस्कार । बलिशम्बर तथा महाकाल मुझ पर प्रसन्न हों । रात बढ़ जाय, नींद गाढ़ी हो जाय । भगवती कात्यायनी की जय हो । (रस्सी फेंककर) वाह, इस केकड़े के समान रस्सी से कंगूरा बँध गया । अहा, भवितव्यता का ही क्या प्रभाव है । एक ही बार फेंकने से रस्सी-

व्यस्य प्रभावः । एकेनैव क्षेपेण सुसंसक्तां रज्जुं कार्यसिद्धिमिव पश्यामि । अहो बलवान् हि भगवान् प्रजापतिः । कुतः,

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥ १२ ॥

भवतु रज्जुमवलम्ब्यारोहामि । (आरुह्य दृष्ट्वा) अहो राजकुलस्य श्रीः ।

हिंताऽमित्रदस्युशात्रवशत्रवः । अभिघातिपराऽराति प्रत्यर्थि परिपन्थिनः' चामरः ।

यत्ने कृते इति । अन्वयः—यत्ने, कृते, यदि, न सिद्ध्यति, कः, अत्र, दोषः ? कः, वा, न सिद्ध्यति, मम, इति, कार्यम्, करोति । इह, शुभैः, यत्नैः, नृणाम्, पुरुषता, भवति । कार्यसिद्धिः, दैवम्, विधानम्, अनुगच्छति ।

यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः = सामर्थ्यानुसारं प्रयासे कृतेऽपि यदि साफल्यन्नैव प्राप्तम् तर्हि प्रयत्नकर्त्तुस्तत्स्खलनन्नैवावगन्तव्यमिति भावः । को वा = एतादृशः कः । न सिद्ध्यति ममेति = मम कार्यं फलं न स्यादिति मत्वा । करोति कार्यम् = प्रयत्नं विधत्ते । सर्वे जनाः साफल्याशयैव यत्नमाचरन्तीत्याशयः । इह = अस्मिन् संसारे । शुभैः यत्नैः = अनुकूलप्रयासैरेव । नृणाम् = पुरुषाणाम् । पुरुषता = पौरुषम् । भवति = सिद्ध्यति । कार्यसिद्धिः = कार्यसाफल्यम् । दैवम् विधानमनुगच्छति = भाग्याधीनतामनुसरति ॥ १२ ॥

श्रीः = लक्ष्मीः

फँस गई । इससे लगता है कि कार्य में सफलता जरूर मिलेगी । अहा, भगवान् प्रजापति बलवान् हैं । क्योंकि—

यत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो इसमें किसका दोष है ? कौन नहीं चाहता कि मेरा कार्य सिद्ध हो । शुभ प्रयत्नों से ही पुरुषों का पौरुष सधता है । काम की सफलता तो भाग्य पर निर्भर रहती है ॥ १२ ॥

अच्छा, रस्सी पकड़कर चढ़ता हूँ । (चढ़कर, देखकर) अहा, राजकुल की कैसी शोभा है !

विपुलमपि मितोपमं विभागा-
न्निबिडमिवाभ्युदितं क्रमोच्छ्रयेण ।
नृपभवनमिदं सहर्म्यमालं
जिगमिषतीव नभो वसुन्धरायाः ॥ १३ ॥

इह तु न स्थातव्यम् । अट्टालप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्ना भवन्ति । भवतु, अनयैव रज्ज्वावतरिष्यामि । (अवतीर्य) क्व नु खल्विदानीं रज्जु प्रच्छादयामि (विचिन्त्य) भवतु दृष्टम् । अस्यां हस्तिशालायां पाशं क्षिप्त्वा क्षिपामि । (प्रक्षिपति । परिक्रम्य)

विपुलमपीति । अन्वयः—विपुलमपि, विभागात्, मितोपमम्, क्रमोच्छ्रयेण, निबिडमिव, अभ्युदितम् । इदम्, सहर्म्यमालम्, नृपभवनम्, वसुन्धरायाः, नभः, जिगमिषति, इव ।

विपुलमपि = विशालमपि । विभागात् = तत्तद्विभागवशात् । मितोपमम् = परिमितमिव । क्रमोच्छ्रयेण = क्रमिकोऽन्नयनवशात् । निबिडमिव = सघनमिव । अभ्युदितम् = प्रतीयते इति भावः । इदं सहर्म्यमालम् = एतत् सप्रासादपरम्परम् । नृपभवनम् = राजप्रासादः । वसुन्धरायाः = पृथिव्याः । नभः = अन्तरिक्षम् । जिगमिषतीव = गन्तुमिच्छति इव । तादृशमुन्नतं राजभवनं यदवलोकनेन प्रतीयते यत्पृथ्वीं त्यक्त्वाऽन्तरिक्षं गन्तुमुत्सहते एतदिति भावः ॥ १३ ॥

अट्टालम् = गृहस्योपरितनो भागः । प्रतोली = रथ्या । 'रथ्याप्रतोली विशिखे' त्यमरः । इन्द्रपथः = मुख्यमार्गम् । प्रच्छादयामि = निगूहयामि ।

विशाल होने पर भी विभक्त होने के कारण यह राजकुल नपा-तुला-सा लग रहा है । क्रमशः ऊँचे उठे रहने के कारण घना-सा लग रहा है । प्रासाद परम्परा से युक्त यह नृप-भवन मानो पृथ्वी से उठकर आकाश की ओर जा रहा हो, ऐसा ही लगता है ॥ १३ ॥

यहाँ नहीं ठहरना चाहिये । अटारी, गली तथा चौराहे से ही सभी विघ्न आते हैं । अच्छा, इसी रस्सी से नीचे उतरूँगा । (उतरकर) अब इस रस्सी को कहाँ छिपाऊँ ? (सोचकर) खैर, देख लिया । इस हस्तिशाला में गाँठ खोलकर रख देता हूँ । (फेंकता है । चलकर)

अये तन्त्रीनादो युवतिकलगीतध्वनियुतः
अन्यतो यास्यामि ।
अये गन्धामोदो गजवरमदोद्बोधितपटुः ।
मुहूर्तं स्थित्वा यास्यामि ।
प्रभैषा दीपानामिह तु वितता रक्षिपुरुषाः
का गतिः ।
चिराद् रात्रौ शान्तं सह कमलषण्डैर्नृपगृहम् ।। १४ ।।

यास्यामि । एष तयोक्तो मार्गः । अयं मन्दाकिनी । असौ दारुपर्वतकः । इयमुपस्थानसभा । अये अयं कन्यापुरप्रासादः । एष तु

अये तन्त्रीति । अन्वयः—अये, युवतिकलगीतध्वनियुतः, तन्त्रीनादः, अयम्, गजवरमदोद्बोधितपटुः, गन्धामोदः, एषा, दीपानाम्, प्रभा, इह, तु, रक्षिपुरुषाः, वितताः, रात्रौ, चिरात्, नृपगृहम्, कमलषण्डैः, सह, शान्तम् ।

अये = आश्चर्यम् । युवतिकलगीतध्वनियुक्तः = कामिनिकण्ठनिर्गतमधुरगीतध्वनिसमन्वितः । तन्त्रीनादः = वीणाशब्दः । श्रूयते इति शेषः । गजवरमदोद्बोधितपटुः—गजवरस्य = हस्तिश्रेष्ठस्य, मदेन = दानवारिणा, उद्बोधिः पटुश्च । गन्धामोदः = सुगन्धः । व्याप्नोतीति शेषः । एषा दीपानाम् प्रभा = प्रकाशः । इह तु = अत्र हि । रक्षिपुरुषाः = रक्षकाः । वितताः = चतुर्षु दिक्षु इतस्ततः प्रसृता इति भावः । रात्रौ = निशायाम् । चिरात् = बहुकालानन्तरम् । नृपगृहम् = राजभवनम् । कमलषण्डैः सह = कुमुदवनैः सह । शान्तम् = निर्हृतम् । जातमिति शेषः ।। १४ ।।

मन्दाकिनी = कृत्रिमा नदी । दारुपर्वतकः = कृत्रिमगिरिः । उपस्थानसभा =

अरे ! यह युवतिकण्ठ-गीत से युक्त वीणा की आवाज है, दूसरी ओर जाऊँगा । हाथियों के मदजल से उत्पन्न यह सुरभि फैल रही है । थोड़ा रुक कर जाऊँगा । यह दीपकों का प्रकाश है, यहाँ रक्षक लोग फैले हुए हैं । बहुत रात गये यह राजकुल कमलवनों के साथ ही शान्त हो पाता है ।।१४।।

जाऊँगा । यही तो उसका बताया हुआ मार्ग है । यही मन्दाकिनी है । यही दारुपर्वत है । यही उपस्थान सभा है । ओहो, यही कन्यान्तःपुर का

काष्ठकर्मबहुलतया समासन्नजालत्वाच्च सुखमारोढुम् । अथवा दुरारोहश्चेत्,

कान्तासमीपमुपगम्य मनोभिलाषा-
द्धर्म्याधिरोहणमतेर्मम का विशङ्का ।
संसक्तनालगतकण्टकभीतचेता-
स्तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणी जहाति ॥ १५ ॥

भवत्वारोहामि । (आरुह्य) इदं तयोक्तं जालयन्त्रम् । (विघाट्य प्रविश्यावलोक्य च) साधु कुन्तिभोज ! साधु । उत्प्रहसित इव भवनेनानेन स्वर्गः । तथाहि,

---

यत्र प्रजाः राज्ञा सह साक्षात्कुर्वन्ति तद् गृहम् । काष्ठकर्मबहुलतया = नानाविधकाष्ठनिर्मितगवाक्षादियुक्ततया । समासन्नजालत्वात् = समीपस्थगवाक्षत्वात् । दुरारोहः = कष्टेनारोहणम् ।

कान्तासमीपमिति । अन्वयः—मनोऽभिलाषात्, कान्तासमीपम्, उपगम्य, हर्म्याधिरोहणमतेः, मम, का, विशङ्का ? संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः, कः, तृषार्दितः, इह, पुष्करिणीम्, जहाति ।

मनोभिलाषात् = प्रेमपूर्णमनोरथात् । कान्तासमीपम् = प्रियतमायाः निकटम् । उपगम्य = समागत्य । हर्म्याधिरोहणमतेः = प्रासादारोहणात् । मम का विशङ्का = को वितर्कः ? संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः = नालगतेन कण्टकेन, भीतम् = भयम् प्रापितम्, चेतः = हृदयम् यस्य तादृशः कः । तृष्णार्दितः =

प्रासाद है । इसमें लकड़ी का अधिक काम किया गया है और खिड़की भी समीप होने के कारण इस पर आसानी से चढ़ा जा सकता है । अथवा यदि चढ़ना कठिन भी होगा, तो भी—

स्नेहाधिक्यवश प्रियतमा के पास आकर प्रासाद पर चढ़ने में मुझे कैसी आशङ्का ? नाल में पड़े हुए कण्टक के डर से कौन व्यक्ति कमलिनी को छोड़ देता है ॥ १५ ॥

अच्छा, चढ़ता हूँ (चढ़कर) यही उसके द्वारा बताया गया जालयन्त्र है । (खोलकर, प्रवेशकर एवं देखकर) वाह, कुन्तिभोज, वाह ! तुम्हारे इस महल ने तो स्वर्ग को भी नीचा दिखा दिया है । जैसे—

हंसाः स्वपन्ति मणिरत्नशिलातलेषु
वैडूर्यमौक्तिककृताः सिकताप्रतानाः ।
स्तम्भाः प्रवालविहिताः किमिह प्रलापै-
र्मन्दीभवन्ति मणिदीपहताः प्रदीपाः ॥ १६ ॥

अलं रौद्रवेषेण । (चोरवेषमपनीय कक्ष्याबन्धं विमुञ्चति)

नलिनिका—को णु खु वुत्तन्तो भट्टिदारअस्स । भट्टिदारिआ वि अवत्थादुल्लहं णिद्दं लभदि अज्ज उ मम पिओ आअच्छदि त्ति सुदमत्तेण एव । [को नु खलु वृत्तान्तो भर्तृदारकस्य । भर्तृदारिकाप्यवस्थादुर्लभां निद्रां लभते अद्य तु मम प्रिय आगच्छतीति श्रुतमात्रेणैव ।]

तृष्णाकुलः । पुष्करिणीम् = कमलिनीम् । जहाति = मुञ्चति । यथा नालगतकण्टकभयेन पुष्करिण्यास्त्यागो नोचितस्तथैव प्रियासमीपमागत्य तस्याः परिहारोऽपि सर्वथाऽनुचित एवेति भावः ॥ १५ ॥

उत्प्रहसितः = न्यूनीकृतः ।

हंसा इति । अन्वयः—मणिरत्नशिलातलेषु, हंसाः, स्वपन्ति, सिकताप्रतानाः, वैडूर्यमौक्तिककृताः, स्तम्भाः, प्रवालविहिताः, किम् ? मणिदीपहताः प्रदीपाः मन्दीभवन्ति ।

मणिरत्नशिलातलेषु = मणिरत्नमयप्रस्तरखण्डेषु । हंसाः = हंसाभिधाः पक्षिणः । स्वपन्ति = निद्रासुखमालभन्ते । सिकताप्रतानाः = बालुकाराशयः । वैडूर्यमौक्तिककृताः = वैडूर्याभिधैर्मणिभिः मौक्तिकैश्च निर्मिताः । सन्तीति शेषः । स्तम्भाः, प्रवालविहिताः = प्रवालनिर्मिताः । इह = अत्र । प्रलापैः = निरर्थकजल्पनैः । किम् = किम् फलम् ? प्रदीपाः मन्दीभवन्ति = हतप्रकाशाः जायन्ते॥ १६॥

मणिरत्नमय शिलाखण्डों पर हंस शयन कर रहे हैं, बालुकाराशि वैडूर्य तथा मोती से बनी है, खंभे मूंगे के बने हैं, अधिक क्या, प्रदीप भी मणिदीप से पराजित होकर मन्द पड़ रहे हैं ॥ १६ ॥

यह भयानक वेश अब बेकार है । (चोर-वेष छोड़कर परिकर-बन्धन खोलता है)

नलिनिका—राजकुमार का क्या समाचार है ? राजकुमारी भी वियोगावस्था में दुर्लभ गाढ़ी नींद से 'मेरे प्रिय आ रहे हैं' यह सुनकर ही सो रही हैं ।

अविमारकः—(श्रुत्वा सहसोपसृत्य) भवति ! अयं मे वृत्तान्तः ।

नलिनिका—(विलोक्य सहर्षम्) साअदं भट्टिदारअस्स । [स्वागतं भर्तृदारकस्य ।]

अविमारकः—(दृष्ट्वा सानन्दम्) इयमियं सा । यत्र मम

दृष्टिर्न तृप्यति परिष्वजतीव साङ्गं
बुद्धिस्त्वरां व्रजति बोधयतीव सुप्ताम् ।
रागोऽभिचोदयति सादयतीव चाङ्गं
हर्षात् प्रसीदति विमुह्यति चान्तरात्मा ।। १७ ।।

भर्तृदारकस्य = राजकुमारस्याविमारकस्य । भर्तृदारिका = कुरङ्गी । अवस्थादुर्लभाम् = वियोगावस्थायाम् दुष्प्रापाम्, निद्रामिति तात्पर्यम् । श्रुतमात्रेणैव = श्रवणमात्रेणैव ।

दृष्टिर्नेति । अन्वयः—दृष्टिः, न तृप्यति, सा, अङ्गम्, परिष्वजति, इव, बुद्धिः, त्वराम्, व्रजति, सुप्ताम्, बोधयति, इव, रागः, अभिचोदयति, अङ्गम्, च सादयति, इव, अन्तरात्मा, च, हर्षात्, प्रसीदति, विमुह्यति च ।

दृष्टिः = मम नयनम् । न तृप्यति = न तुष्यति । सा = दृष्टिः । अङ्गम् = कान्ताशरीरावयवम् । परिष्वजति = आलिङ्गति इव । बुद्धिः त्वरां व्रजति = मतिः शीघ्रकारितां समासादयति । सुप्ताम् = निद्रामग्नाम् प्रियाम् । बोधयति = जागरयति इव । रागः = आसक्तिः । अभिचोदयति = प्रेरयति । अङ्गम् = मदीयशरीरावयवम् । सादयति = क्लेशयति । अन्तरात्मा च हर्षात् प्रसीदति = प्रसन्नो भवति । विमुह्यति च = मोहमाप्नोति च ।। १७ ।।

अविमारक—(सुनकर सहसा नजदीक जाकर) देवि ! यही मेरा समाचार है ।

नलिनिका—(देखकर) राजकुमार का स्वागत है ।

अविमारक—(देखकर आनन्द पूर्वक) यही तो वह है जिसमें—

मेरी नजर तृप्त नहीं हो पा रही है, अङ्गों का आलिङ्गन-सा कर रही है, बुद्धि जल्दीबाजी कर रही है और सोती हुई प्रिया को जगा-सी रही है, उत्कण्ठा प्रेरित कर रही है, अङ्ग सन्न हो रहे हैं, अन्तरात्मा हर्ष के कारण प्रसन्न भी हो रहा है और मुग्ध भी ।। १७ ।।

नलिनिका—(आत्मगतम्) एसो खु भअवं कामदेवो ओघो विअ उभअपक्खं पीडेइ । (प्रकाशम्) भट्टिदारअ ! अलङ्करीअदु सअणअलं । [एष खलु भगवान् कामदेव ओघ इवोभयपक्षं पीडयति । भर्तृदारक ! अलंक्रियतां शयनतलम् ।]

अविमारक.—बाढम् । (उपविशति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! किं ओबोधेमि भट्टिदारिअं [भर्तृदारक ! किमवबोधयामि भर्तृदारिकम् ।]

अविमारकः—भद्रे ! अलमलं बालचापलेन । पश्य,

अहं द्विनेत्रो न सहस्रनेत्रो
मतिश्च मूढा सुचिराभिलाषात् ।
कामार्णवस्याद्य तु दृष्टिपारं
चेक्रीडयतां मे सुखमक्षियुग्मम् ।। १८ ।।

ओघ इव = जलमिव । उभयपक्षम = तटयुगम् । अवबोधयामि = जागरयामि । बालचापलेन = बालोचितचाञ्चल्येन ।

अहमिति । अन्वयः—अहम्, द्विनेत्रः, सहस्रनेत्रः, न, सुचिराभिलाषात्, मतिः, मूढा, अद्य, कामार्णवस्य, तु, दृष्टिपारम्, मे, अक्षियुग्मम्, सुखम्, चेक्रीड्यताम् ।

अहम् = अविमारकः । द्विनेत्रः = द्विनयनवान् । सहस्रनेत्रः न = सहस्रनेत्रयुक्तो न । सुचिराभिलाषान् = चिरप्रतीक्षितमनोरथवशात् । मतिः = मम बुद्धिः ।

नलिनिका—(स्वगत) यह भगवान् कामदेव जलराशि की भाँति दोनों ही तटों (पक्षों) को पीड़ित कर रहे हैं । राजकुमार, इस शयन-तल को सुशोभित करें ।

अविमारक—ठीक है । (बैठता है)

नलिनिका—राजकुमार ! क्या मैं राजकुमारी को जगा दूं ?

अविमारक—भद्रे ! लड़कपन मत करो । देखो—

मेरे पास दो ही आँखें हैं, हजार आँखों वाला मैं नहीं हूँ । चिरकाल की अभिलाषा के कारण मेरी बुद्धि मूढ हो रही है । काम-समुद्र को पारकर आज मेरी आँखें सुखपूर्वक जितनी चाहे क्रीडा कर लें ।। १८ ।।

नलिनिका—जाणामि जाणामि भट्टिदारिअं अन्तरेण भट्टिदारअस्स परिस्समं। [जानामि जानामि भर्तृदारिकामन्तरेण भर्तृदारकस्य परिश्रमम्।]

अविमारकः—अद्य सफलो मे परिश्रमः।

कुरङ्गी—(बुद्ध्वा) हला! किं णिरणुकोसेण भणिअं [हला! किं निरनुक्रोशेन भणितम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए! भणिदं खु मए पुढमं। [भर्तृदारिके! भणितं खलु मया प्रथमम्]

अविमारकः-प्राप्तं खलु मया जीवितस्य फलं,येनेयमीदृशं मोहं गता।

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) हं परिब्भट्ठम्हि। (प्रकाशम्) हला! किं मए भणिदं। [हं परिभ्रष्टास्मि! किं मया भणितम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए! किञ्चि ण मन्तिदं [भर्तृदारिके! किञ्चिन्न मन्त्रितम्।]

अविमारकः—अयमस्या मोहविस्तरेण द्वितीयो मे मोहः।

मूढा = कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य-विवेचनाक्षमा। अद्य = इदानीम्। कामार्णवस्य = कामसागरस्य। दृष्टिपारम् = अन्तं प्राप्तवन्। मे = मम। अक्षियुगमम् = नयनद्वयम्। सुखम् चेक्रीड्यताम् = निर्विघ्नं क्रीडां करोतु॥ १८॥

निरनुक्रोशेन = निष्ठुरेण। परिष्वजस्व = आलिङ्गय।

नलिनिका—जानती हूँ, जानती हूँ, राजकुमार के बिना आपको कैसा परिश्रम हो रहा है।

अविमारक—आज मेरा परिश्रम सफल हुआ।

कुरङ्गी—(जागकर) अरे, उस निर्दयी ने क्या कहा?

नलिनिका—राजकुमारी! वही तो मैंने पहले ही कह दिया था।

अविमारक—मैं जीवन के फल को पा गया जब कि मेरे लिए यह मूर्च्छित हो रही है।

कुरङ्गी—(स्वगत) मैं भटक गई थी! (प्रकट) सखि! मैंने क्या कहा था?

नलिनिका—राजकुमारी, आपने कुछ भी तो नहीं कहा था।

अविमारक—इसके मोह के विचार से मुझे दूसरा मोह हो रहा है।

कुरङ्गी—णलिणिए ! चिरं खु उववविट्ठा । का वेला । [नलिनिके ! चिरं खलूपविष्टा । का वेला ।]

नलिनिका—संवुत्तं अद्धरत्तं । [संवृत्तोऽर्धरात्रः ।]

कुरङ्गी—तेण हि परिस्सन्तासि । एहि परिस्सजेहि मं । [तेन हि परिश्रान्तासि । एहि परिष्वजस्व माम् ।]

नलिनिका—(अपवार्य) अहं संवाहेमि । भट्टिदारअ ! परिस्सजेहि भट्टिदारिअं । [अहं संवाहयामि । भर्तृदारक ! परिष्वजस्व भर्तृदारिकाम् ।]

अविमारकः—(सहर्षम्) बाढम् । एवमेव त्वमपि प्रियशतानि शृणु ।

कुरङ्गी—अलं अदिसिणेहेण । एहि दाव । [अलमतिस्नेहेन । एहि तावत् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि । [भर्तृदारिके ! इयमस्मि ।]

कुरङ्गी—(बलादाकृष्याविमारकमालिङ्गति) हं को दाणिं मं संवाहेदि । [हं क इदानीं मां संवाहयति ।]

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ । [एवमिव ।]

कुरङ्गी—(ससम्भ्रमम्) हा हीणं चारित्तं । भीदम्हि । [हा हीनं चारित्रम् । भीतास्मि ।]

कुरङ्गी—नलिनिके, मैं बहुत देर से बैठी हूँ । क्या समय हुआ है ।

नलिनिका—आधी रात हो रही है ।

कुरङ्गी—इसीलिए थक गई हूँ । आ, मुझसे लिपट जा ।

नलिनिका—(छिपकर) मैं पाँव दबाती हूँ ! राजकुमार ! आप राजकुमारी को आलिङ्गित करें ।

अविमारक—(सहर्ष) अच्छी बात है । इसी प्रकार तुम भी प्रिय कथायें सुनती रहो ।

कुरङ्गी—अधिक स्नेह की आवश्यकता नहीं । शीघ्र आओ ।

नलिनिका—राजकुमारी, यहीं तो हूँ ।

कुरङ्गी—(बलपूर्वक अविमारक का आलिङ्गन करती है) अरे, इस समय मेरे पाँव को कौन दबा रहा है ?

नलिनिका—(कान में) यह बात है ।

कुरङ्गी—(घबड़ाकर) हाय, मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया । मैं डरती हूँ ।

अविमारकः—

न त्वं प्रिये ! मम नवासि मनोभियोगात्
किं कम्पसे पवनवेगहता लतेव ।
भद्रे ! भयं त्यज कुरुष्व मयि प्रसादं
किं वा प्रलप्य बहुधा शरणागतोऽस्मि ।। १९ ।।

(कुरङ्गी सलज्जं नलिनिकां विलोकयति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! उट्ठेहि उट्ठेहि । भट्टिदारिआ भणादि । उट्ठेहि किल । [भर्तृदारक ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । भर्तृदारिका भणति । उत्तिष्ठ किल ।]

अविमारकः—बाढम् । (उत्तिष्ठति)

(प्रविश्य)

न त्वं प्रिये इति । अन्वयः—प्रिये ! त्वम्, मनोभियोगात्, मम, न, वा, न, असि । पवनवेगहता, लता, इव, किम्, कम्पसे ? भद्रे ! भयम्, त्यज, मयि, प्रसादम्, कुरुष्व, किं वा, बहुधा, प्रलप्य, शरणागतः, अस्मि ।

प्रिये=हे प्रियतमे ! त्वम् मनोभियोगात्=चिरसंकल्पितप्रणयवशात् । मम न वा नासि=मद्धेतोरज्ञाता न वर्तसे । पवनवेगहता=वायुवेगप्रताडिता । लतेव=लतिकेव तन्वो त्वम् । किम् कम्पसे=कथम् वेपसे ? अयि भद्रे ! भयम्=भीतिम् । त्यज=मुञ्च । मयि प्रसादं कुरुष्व=ममोपरि प्रसन्ना भव । किं वा बहुधा प्रलप्य=निरर्थकजल्पनेन किं फलम् ? शरणागतोऽस्मि=अहं तवाश्रयणे स्वयमागतोऽस्मि । अतो भयं त्यक्त्वा प्रहर्षमाप्नुहीति भावः ॥ १९ ॥

अविमारक—प्रिये ! चिरप्रेम के कारण तुम मेरे लिए नई नहीं हो । तुम व्यर्थ ही पवन चालित लता के समान काँप रही हो । भद्रे ! भय को छोड़ो और मुझ पर प्रसन्न होओ । अधिक क्या कहूँ, मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूँ ॥१९॥

(कुरङ्गी लज्जापूर्वक नलिनिका को देखती है)

नलिनिका—राजकुमार ! उठो, उठो । राजकुमारी कहती हैं कि उठिये ।

अविमारक—ठीक है । (उठता है)

(प्रवेश करके)

धात्री—जेदु भट्टिदारओ। [जयतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—कथं भवती।

धात्री—णलिणिए! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। भट्टिदारिअं भट्टिदारअं च तहिं एव पवेसेहि। [नलिनिके! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। भर्तृदारिकां भर्तृदारकं च तत्रैव प्रवेशय।]

नलिनिका—तह। [तथा।]

(निष्क्रान्ता धात्री)

नलिनिका—भट्टिदारिअ! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं तहिं एव पविसदु भट्टिदारिआए सह। [भर्तृदारक! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। तत्रैव प्रविशतु भर्तृदारिकया सह।]

अविमारकः—त्वमप्येवं प्रियशतानि शृणु।

(हस्तेन तस्या हस्तं गृहीत्वोत्तिष्ठति।)

नलिनिका—एदु एदु भट्टिदारओ। [एत्वेतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—अयमहमागच्छामि। (उभौ परिक्रामतः)

अविमारकः—(सहर्षम्) अनृणोऽस्मि यौवनस्य। कुतः,

अनृणोऽस्मि = ऋणमुक्तोऽस्मि।

धात्री—राजकुमार की जय हो।

अविमारक—आप क्यों आई हैं?

धात्री—नलिनिके! भीतर मण्डप में बिछावन लगा दिया है। राजकुमारी एवं राजकुमार को वहीं पहुँचा दो।

नलिनिका अच्छा। (धात्री का प्रस्थान)

नलिनिका—राजकुमार! भीतर में बिछावन लगा हुआ है। आप राजकुमारी को लेकर वहीं चलें।

अविमारक—तुझे भी इसी प्रकार प्रियकथायें सुनने को मिलें।

(हाथ से उसका हाथ पकड़ कर उठता है)

नलिनिका—आइये, आइये, राजकुमार।

अविमारक—यह आ रहा हूँ। (दोनों जाते हैं)

अविमारक—(हर्ष के साथ) आज मैं यौवन के ऋण से मुक्त हूँ। क्योंकि—

नेत्रे बाष्पपरिप्लुते करधृतौ व्यावल्गमानौ स्तनौ
श्रोणी चाधिकभारिका न विशदौ पादौ ह्रिया स्यन्दिनौ।
एतत् सप्तपदप्रमाणमिह भोः! सम्पाद्यते योजना
यद्येषा क्षणदा भवेद् युगशतं धन्यो मदन्यः कुतः ॥२०॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

तृतीयोऽङ्कः

नेत्रे बाष्पेति । अन्वयः —नेत्रे, बाष्पपरिप्लुते, करधृतौ, स्तनौ, व्यावल्गमानौ, श्रोणी, च, अधिकभारिका, ह्रिया, स्यन्दिनौ, पादौ, न, विशदौ, इह, भोः, एतत्, सप्तपदप्रमाणम्, योजना, सम्पाद्यते, यदि एषा, क्षणदा, युगशतम्, भवेत्, मदन्यः, धन्यः, कुतः ।

नेत्रे = प्रियतमायाः नयने । बाष्पपरिप्लुते = प्रेमाश्रुपरिपूरिते । करधृतौ स्तनौ = करगृहीतम् कुचद्वयम् । व्यावल्गमानौ = चलन्तौ । श्रोणी = जघनप्रदेशः । अधिकभारिका = अधिक भारवती । ह्रिया = लज्जया । स्यन्दिनौ पादौ = स्वेद-बिन्दुयुक्तौ चरणौ । न विशदौ = न स्पष्टौ । इह भोः = अत्र हि । एतत् सप्तपद-प्रमाणम् = इदमेव सप्तपदीभ्रमणम् । योजना = मानसः कार्यक्रमः । सम्पाद्यते = क्रियते । यदि एषा क्षणदा = यदि इयम् अल्पकालवती रात्रिः । युगशतम् इव भवेत् तर्हि मदन्यः = मदतिरिक्तः । धन्यः = भाग्यशाली । कुतः । मत्सदृशो भाग्यवान् नैव कश्चिद् भवेदिति भावः ॥ २० ॥

मेरी प्रियतमा के नेत्र हर्षाश्रु से पूरित हैं, हाथ से धरे हुए स्तन काँप रहे हैं, जघन प्रदेश भारी हो रहा है, लज्जा के कारण पसीने से तर पाँव ठीक ढँग से नहीं पड़ रहे हैं। यही हमलोगों की सप्तपदी है। योजना पूरी हो रही है। यदि आज की रात सैकड़ों युगों की तरह लम्बी हो जाय तो मुझ-सा धन्य कौन होगा ? ॥ २० ॥ (सभी जाते हैं) ।

तृतीय अङ्क समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चाङ्गेरिकाहस्ता मागधिका)

मागधिका --अहो परिजणस्स पमादो। आसुय्योदअं पि ण किदा पासादरअणा। ण सुणीअदि गोट्ठीजणकोलाहलो। किं णु खु भवे। आ, रत्तिजागरदाए पभादप्पसुत्ता भवे। जाव भट्टिदारिअं ओबोधेमि। (परिक्रामति) [अहो परिजनस्य प्रमादः। आसूर्योदयमपि न कृता प्रासाद-रचना। न श्रूयते गोष्ठीजनकोलाहलः। किं नु खलु भवेत्। आ, रात्रिजागरतया प्रभातप्रसुप्ता भवेत्। यावद् भर्तृदारिकामवबोधयामि।]

(ततः प्रविशति विलासिनी वीजनेन)

विलासिनी---मागधिए ! चिट्ठ चिट्ठ। [मागधिके ! तिष्ठ तिष्ठ !]

मागधिका—हला ! मा वारेहि। भट्टिदारिआए सुमणावण्णअं मए आणीअदि। [हला ! मा वारय। भर्तृदारिकायै सुमनोवर्णकं मया नीयते।]

ततः प्रविशतीति। चाङ्गेरिका = वंशनिर्मितम् पात्रविशेषम्। प्रमादः = अनवधानता। आसूर्योदयमपि = सूर्योदयपर्यन्तमपि। प्रासादरचना = भवनसज्जा।

(हाथ में चङ्गेरी लिये मागधिका का प्रवेश)

मागधिका —हाय रे, परिचारकों का प्रमाद ! सूर्योदय हो जाने पर भी प्रासाद को सजाया न गया। गोष्ठी-जनों का शोर-गुल भी नहीं सुनाई दे रहा है। क्या बात है ? आह, रात्रि-जागरण के कारण सुबह में सो रहे हो। तब तक मैं राजकुमारी को जगाती हूँ।

(पंखा लिये विलासिनी का प्रवेश)

विलासिनी— मागधिके ! ठहरो, ठहरो।

मागधिका—सखी, मत रोको, राजकुमारी के लिए मैं पुष्पमाल्य लाई हूँ।

विलासिनी—किं भट्टिदारिआए सुमणावण्णएण वा अलङ्कारेण वा। [किं भर्तृदारिकायाः सुमनोवर्णकेन वालङ्कारेण वा।]

मागधिका—अविणीदे ! मा अमङ्गलं भणाहि। सददालङ्किदा भट्टिदारिआ होदु। [अविनीते ! मा अमङ्गलं भण। सततालङ्कृता भर्तृदारिका भवतु।]

विलासिनी—ण खु। आइदी एव भट्टिदारिआए अलङ्कारो त्ति भणामि। [न खलु। आकृतिरेव भर्तृदारिकाया अलङ्कार इति भणामि।]

मागधिका—उम्मत्तिए ! णणु पुष्फं त्रि वासीअदि। [उन्मत्तिके ! ननु पुष्पमपि वास्यते।]

विलासिनी—सदिसं एदं। सभावरमणीआणि मण्डिदाणि अदिरमणीआणि होन्ति। [सदृशमेतत्। स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति !]

मागधिका—हला ! सुजोजिदो खु भट्टिदारिआए रूवाणुरूवो भत्ता। [हला ! सुयोजितः खलु भर्तृदारिकाया रूपानुरूपो भर्ता।]

वारय=अवरोधय। सुमनोवर्णकेन=पुष्पमाल्येन। अविनीते=अभद्रव्यवहारिणि। अमङ्गलम्=अशुभसूचकम्। सततालंकृता=सदाभूषिता। वास्यते=सुरभितं क्रियते। स्वभावरमणीयानि=निसर्गमनोरमाणि। मण्डितानि=

विलासिनी—राजकुमारी को पुष्पमाल्य या अलङ्कार से क्या प्रयोजन है ?

मागधिका—अरी अविनीते, ऐसा अशुभ मत बोल। राजकुमारी हमेशा अलंकृत रहे।

विलासिनी—नहीं, नहीं, राजकुमारी की आकृति ही अलङ्कार है; मेरा यह तात्पर्य था।

मागधिका—पगली, फूल भी तो सुवासित किया जाता है।

विलासिनी—ठीक कहती हो। जो स्वतः सुन्दर है वह अलंकृत होने पर और अधिक रमणीय हो जाता है।

मागधिका—सखी, राजकुमारी को अपने सौन्दर्य के अनुकूल पति मिल गये हैं।

विलासिनी—अलं पक्खवादेण भट्टिदारअस्स समीवे भट्टिदारिआ पदुमिणिआ विअ दिस्सदि। [अलं पक्षपातेन। भर्तृदारकस्य समीपे भर्तृदारिका पद्मिनीव दृश्यते।]

मागधिका—सुट्ठु भणादि। अहं वि चिन्तेमि—ससरीरो भअवं कामदेवो ईदिसो भवेत्ति। [सुष्ठु भणति। अहमपि चिन्तयामि—सशरीरो भगवान् कामदेवो ईदृशो भवेदिति।]

विलासिनी—तह एव भट्टिदारिआ भट्टिदारअं विणा खणमत्तं वि ण रमदि। [तथैव भर्तृदारिका भर्तृदारकं विना क्षणमात्रमपि न रमते।]

(ततः प्रविशति सास्रा नलिनिका)

नलिनिका—(सशोकम्) सच्चो खु लोअप्पवादो बहुविग्घाणि सुहाणि त्ति। एसो खु संवच्छरो अदिक्कन्दो भट्टिदारिआए अविच्छिण्णसुहसम्भोएण रदिं करिअ। अम्हाअं पुण गोट्ठीजणस्स उत्तरकुरुवासो संवुत्तो। अज्ज उअमहाराएण विदिदो एसो खु वुत्तन्तो त्ति सुणिअ सीददि विअ सरीरं। भट्टिदारिआ च लज्जाभअमअणेहि अभिताडिअमाणा सन्दावेण मुद्धा अवअदचेदणा विअ संवुत्ता। एसो खु पासादो णिव्वाविददीवो विअ मे पडिभादि। तेण भट्टिदारएण विरहिदाए मम एक्कं पि हिअअप्पीदिकरं ण जादं। भट्टिदारओ अविग्घेण णिग्गदो त्ति सुणिअ अज्ज

अलंकृतानि वस्तूनि। अतिरमणीयानि = पूर्वापेक्षया निरतिशयहृद्यानि। रूपानुरूपः = रूपस्य योग्यः। सास्रा = साश्रुनेत्रा।

विलासिनी—पक्षपात मत करो, राजकुमार के आगे राजकुमारी कमलिनी जैसी दीखती हैं।

मागधिका—ठीक कहती हो। मैं भी सोचती हूँ, यदि कामदेव शरीर धारण करले तो ऐसा ही लगे।

विलासिनी—इसीलिए तो राजकुमारी राजकुमार के बिना क्षण-भर भी प्रसन्न नहीं रहती है।

(रोती हुई नलिनिका का प्रवेश)

नलिनिका—(शोक के साथ) लोगों का कहना ठीक ही है कि सुख में बहुत विघ्न हुआ करते हैं। एक वर्ष बीत गया जब कि राजकुमारी निरन्तर

पह्लादिदं विअ मे हिअअं । सम्पदि सुरुद्धं कण्णाउरं । (परिक्रम्य) अम्मो सहीओ । हला म अधिए ! किं एदं । [सत्यः खलु लोकप्रवादः---बहुविघ्नानि सुखानीति । एष खलु संवत्सरोऽतिक्रान्तो भर्तृदारिकाया अविच्छन्नसुखसम्भोगेन रतिं कृत्वा । अस्माकं पुनर्गोष्ठीजनस्योत्तरकुरुवासः संवृत्तः । अद्य पुनर्महाराजेन विदित एष खलु वृत्तान्त इति श्रुत्वा सीदतीव शरीरम् । भर्तृदारिका च लज्जा-भयमदनैरभिताड्यमाना सन्तापेन मुग्धापगतचेतनेव संवृत्ता । एष खलु प्रासादो निर्वापितदीप इव मे प्रतिभाति । तेन भर्तृदारकेण विरहितायाः ममैकमपि हृदय-प्रीतिकरं न जातम् । भर्तृदारकोऽविघ्नेन निर्गत इति श्रुत्वाद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । सम्प्रति सुरुद्धं कन्यापुरम् । अम्मो सख्यौ । हला मागधिके ! किमेतत् ।]

मागधिका—हला ! किं पुच्छसि । णं मण्डणवेला भट्टिदारिआए । [हला ! किं पृच्छसि । ननु मण्डनवेला भर्तृदारिकायाः]

नलिनिका—अदिक्कन्दो उच्छवो । (रोदिति) [अतिक्रान्त उत्सवः ।]

बहुविघ्नानि = अनेकावरोधयुक्तानि । संवत्सरः = वर्षम् । अतिक्रान्तः = व्यतीतः । अविच्छिन्नसुखसंभोगेन = अविहतसुखोपभोगेन । उत्तरकुरुवासः = स्थानान्तरवासः । सीदतीव = क्लिश्यतीव । अपगतचेतनेव = संज्ञाशून्येव । विरहितायाः = वियुक्तायाः । प्रह्लादितम् = प्रहृष्टम् । सुरुद्धम् = अवरोधयुक्तम् ।

सुखोपभोग करती रही । हमलोगों का प्रवास हो गया था । आज महाराज को सब पता चल गया । यह सुनकर शरीर शिथिल हो रहा है । राजकुमारी तो लाज, भय और काम के कारण दुःख से चेतनाहीन हो रही है । मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि इस महल का दीप ही बुझ गया हो । राजकुमार से वियुक्त होकर मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है । राजकुमार निर्विघ्न निकल गये, यह सुनकर आज हृदय प्रसन्न हुआ । अभी कन्यापुर में कड़ा पहरा चल रहा है । अरी सखियो ! अरी मागधिके ! यह क्या है ?

मागधिका—सखी, क्या पूछती हो ? राजकुमारी के शृङ्गार का यही समय है ।

नलिनिका—उत्सव तो समाप्त हो गया । (रोती है)

उभे—सिविणं विअ किं एदं। भणाहि समाणा भवामो। [स्वप्न इव किमेतत्। भण समाना भवामः।]

नलिनिका—सव्वहा गओ भट्टिदारओ। [सर्वथा गतो भर्तृदारकः।]

उभे—हं।

नलिनिका—अहं पि भट्टिदारिआए दुक्खं पेक्खिदुं असहन्ती इह आअदम्हि। [अहमपि भर्तृदारिकाया दुःखं प्रेक्षितुमसहमानेहागतास्मि।]

मागधिका—ण सक्कं खु भट्टिदारिआए अवत्थादंसणं। तह वि भट्टिदारिअं अस्सासइस्सामो। [न शक्यं खलु भर्तृदारिकाया अवस्थादर्शनम्। तथापि भर्तृदारिकामाश्वासयिष्यामः।]

उभे—एवं करेम्ह [एवं कुर्मः।]

(सर्वा निष्क्रान्ताः)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशत्यविमारकः)

मण्डनवेला = शृङ्गारसमयः।

प्रेक्षितुम् = विलोकयितुम्। असहमाना = असमर्था। अवस्थादर्शनम् = विरहजन्यक्लेशावलोकनम्। आश्वासयिष्यामः = सान्त्वनां दास्यामः।

दोनों—यह क्या स्वप्न जैसा हो गया! कहो, हमलोग एक समान हो हो जायँ।

नलिनिका—राजकुमार तो चले गये।

दोनों—हाँ।

नलिनिका—मैं भी राजकुमारी के दुःख को नहीं देख सकी, इसलिए यहाँ चली आयी हूँ।

मागधिका—राजकुमारी की अवस्था देखने योग्य है भी नहीं फिर भी राजकुमारी को सान्त्वना तो दूँगी ही।

दोनो—हाँ, हम ऐसा ही करेंगी।

(सभी जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

(अविमारक का प्रवेश)

अविमारक:—(सशोकम्)

कन्यापुरात् कथमपीह विनिर्गतं मे
भाग्यावशेषमवलम्ब्य शरीरमात्रम् ।
अद्यापि तन्मम मनो न तु मामुपैति
नावेक्षते मयि तथा प्रिययावरुद्धम् ॥ १ ॥

का नु खलु भवेदवस्था कुरङ्ग्याः ।

ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादैर्भीता च राज्ञा दृढसन्निरुद्धा ।
बाष्पाविला मामनवेक्षमाणा मोहं व्रजेद् रात्रिषु किं करिष्ये ॥ २ ॥

कन्यापुरादिति । अन्वयः—भाग्यावशेषम्, अवलम्ब्य, इह, मे, शरीरमात्रम् कथमपि, कन्यापुरात्, विनिर्गतम्, तु, अद्यापि, मम, मनः, माम्, न उपैति, तथा प्रियया, अवरुद्धम्, न अवेक्षते ।

भाग्यावशेषम् = अवशिष्यमाणं जीवनादृष्टम् । अवलम्ब्य = आश्रित्य । इह = इदानीम् । मे शरीरमात्रम् = केवलं मदीयं वपुः । कथमपि = केनापि प्रकारेण । कन्यापुरात् = कुरङ्गीनिवासस्थानात् । विनिर्गतम् = बहिर्निसृतम् । तु = किन्तु । अद्यापि = अधुनापि । मम मनः = मदीयचित्तम् । माम् न उपैति = मत्समीपे स्थातुन्नेच्छति । तथा = किञ्च । प्रियया = कुरङ्ग्या । अवरुद्धम् = वशीकृतम् मनः । न अवेक्षते = ममोपरि कदापि दृष्टिमपि नैव निक्षिपति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

ह्रीतेति । अन्वयः—प्रेष्यजनप्रवादैः, ह्रीता, राज्ञा, दृढसन्निरुद्धा, भीता, च, भवेत् । माम्, अनवेक्षमाणा, बाष्पाविला, रात्रिषु, मोहम्, व्रजेत्, किम्, करिष्ये ?

अविमारक—(शोक के साथ) भाग्य थोड़ा अवशिष्ट था इसीसे किसी प्रकार मेरा शरीर कन्यापुर से बाहर निकल आया किन्तु मेरा मन अभी भी वहीं है । मेरी प्रिया ने मेरे मन को इस प्रकार रोक लिया है कि वह मेरी ओर देखता तक नहीं ॥ १ ॥

कुरङ्गी की क्या हालत हुई होगी ?

वह परिजनों के द्वारा फैलाये गये अफवाहों से लज्जित तथा राजा द्वारा कड़ी निगरानी में रखी जाने के कारण भयभीत होगी, मुझे न देखकर वह रोती होगी, रात में वह बेहोश हो जाया करेगी । समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ ॥ २ ॥

हन्तः दृष्टः प्रतीकारः । तथापि तावदस्मदपेक्षया नापेक्षित आत्मा । तस्मादहमपि तावत् तदर्थे प्राणान् परित्यजामि । (परिक्रम्य) कतिपयदिवसप्रोषितोऽहमस्मि । अद्य तु मानसं शारीरं च दुःखमसह्यमिव मे प्रतिभाति । इह हि,

निर्व्याजं परिचयवर्धमानरागां
रूपाढ्यामभिनवयौवनां मनोज्ञाम् ।
त्यक्त्वा तां क्षणमपि वञ्चितोऽस्मि जीवन्
कष्टोऽन्यः क इह भवेत् कृतघ्नभावः ॥ ३ ॥

प्रेष्यजनप्रवादैः = परिजनानां मिथ्याप्रचारैः । व्रीता = लज्जिता । राज्ञा = कुपितभोजेन । दृढसन्निरुद्धा = अतिकठोरतया निरुद्ध्यमाना । भीता च = भयं प्रापिता च । भवेत् = स्यात् । मामनवेक्षमाणा = माम् न विलोकयन्ती । बाष्पाविला = शोकाश्रुपूर्णनयना । निशासु = रात्रिषु । मोहं व्रजेत् = मूर्च्छां प्राप्नुयात् । किं करिष्ये = कथमाचरिष्यामि ? प्रियायाः कष्टनिवारणार्थम् कः प्रयत्नो विधेयः इत्येव खलु सम्प्रति चिन्तनीयमिति भावः ॥ २ ।

प्रतीकारः = उपायः । अस्मदपेक्षया = मदर्थम् । नापेक्षित आत्मा = स्वप्राणानाम् चिन्ता न कृता । कतिपयदिवसप्रोषितः = कियद्भिर्दिवसैर्विरहितः ।

निर्व्याजमिति । अन्वयः — निर्व्याजम्, परिचयवर्धमानरागाम्, रूपाढ्याम्, अभिनवयौवनाम्, मनोज्ञाम्, ताम्, त्यक्त्वा, क्षणमपि, जीवन्, वञ्चितोऽस्मि, इह, कष्टः, अन्यः, कः कृतघ्नभावः भवेत् ।

निर्व्याजम् = निष्कपटभावेन । परिचयवर्धमानरागाम्—परिचयेन = अन्योन्यपरिज्ञानेन, वर्धमानः = समेधितः, रागः = पारस्परिकः प्रणयः यस्यास्ताम् = तथाभूताम् । रूपाढ्याम् = अतिशयरूपवतीम् । अभिनवयौवनाम् = नवीनयौवन-

---

अहा, उपाय सूझ गया । उसने मेरे लिए जान की परवाह नहीं की थी, इसलिए मैं भी उसके लिए प्राणों का परित्याग करूँगा । (चलकर) कुछ दिनों से मैं वियुक्त हूँ । आज मानसिक तथा शारीरिक कष्ट मुझे असह्य-सा प्रतीत हो रहा है । यहाँ—

निष्कपट परिचय में प्रेम बढ़ाने वाली, अत्यन्त सुन्दरी नवयौवना तथा मनोहारिणी प्रिया से वियुक्त होकर यदि मैं क्षण भर जीवित हूँ तो इससे बढ़कर मेरी कृतघ्नता और क्या हो सकती है ? ॥ ३ ॥

सम्प्रति हि मदनेनान्तर्दह्यमानस्य क्षारीभवितुमारब्धो भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः (सर्वतो विलोक्य) अहो प्रतिभयता निदाघस्य। सम्प्रति हि,

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्।
विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥ ४॥

सम्पन्नाम्। मनोज्ञाम् = मनोहारिणीम्। ताम् = कुरङ्गीम्। त्यक्त्वा = विहाय। क्षणमपि = मुहूर्त्तमपि यावत्। जीवन् = प्राणान् धारयन्। वञ्चितोऽस्मि। इह = अस्यां स्थितौ। कष्टः = कष्टप्रदः। अन्यः कः = इतरः कः। कृतघ्नभावः = कृतघ्नता भवेत् ? प्रियां विना इदानीमपि जीवन्नस्मीति महतीयम्मे कृतघ्नतेति भावः ॥ ३॥

मदनेन = कामेन। अन्तर्दह्यमानस्य = मनसि पीड्यमानस्य। क्षारीभवितुम् = पीडादायकतामुपेतुम्। प्रतिभयता = भयङ्करता। निदाघस्य = ग्रीष्मकालस्य।

अत्युष्णेति। अन्वयः—भास्करकरैः,आपीतसाराः, अत्युष्णा, मही, ज्वरिता, दावाग्न्याश्रयात्, प्रमुषितच्छाया, पादपाः, यक्ष्मार्त्ता, इव उच्छ्रितगुहा, व्यात्ताननाः, पर्वताः, अवशात्, विक्रोशन्ति, इव, रविपाकनष्टहृदयः, अयम्, लोकः मूर्च्छाम्, इव, संयाति।

भास्करकरैः = रविकिरणैः। आपीतसाराः = आ समन्तात् पीतम् शोषितम् सारः = जलम् यस्याः सा। अत एव अत्युष्णा = अतितप्ता। मही = पृथ्वी। ज्वरिताः ज्वरयुक्ता इव। प्रतीयते इति शेषः। दावाग्न्याश्रयात् = वडवानलदग्ध-

---

अभी काम से जल रहे मेरे शरीर पर भगवान् सूर्य नमक छिड़कने का काम कर रहे हैं। (चारोंओर देखकर) अहा, गर्मी का समय कितना भयंकर हो रहा है। इस समय—

सूर्यकिरणों ने जिसका रस शोष लिया है, ऐसी यह पृथ्वी ज्वरिता की तरह तप रही है, वडवानल-विदिग्ध वृक्षों की छाया समाप्त हो गई है और वे यक्ष्मा-पीडित से लग रहे हैं। विशाल गुहारूप मुँह फैलाये पर्वत विवश होकर चिल्ला रहे हैं, यह संसार सूर्यकिरणों से दग्ध-हृदय होकर मूर्छित-सा हो रहा है ॥ ४॥

किमिदानीं करिष्ये । न चोस्म्यहं गन्तुं समर्थः । कुतः,

लिम्पन्ति रूक्षपवनाः सिकताग्निचूर्णैः
संस्वेदयन्ति च नगाः परुषैः पलाशैः ।
दावैर्द्रवीकृततनुः स्रवतीव भास्वा-
नादित्यपाकचलितः फलतीव लोकः ॥ ५ ॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! देहि मे प्रतिवचनम् । (मूर्च्छां नाटयति । पुनर्निःश्वस्य । ऊर्ध्वमवलोक्य) रुद्धः खलु भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः । अथवा,

---

त्वात् । प्रमुषितच्छाया = विनष्टपत्रादिच्छायाः । पादपाः = वृक्षाः । यक्ष्मार्त्ताः = यक्ष्माख्येन रोगेण पीडिताः इव । उच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः—उच्छ्रिताः = दीर्घाः, गुहाः = कन्दराः, एव व्यात्तानि = विवृतानि, आननानि = मुखानि येषाम् तादृशाः । पर्वताः = गिरयः । अवशात् = पराधीनवृत्ततया । विक्रोशन्ति = विलपन्ति इव । रविपाकनष्टहृदयः = सूर्यकिरणतापशोषितहृदयः । अयं लोकः = एष संसारः । मूर्च्छाम् = चैतन्यविरहितावस्थाम् = संयाति = प्राप्नोति । निदाघसमयस्य क्लेशजनकताऽतीवभीषणा संवृत्तेति पद्यभावः । शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम् ॥ ४ ॥

लिम्पन्तिरूक्षेति । अन्वयः—रूक्षपवनाः, सिकताग्निचूर्णैः, लिम्पन्ति, नागाः परुषैः, पलाशैः, च, संस्वेदयति, दावैः, द्रवीकृततनुः, भास्वान्, स्रवति इव, आदित्यपावकचलितः, लोकः, फलति, इव ।

रूक्षपवनाः = अत्युल्वणाः वायवः । सिकताग्निचूर्णैः = अग्निचूर्णसदृशैः बालुकाकणैः । लिम्पन्ति = पृथ्वीं व्याप्नुवन्ति इव । नागाः = वृक्षाः । परुषैः पलाशैः = कठोरपत्रैः । संस्वेदयन्ति = घर्मबिन्दून् उत्पादयन्ति । दावैः = वडवा-

---

अब मैं क्या करूँ ? मैं चल भी नहीं सकता । क्योंकि—

यह रूखी हवा बालुका रूपी अग्निचूर्ण से संसार को व्याप्त कर रही है । वृक्ष अपने कठोर पत्रों से लोगों को स्वेदित कर रहे हैं, दावाग्नि से पिघलकर सूर्य मानो चू रहा है और सूर्य के पाक से संसार पक रहा है ॥५॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! मुझे जबाब दो । (बेहोशी का अभिनय करता है, फिर साँस लेकर) (ऊपर की ओर देखकर) भगवान् सूर्य छिप गये । अथवा,

किमत्र चित्रं वितताः पयोदा
रुन्धन्ति सूर्यं ननु वातनीताः ।
अन्तः स्थितं मे यदि वारयन्ति
कामं भवेद् विस्मयनीयमेतत् ।। ६ ।।

किमनेन जीवन्मरणेन । विसर्जयिष्याम्यात्मानम् । (उत्थाय परिक्रामति) किन्नु खलु करिष्ये । भवतु दृष्टम् । अस्मिन्नारण्यतटाके विसर्जयिष्याम्यात्मानम् । धिगधर्मः खलु मे मरणमार्गः । अभिमानमोहान्महापथो विस्मृतः । अन्यथा प्रयतिष्ये । (विलोक्य) भवतु

नलैः । द्रवीकृततनुः = तरलायमानशरीरः । 'भास्वान् = सूर्यः । स्रवति इव = बिन्दुरूपेण स्खलति इव । आदित्यपाकचलितः = सूर्यतापतप्तः लोकः । फलतीव = पच्यत इव ।। ५ ।।

प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम् ।

किमत्रेति । अन्वयः—वातनीताः, वितताः, पयोदाः, सूर्यम्, रुन्धन्ति, ननु, अत्र, किम्, चित्रम्, यदि, मे, अन्तःस्थितम्, कामम्, वारयन्ति, (तदा) एतत्, विस्मयनीयम् भवेत् ।

वातनीताः = वायुनाऽऽहृताः । वितताः = प्रसृताः । पयोदाः = मेघाः । सूर्यम् रविम् । रुन्धन्ति = आच्छादयन्ति । ननु अत्र किं चित्रम् = इह किमाश्चर्यम् ? यदि मे = मम । अन्तःस्थितम् = चित्तोद्भवम् । कामम् = मदनम् । वारयन्ति = अपसारयन्ति । (तदा) एतत् विस्मयनीयम् = आश्चर्यजनकम् । भवेत् = स्यात् । मेघाः यदि सूर्यमाच्छादयन्ति तर्हि नैव किमपि वैलक्षण्यम्, यदि मम मानसस्थितम् कामं ते छादयेयुः तर्हि तदैव आश्चर्यावसरः प्रसरेदिति भावः ।।६।।

जीवन्मरणेन = जीवमानोऽपि मृतकतुल्यः । विसर्जयिष्यामि = त्यक्ष्यामि ।

वायु द्वारा आहुत मेघ से यदि सूर्य छिपा दिये गये तो इसमें विचित्रता क्या है ? मेरे हृदय में वर्त्तमान काम को यदि यह मेघ छिपा दे तो यह विस्मयजनक हो सकता है ।। ६ ।।

इस जीतेजी मरने से क्या फायदा ! मैं जान दे दूंगा (उठकर चलता है) क्या करूँ ? अच्छा, उपाय तो सूझ गया । इसी वन्य सरोवर में प्राणत्याग करूँगा । मेरे मरने का रास्ता अधर्मपूर्ण है । अभिमान-मोह से प्रशस्तमार्ग को मैंने भुला दिया है । या दूसरा उपाय करता हूँ । (देखकर) अच्छा,

दृष्टम् । अये अदूरे दृश्यते दावाग्निः । तस्मिन् प्राणाहुतिं करिष्यामि (उपगम्य प्रणम्य च) भगवन् ! अग्ने !

इष्टं चेदेकचित्तानां यद्यग्निः साधयिष्यति ।
परत्रापि च मे कान्ता सा भवेदेककीर्तनी ॥ ७ ॥

(अग्नि प्रविश्य सकुतूहलम्) किमिदं वर्तते ।

दग्धाः स्फुलिङ्गनिकरैर्निपतन्ति वृक्षा
ज्वालाश्च मे मलयचन्दनपङ्कशीताः ।
अग्निर्दयां हि कुरुते मदनातुरेऽपि
पुत्रं पितेव च परिष्वजति प्रहृष्टः ॥ ८ ॥

आरण्यतटाके = वन्यसरसि । अधर्मः = अधर्मपूर्णः । मरणमार्गः = मृत्युप्रकारः । अदूरे = समीपे ।

इष्टमिति । अन्वयः—यदि चेत् एकचित्तानाम्, इष्टम्, अग्निः, साधयिष्यति सा, मे, कान्ता, परत्राऽपि, एककीर्तनी, भवेत् ।

यदि चेत् एक चित्तानाम् = अनन्यासक्तहृदयानाम् । इष्टम् = वाञ्छितम् । अग्निः = अग्निदेवः । साधयिष्यति = पूरयिष्यति । तर्हि सा मे कान्ता = सा मम प्रियतमा कुरङ्गी । परत्राऽपि = अन्यजन्मन्यपि । एककीर्तनी = ममानुगामिनी । भवेत् = स्यात् ॥ ७ ॥

सकुतूहलम् = साश्चर्यम् ।

दग्धा इति । अन्वयः—स्फुलिङ्गनिकरैः, दग्धाः, वृक्षाः, निपतन्ति, च, मे, ज्वालाश्च, मलयचन्दनपङ्कशीताः, मदनातुरेऽपि, अग्निः, दयाम्, कुरुते, प्रहृष्टः, पुत्रम्, पितेव, परिष्वजति ।

स्फुलिङ्गनिकरैः = अग्निकणसमूहैः । दग्धाः = ज्वलिताः । वृक्षाः = तरवः ।

देख लिया, समीप में ही दावाग्नि दिखाई दे रही है । उसी से प्राणों की आहुति दूंगा । (समीप जाकर एवं प्रणाम कर) भगवन् ! अग्ने !

यदि हृदय से प्रेम करने वालों का हितसाधन आप करते हैं तो ऐसा अवश्य करेंगे ताकि मेरी प्रिया दूसरे जन्म में भी मेरी ही होकर रहे ॥ ७ ॥

(अग्नि में प्रवेश कर आश्चर्यपूर्वक) यह क्या ? आग की चिनगारियों से दग्ध होकर पेड़ गिर रहे हैं, पर मेरे लिए अग्नि ज्वाला मलयज चन्दन की तरह ठण्ढी हो रही है । ये अग्निदेव मुझ कामातुर पर ठीक उसी प्रकार दया

भोः किमतः परं विस्मयनीयम् ! अग्निः खलु मां न दहति। अथवा एतदप्यस्ति कारणम्। अन्यथा प्रयतिष्ये (परिक्रम्य) एष खलु महान् पर्वतः,

असितजलदवृन्दैर्मिश्रसन्दिग्धशृङ्गो
गगनचरकुलानां विश्रमस्थानभूतः।
सुकविमतिविचित्रो मित्रसंयोगहृद्यो
नरपतिरिव नीचो दृश्यते निष्फलाढ्यः ।। ९ ।।

निपतन्ति = धराशायिनो भवन्ति। च मे = मम कृते। ज्वालाश्च = वह्निशिखाः। मलयचन्दनपङ्कशीताः = मलयजावलेपवच्छीतलाः। मदनातुरेऽपि = कामार्त्तेऽपि मयि। अग्निः = अग्निदेवः। दयां कुरुते = कृपां विधत्ते। प्रहृष्टः = प्रसन्नः। पुत्रम् = सुतम्। पितेव = जनक इव। परिष्वजति = समालिङ्गति। यथा प्रसन्नः पिता पुत्रमालिङ्गति तथैव अग्निप्रविष्टम् माम् अग्निदेवो मद्धेतोः स्वकीयां दाहकतां विहाय सुखकरः शीतलश्च सञ्जात इति भावः ।। ८ ।।

असितजलदेति। अन्वयः—असितजलदवृन्दैः, मिश्रसन्दिग्धशृङ्गः, गगनचरकुलानाम्, विश्रमस्थानभूतः, सुकविमतिविचित्रः, मित्रसंयोगहृद्यः, निष्फलाढ्यः, नीचः, नरपतिः, इव दृश्यते।

असितजलदवृन्दैः = कृष्णवर्णपयोदनिकरैः। मिश्रसन्दिग्धशृङ्गः—मिश्राणि = मिलतानि, सन्दिग्धानि = संशययुक्तानि च शृंगाणि = शिखराणि यस्य तथाभूतः पर्वतः। गगनचरकुलानाम् = खेचरनिकराणाम्। विश्रमस्थानभूतः = विश्राम-भूमिः। सुकविमतिविचित्रः = सुकवेः, मतिः = बुद्धिः इव विचित्रः = विलक्षणः।

कर रहे हैं जिस प्रकार पिता प्रसन्न होकर पुत्र का आलिंगन करता है ।। ८ ।।

अरे ! इससे बड़ा और क्या आश्चर्य होगा ! आग मुझे नहीं जला रही है। या इसका भी कारण है। दूसरा प्रयास करूँगा। (चलकर) यह विशाल पर्वत है—

काले बादल इस पर्वत के ऊपर इस प्रकार फैल रहे हैं मानो इसके शृङ्ग हों। यह पर्वत आकाशचारियों के लिए विश्रामस्थल है। अच्छे कवि की बुद्धि के समान यह विलक्षण है, मित्र के सम्पर्क से यह प्रसन्न होता है, अनुपयुक्त धन रखने वाले क्षुद्र राजा के समान यह भी दिखाई देता है ।। ९ ।।

भवतु तावदस्मिञ्छैले प्राणान् परित्यजामि। मरुत्प्रपातो हि सर्वार्थसाधकः। यावदारोहामि। (आरुह्यावलोक्य) एतत् पानीयं गोत्रस्थं स्नात्वोपस्पृश्य मन्त्रं जपामि। (तथा कृत्वा जपति)

(ततः प्रविशति विद्याधरः सह प्रियया)

विद्याधरः—

प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमिता स्नातं पुनर्मानसे
भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम्।
क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता
यास्यावो मलयस्य चन्दननगान्मध्याह्ननिद्रासुखान्॥ १०॥

मित्रसंयोगहृद्यः = सुहृत्सम्पर्कमनोहरः। निष्फलाढ्यः = निरर्थकवित्तः। नीचः = नीचप्रकृतिः। नरपतिरिव = राजेव। दृश्यते = अवलोक्यते॥ ९॥

शैले = पर्वते। मरुत्प्रपातः = पर्वतशिखरात् पतनम्। सर्वार्थसाधकः = सर्वप्रयोजनपूरकः। गोत्रस्थम् = पर्वतस्थम्। उपस्पृश्य = आचम्य।

विद्याधरः = देवयोनिविशेषः। "विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ···भूतोऽमी देवयोनयः" इत्यमरः।

प्राक्सन्ध्येति। अन्वयः—उत्तरेषु, कुरुषु, प्राक्सन्ध्या, गमिता, पुनः, मानसे, स्नातम्, भूयः, मन्दरकन्दरान्तरतटेषु, यौवनम्, आमोदितम्, क्रीडार्थम्, हिमवद्गुहासु, चरिता, दृष्टिः, संलोभिता, मध्याह्ननिद्रासुखान्, मलयस्य, चन्दननगान् यास्यावः।

उत्तरेषु कुरुषु = एतन्नामकप्रदेशेषु। प्राक्सन्ध्या = प्रातःकालः, गमिता =

अच्छा, इसी पहाड़ पर प्राण-त्याग करता हूँ। पहाड़ की चोटी से गिरकर मरना सर्वार्थ-साधक है। चढ़ता हूँ। (चढ़कर, देखकर) यह, पर्वत पर जल है, इसमें स्नान एवं आचमन कर मन्त्र जप लेता हूँ (वैसा करके जप करता है)

(प्रिया के साथ विद्याधर का प्रवेश)

विद्याधर—प्रातःकाल तो उत्तरकुरु प्रदेश में बीता, फिर मानसरोवर में स्नान किया, मन्दराचल की गुफाओं में यौवन के सुखों को लूटा, मनोविनोद के लिए क्षुब्ध आँखें हिमालय पर विचरती रहीं, अब मध्याह्नकालिक निद्रासुख के लिए हम दोनों मलयपर्वत के चन्दन-वन में जायेंगे॥ १०॥

(आकाशयानं निरूप्य) सौदामिनि ! पश्य पश्य भगवत्या वसुन्धराया दूरस्थां दर्शनीयामाकृतिम् । इह हि,

शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमा
वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् ।
सीमन्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च बिन्दूपमा
दृष्टं वक्रमिवाभिभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ।। ११ ।।

यापिता । पुनः, मानसे = मानससरोवरे । स्नातम् = अवगाहनं कृतम् । भूयः = पुनश्च । मन्दरकन्दरान्तरतटेषु = मन्दराचलगुहासु । यौवनमामोदितम् = यौवनसुखं प्राप्तम् । क्रीडार्थम् = मनोरञ्जनार्थम् । हिमवद्गुहासु = हिमाचल-कन्दरासु । चरिता = प्रचलिता । दृष्टिः = नयनम् । संलोभिता = लोभमापन्ना । मध्याह्ननिद्रासुखान् = मध्याह्नकालिकनिद्रायाः आनन्दम् प्राप्तुम् । मलयस्य चन्दननगान् = मलयाख्यपर्वतस्य चन्दनतरून् प्रति । यास्यावः = प्रस्थानं करिष्यावहे ।। १० ।।

वसुन्धरायाः=पृथिव्याः । दूरस्थाम्=दूरवर्तिनीम् । दर्शनीयाम्=रमणीयाम् ।

शैलेन्द्रा इति । अन्वयः --शैलेन्द्राः, कलभोपमाः, जलधयः, क्रीडातटाकोपमाः, वृक्षाः, शैवलसन्निभाः, क्षितितलम्, प्रच्छन्ननिम्नस्थलम्, निम्नगाः, सीमन्ताः, इव, सुविपुलाः, सौधाश्च, बिन्दूपमाः, दृष्टम्, संक्षिप्तरूपम्, जगत्, वक्रमिव, अभिभाति ।

शैलेन्द्राः = उन्नतगिरयः । कलभोपमाः = गजशावका इव । जलधयः = सागराः । क्रीडातटाकोपमाः = जलविहारार्थं निर्मिताल्पजलाशयसमानाः ।

(आकाश को देखकर) सौदामनि ! देखो, देखो, पृथ्वी की दूरवर्तिनी आकृति कैसी मनोरम लग रही है ।

यहाँ पर,

पर्वत हाथी के बच्चों के समान, सागर जलविहार के लिए निर्मित तालाब के समान, वृक्ष शैवाल के समान दिखाई दे रहे हैं । पृथ्वी के निम्न भाग छिप रहे हैं, नदियाँ माँग-रेखा के समान लग रही हैं, बड़े-बड़े महल बूँदों के समान दीख रहे हैं । यह सम्पूर्ण संसार संक्षिप्त रूप तथा टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई दे रहा है ।। ११ ।।

भद्रे ! अवहिता भव । शीतचन्दननिलयं मलयं प्रयास्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(उभावाकाशयानं निरूपयतः)

सौदामनी—अय्य ! ण पारेमि अविस्सन्ता गन्तुं । [आर्य ! न पारयाम्यविश्रान्ता गन्तुम् ।]

विद्याधरः -तेन हि कस्मिंश्चित् पर्वते मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यावः

सौदामनी—अय्य ! पिअं मे । [आर्य ! प्रियं मे ।]

(उभाववतरतः)

विद्याधरः—सौदामनि ! पश्य पश्य ।

वृक्षाः = तरवः । शैवलसन्निभाः = जम्बालसदृशाः । क्षितितलम् = पृथ्वीतलम् । प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् = अन्तर्हितनिम्नभूमिकम् । निम्नगाः = सरितः । सीमन्ताः = केशान्तररेखेव । सुविपुला = सुविशाला । सौधाः = प्रासादाः । बिन्दूपमाः = बिन्दुसदृशाः । दृष्टम् संक्षिप्तरूपम् = लघुकलेवरम् । जगत् = विश्वम् । वक्रमिव = कुटिलमिव । अभिभाति = प्रतिभाति ॥ ११ ॥

अवहिता = सावधाना । शीतचन्दननिलयम् = शीतलचन्दनोद्भवस्थानम् । मलयम् = मलयाख्यो गिरिः ।

पारयामि = शक्नोमि । अविश्रान्ता = विश्रामं विना । मुहूर्त्तम् = कियत्कालं यावत् ।

भद्रे ! सावधान हो जाओ ! हम शीतल चन्दनवाले मलय-पर्वत पर अब जायेंगे ।

सौदामनी—बहुत अच्छा ।

(दोनों आकाशगमन देखते हैं)

सौदामनी—आर्य ! विना विश्राम किये मैं नहीं जा सकूँगी ।

विद्याधर—तो किसी पर्वत पर थोड़ा विश्राम करके चलें ।

सौदामनी—आर्य ! यह तो मुझे बहुत ही अच्छा लगेगा ।

(दोनों उतरते हैं)

विद्याधर—सौदामनि ! देखो, देखो ।

जलदगहनमुज्भतीव वेगा-
दभिपततीव मही समुद्रमुद्रा ।
जलदसमयतोयदा इवामी
भृशमभिभान्ति नगा विजृम्भमाणाः ॥ १२ ॥

भवति ! अयं पर्वतः समर्थ इवास्माकं मुहूर्तमातिथ्यं कर्तुम् । तस्माद् विश्रान्तौ गमिष्यावः ।

सौदामनी--अय्य ! एवं करेम्ह । [आर्य ! एवं कुर्वः ।]

विद्याधरः--सौदामनि ! पुष्पितानां नगानां षड्भागग्रहणमस्माकं धर्मः । तस्मादनृणान् वृक्षान् करिष्यावः ।

सौदामनी--अय्य ! तह । [आर्य ! तथा]

(पुष्पावचयं नाटयतः)

जलदगहनेति । अन्वयः—वेगात्, समुद्रमुद्रा, मही, जलदगहनम्, उज्भतीव अभिपतति, अमी, विजृम्भमाणाः, नगाः, जलदसमयतोयदाः, भृशं, अभिभान्ति ।

वेगात् = वेगवशात् । समुद्रमुद्रा = समुद्रपरिवेष्टिता । मही = पृथ्वी । जलदगहनम् = मेघसमूहम् । उज्भतीव = परित्यजन्तीव । अभिपतति = समक्षमायाति । अमी = एते । विजृम्भमाणाः = वर्द्धमानाः । नगाः = तरवः । जलदसमयतोयदाः = पावसकालिकमेघा इव । भृशम् = अतिशयेन । अभिभान्ति = शोभन्ते ॥ १२ ॥

पुष्पितानाम् नगानाम् = कुसुमितवृक्षाणाम् । षड्भागग्रहणम् = षष्ठभागा-

---

समुद्रवेष्टित पृथ्वी मेघसमूह से निकलकर वेगपूर्वक नजदीक आती जा रही है और प्रकट होते हुए ये वृक्ष वर्षाऋतु के बादलों के समान सुशोभित हो रहे हैं ॥ १२ ।

भद्रे ! यह पर्वत कुछ क्षणों तक हमारा आतिथ्य करने में समर्थ है, अतः विश्राम करके चलेंगे ।

सौदामनी—आर्य, ऐसा ही करेंगे ।

विद्याधर—सौदामनि ! इन फूले हुए वृक्षों से छठा भाग लेना हमारा धर्म है, इसलिए इन्हें भी उऋण कर देंगे ।

सौदामनी—अच्छी बात है ।

(दोनों फूल चुनते हैं)

विद्याधरः--(अविमारकं विलोक्य) अये, को नु खल्वयम् । आ ज्ञातम् । विद्याधरः खलु मन्त्रभ्रष्टः । कुतः, रूपमीदृशं हि नान्येषाम् । दिष्टया यदयं दृष्टः । भवत्वहमपि विस्मृतं पृच्छामि ।

अविमारकः--भवतु कृतं देवकार्यम् । प्रपतामि । (पार्श्वतो विलोक्य, विद्याधरं दृष्ट्वा) भोः ! को नु खल्वयम् । अथवा, स्वप्नोऽयं भवेत् । न ह्ययं सुप्तः । आ अन्तकाले मनुष्याः किमपि पश्यन्ति, तदेतत् स्यात् । तदपि संमूढानां खलु । अहं तु सर्वं जानामि । भवतु, पृच्छाम्येनम् । भोः ! कतरकुलान्वयो भवतालंक्रियते ।

विद्याधरः—श्रूयताम— अहं मेघनादो नाम विद्याधरः । इयं तावदस्मत्कुटुम्बिनी सौदामनी नाम । अद्य भगवन्तमगस्त्यमाराधयितुं मलयपर्वते विद्याधरैरुत्सवः प्रारब्धः । तत्र वयमपि सङ्केतिता । इह मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्याव इत्यवतीर्णाः । एषोऽस्माकं वृत्तान्तः । अथ

ङ्गीकरणम् । अनृणान् = ऋणमुक्तान् ।

प्रपतामि: = पतित्वाऽऽत्मानं घातयामि । अन्तकाले = मृत्युसमये । संमूढानाम् = मूर्खाणाम् । कतरकुलान्वयः = को वंशः ?

विद्याधर—(विद्याधर को देखकर) यह कौन है ? आह, समझ गया । कोई मन्त्र-भ्रष्ट विद्याधर ही होगा, क्योंकि ऐसारूप भला दूसरों का कहाँ से होगा ! भाग्य से ही यह दिखाई पड़ गया । मैं भी सविस्तार इससे पूछता हूँ ।

अविमारक—अच्छा, देवकार्य तो कर लिया, अब गिरता हूँ । (बगल की ओर देखकर, विद्याधर को देखकर) अरे ! यह कौन है ? अथवा यह स्वप्न है ? पर मैं सोया तो हूँ नहीं । आह, मृत्यु के समय लोग कुछ न कुछ देखते ही हैं । वही होगा, वह भी मूर्खों के लिए होगा । मैं तो सब जानता हूँ । अच्छा, इससे पूछता हूँ । आप किस वंश को अलंकृत करते हैं ?

विद्याधर—सुनिये मैं मेघनाद नामक विद्याधर हूँ । सौदामनी नाम की यह मेरी पत्नी है । आज भगवान् अगस्त्य की आराधना के लिए विद्याधरों ने मलयपर्वत पर एक उत्सव प्रारम्भ किया है, जिसमें हमें भी बुलाया गया है । यहाँ कुछ देर विश्राम कर फिर चलेंगे, इसीलिए उतर गये हैं । यही

किमर्थमिदानीं भवान् क्षितितलं देवलोकीकरोति ।

अविमारकः--(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्तव्यम् । वर्तमाने ममान्तकालेऽनृतं न वक्तव्यम् । (प्रकाशम्) भोः ! सौवीरराजपुत्रोऽविमारको नाम्नास्मि ।

विद्याधरः—(आत्मगतम्) एतदनृतम् । नेयमाकृतिर्मानुषी (प्रकाशम्) अथ किमर्थमेकाकी भवानिहागतः ।

अविमारकम्—(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्ष्यामि । (अधोमुखस्तिष्ठति)

विद्याधरः--(आत्मगतम्) भवत्वहमेव ज्ञास्यामि । (विद्यामावर्तयति) भोः ! कष्टम् । अयं खलु भगवतोऽग्नेः पुत्र आत्मानं न जानाति, कुन्तिभोजदुहितरं कुरंगीमभिलषमाणो रममाणश्च तत्र विदिते सति निर्गतः, पुनः प्रवेशोपायमलभमानः प्राणपरित्यागाभिलाषी मरुत्प्रपातं कर्तुमि-

---

कुटुम्बिनी = पत्नी । संकेतिताः = आहूताः । क्षितितलम् = पृथ्वीतलम् । देवलोकीकरोति = देवलोके परिणमयति । अनृतम् = मिथ्या । मानुषी = मानवीया । विद्यामावर्त्तयति = यया विद्यया परकीयो वृत्तान्तो ज्ञातुं शक्यते तां स्मरतीत्यर्थः । अभिलषमाणः = समीहमानः । रममाणः = उपभुञ्जानः ।

हमारी कहानी है । अब आप बताइए कि आप इस पृथ्वीतल को क्यों देवलोक बना रहें हैं ?

अविमारक—(स्वगत) क्या कहूँ ? अपनी मृत्यु के समय झूठ नहीं कहूँगा । (प्रकट) अजी ! मैं सौवीरराज का पुत्र अविमारक हूँ ।

विद्याधर—(स्वगत) यह झूठ है । यह आकृति मनुष्य की नहीं हो सकती । (प्रकट) आप अकेले यहाँ क्यों आये हैं ?

अविमारक—(स्वगत) अब क्या कहूँ ? (मुंह नीचा कर लेता है)

विद्याधर---(स्वगत) अच्छा, मैं स्वयं ही जान लेता हूँ । (विद्या की आवृत्ति करता है) आह, बहुत कष्ट है । यह व्यक्ति नहीं जानता कि यह अग्निदेव का पुत्र है । इसे कुन्तिभोज-पुत्री कुरङ्गी से प्रेम हो गया है, उसके साथ यह विहार करता रहा, और भेद खुल जाने पर वहाँ से निकल भागा । फिर वहाँ प्रवेश करने के उपाय को न पाकर प्राण-त्याग की इच्छा से पर्वत

हारूढः। सापि च तत्र जीवन्मरणमनुभवति। अहमस्यास्मिन् कार्ये सहायो भविष्यामि। (प्रकाशम्) भो अविमारक! अच्छलं मित्रत्वं नाम। न शक्नोषि मया विदितमर्थं प्रच्छादयितुम्।

अविमारकः—उच्यताम्।

विद्याधरः—अद्यप्रभृत्यावयोः सख्यमस्तु। सकला च भवतोऽस्माभिरवस्था विदिता। प्राणपरित्यागार्थमिहारूढो भवान् ननु।

अविमारकः—वयस्य! एवमेतत्।

विद्याधरः—भोः! प्रीतोऽस्म्यनेन विस्रम्भेण यदि तत्राज्ञातमेवप्रवेष्टुं स्यादुपायः, किं करिष्यति भवान्।

अविमारकः—(सहर्षम्) किमन्यत्। अनुप्रवेक्ष्यामि। तदर्थो हि व्याक्षेपः।

विद्याधरः—तेन हि सखे! दृश्यतामंगुलीयम्। (इत्यङ्गुलीयकं दर्शयति)

अच्छलत्वम् = छलरहितत्वम्। प्रच्छादयितुम् = गोपयितुम्। सख्यम् = मैत्री। प्रतोऽस्मि = प्रसन्नोऽस्मि। विस्रम्भेण = विश्वस्तभावेन। व्याक्षेपः = उत्कण्ठा-

---

पर चढ़ा था। वह (कुरङ्गी) भी वहाँ जीते जी मृत्यु का अनुभव कर रही है। मैं इसके इस कार्य में सहायक होऊँगा। (प्रकट) अजी अविमारक! मित्रता में छल नहीं किया जाता। मैं जिस बात को जानता हूँ उसे तुम छिपा नहीं सकते।

अविमारक—कहिये।

विद्याधर—आज से हमारे-तुम्हारे बीच मैत्री हो गई। तुम्हारी सारी बातें मालूम हो गई हैं। तुम आत्महत्या करने के लिए ही पर्वत पर चढ़े हो।

अविमारक—मित्र! बात तो यही है।

विद्याधर—अजी! मैं तुम्हारे इस विश्वस्तभाव से प्रसन्न हूँ। यदि चोरी-छिपे वहाँ प्रवेश करने का कोई उपाय हो जाय तो तुम क्या करोगे?

अविमारक—(खुशी से) और क्या, वहाँ जाऊँगा। उसी के लिए तो यह दुर्दशा है।

विद्याधर—तो मित्र, इस अँगूठी को देखो। (अँगूठी दिखलाता है)

अविमारकः—वयस्य ! किमनेन प्रयोजनम् ।

विद्याधरः—एतदङ्गुलीयकं दक्षिणांगुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थः ।

अविमारकः—वयस्य ! एतदप्यस्ति ।

विद्याधरः—अयं ते प्रत्ययं करिष्यामि । वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—एवम् ।

विद्याधरः—अवहितो भव ।

अविमारकः—अवहितोऽस्मि ।

विद्याधरः—(दक्षिणांगुल्यां प्रक्षिप्य) वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—वयस्य ! छायापि न दृश्यते, किं पुनः शरीरम् । एते खलु लोके सुखिनो नाम ।

तिशयः । अदृश्यः = अन्येन द्रष्टुमशक्यः । प्रकृतिस्थः = स्वाभाविकदशायाम् स्थितः ।

अविमारक—मित्र, इससे क्या होगा ?

विद्याधर—इस अँगूठी को दायें हाथ की अंगुली में पहन लेने से व्यक्ति अदृश्य हो जाता है और बायें हाथ की अंगुली में पहनने से पुनः प्रकृतिस्थ हो जाता है ।

अविमारक—मित्र ऐसा भी है ?

विद्याधर—अभी तुझे विश्वास दिलाता हूँ । मित्र, क्या तुम मुझे देख रहे हो ?

अविमारक—हाँ ।

विद्याधर—सावधान हो जाओ ।

अविमारक—मैं सावधान हूँ ।

विद्याधर—(अंगूठी दायें हाथ में पहनकर) मित्र ! क्या तुम मुझे देख रहे हो ?

अविमारक—मित्र, छाया भी नहीं दिखाई पड़ रही है, शरीर की क्या बात ? संसार में ये ही तो सुखी हैं—

ये सञ्चरन्ति गगने वनितासहायाः
क्रीडन्ति पर्वततटेषु कृतोपदेशाः ।
सर्वं विदन्त्यपि च मन्त्रकृतैः प्रभावै-
रन्तर्हिताश्च विवृताश्च सुखं भ्रमन्ति ॥ १३ ॥

भवतु, प्रविष्ट एवास्म्यनेन ।

विद्याधरः—(वामांगुल्यां प्रक्षिप्य) तेन हि गृह्यतामंगुलीयकम् ।

अविमारकः—(प्रतिगृह्य) अनुगृहीतोऽस्मि ।

विद्याधरः—न न, अहमेवानुगृहीतः । कुतः,

न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकाङ्क्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ॥ १४ ॥

ये सञ्चरन्तीति । अन्वयः—ये, वनितासहायाः, गगने, सञ्चरन्ति, कृतोपदेशाः, पर्वततटेषु, क्रीडन्ति, मन्त्रकृतैः, प्रभावैः, सर्वम्, विदन्ति, सुखम्, अन्तर्हिताः, विवृताः, च, भ्रमन्ति ।

ये = विद्याधरादयः । वनितासहायाः = सपत्नीकाः । गगने = नभसि । सञ्चरन्ति = विचरन्ति । कृतोपदेशाः = कृतमन्त्रोपदेशाः । पर्वततटेषु = गिरिप्रदेशेषु । क्रीडन्ति = विहरन्ति । मन्त्रकृतैः प्रभावैः = मन्त्रजन्यशक्त्या । सर्वम् विदन्ति = सर्वम् वेदितव्यम् जानन्ति । सुखम् = यथेच्छम् । अन्तर्हिताः = अदृश्यमानाः । विवृताश्च = प्रकटितस्वरूपाश्च । भवन्ति = जायन्ते ॥ १३ ॥

अनुगृहीतोऽस्मि = कृतार्थोऽस्मि

न तथेति । अन्वयः—सुजनः, रत्नम्, आसाद्य, न, तथा, परितुष्यति, यथा, गताकांक्षे, पात्रे, तत्, दत्त्वा, प्रहृष्यति ।

ये अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आकाश में विचरण करते हैं, मन्त्रोपदिष्ट होकर ये पर्वतों पर विहार करते हैं, मन्त्र के प्रभाव से सब कुछ जान लेते हैं तथा इच्छानुसार जब चाहें गायब तथा प्रकट हो जाते हैं ॥ १३ ॥

अच्छा, इस अंगूठी की सहायता से प्रविष्ट तो हो ही गया हूँ ।

विद्याधर—(अंगूठी बायें हाथ में लेकर) अच्छा तो यह अँगूठी लीजिए ।
अविमारक—(लेकर) बड़ी कृपा हुई ।
विद्याधर—नहीं, नहीं, मैं ही अनुगृहीत हुआ । क्योंकि—
सज्जन व्यक्ति रत्न पाकर उतने प्रसन्न नहीं होते जितने कि उस रत्न

अविमारकः—एकस्तु मे संशयः। मम शरीरे परीक्षितुमिति वक्तुमसदृशमिव।

विद्याधरः—तेन हि प्रक्षिप दक्षिणांगुल्याम्।

अविमारकः—बाढम्। (तथा करोति)

विद्याधरः—वयस्य! गृह्यतामसिः।

अविमारकः—बाढम्। (खड्गं गृहीत्वा सविस्मयम्) अहो खड्गस्य प्रभावः।

प्रच्छन्नरूपस्त्वशनिः कथञ्चित्
खड्गीकृतः स्यात्तु तडित्कलापः।
निर्भर्त्सयन् सूर्यकृतां प्रदीप्तिं
वनं दवाग्निः सहसाभ्युपैति॥ १५॥

सुजनः = सत्पुरुषः। रत्नम् = मूल्यवद्वस्तुजातम्। आसाद्य = सम्प्राप्य न तथा = न तावत्। परितुष्यति = तृप्यति। यथा = यावत्। गताकांक्षे = निर्लोभे। पात्रे = जने। तत् = रत्नम्। दत्त्वा = समर्प्य। प्रहृष्यति = प्रसीदति॥ १४॥

प्रच्छन्नरूप इति। अन्वयः—प्रच्छन्नरूपः, अशनिः, कथञ्चित्, खड्गीकृतः, तडित्कलापः, स्यात्। सूर्यकृताम्, प्रदीप्तिम्, निर्भर्त्सयन्, दवाग्निः, सहसा, वनम् अभ्युपैति।

को किसी निर्लोभ पात्र के हाथ सौंप कर होते हैं॥ १४॥

अविमारक—मुझे एक सन्देह है। इसकी परीक्षा मेरे शरीर पर भी की जाती तो अच्छा होता।

विद्याधर—तो इसे दायें हाथ की अँगुली में पहन लो।

अविमारक—ठीक है। (वैसा करता है)

विद्याधर—मित्र यह तलवार लो।

अविमारक—अच्छी बात है। (तलवार लेकर आश्चर्यपूर्वक) अहा, खड्ग का कैसा अद्भुत प्रभाव है—

यह (खड्ग) छिपा हुआ वज्र है, या बिजली ही किसी प्रकार खड्ग में बदल गई है, या सूर्य-प्रभा को मन्द करती हुई दावाग्नि वन में फैल रही है॥ १५॥

विद्याधरः—अहो वीर्यमग्निपुत्रस्य। अस्य खड्गस्य प्रभावं विद्याधरेष्वपि कतिचित् सहन्ते। अग्निः खलु भगवानिमं रक्षति।

अविमारकः—(खड्गं दृष्ट्वा) अहो भगवतीनां विद्यानां प्रभावः।

दिव्यं स्वभावं समुपागतोऽस्मि
स एव नामास्मि गुणैर्विशिष्टः।
इदं यदा निर्गुणमर्त्यवृन्दै
र्न ज्ञायते चास्ति च मे शरीरम् ॥ १६ ॥

प्रच्छन्नरूपः = अदृश्यमानशरीरः। अशनिः = वज्रं स्यात्। कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण। खड्गीकृतः = असिभावं प्रापितः। तडित्कलापः = विद्युत्समूहः। स्यात् = भवेत्। सूर्यकृतां प्रदीप्तिम् = सूर्योद्भूताम् तीव्रप्रभाम्। निर्भर्त्संयन् = विनिन्दयन्। दवाग्निः = वनाग्निः। सहसा = हठात्। वनम् = अरण्यम्। अभ्युपैति = व्याप्नोति ॥ १५ ॥

वीर्यम् = पराक्रमः।

दिव्यं स्वभावमिति। अन्वयः—दिव्यम्, स्वभावम्, समुपागतः, अस्मि, स, एव, नाम, गुणैः, विशिष्टः, अस्मि, यदा, इदम्, मे, शरीरम्, निर्गुणमर्त्यवृन्दैः, न ज्ञायते, अस्ति, च।

दिव्यम् = देवोचितम्। स्वभावम् = प्रकृतिम्। समुपागतोऽस्मि = सम्प्राप्तोऽस्मि। स एव नाम गुणैः = अदृष्टिगोचरतोत्पादकैः प्रभावविशेषैः। विशिष्टः = युक्तः अस्मि नाम। यदा इदं मे शरीरम् = मम वपुः। निर्गुणमर्त्यवृन्दैः = सामान्यमनुष्यैः। न ज्ञायते। अस्ति च = किन्तु वर्त्तते। शरीरम् विद्यते किन्तु साधारणजनैः नैव दृश्यते इति भावः ॥ १६ ॥

विद्याधर—अहो, अग्निपुत्र का कैसा पराक्रम है ! इस खड्ग के प्रभाव को विद्याधरों में भी कुछ ही लोग सह सकते हैं। अग्निदेव ही इसकी रक्षा करते हैं।

अविमारक—(खड्ग देखकर) विद्याओं का भी क्या अद्भुत प्रभाव है ?

मैं दिव्य स्वभाव को प्राप्त हो चुका हूँ, मैं हूँ वही पर विशिष्ट गुणों से युक्त हो चुका हूँ। मेरा शरीर यद्यपि है, पर साधारण व्यक्ति इसे देख नहीं सकते ॥ १६ ॥

वयस्य ! कृतमस्मत्कार्यम् । गृह्यतामसिः ।

विद्याधरः—यदिष्टं भवतः । वयस्य ! अन्तर्हितश्चान्तर्हितस्पृष्टश्च तत्स्पृष्टश्चान्तर्हिता भवन्तीति निश्चयः ।

अविमारकः—सखे ! प्रीतोऽस्मि । अयमभ्युदयादभ्युदयः । सखे ! अस्मदपेक्षया विलम्बितमिति तर्कयामि । मा भूदिदानीं वेलातिक्रमः ।

विद्याधरः—प्रविष्टोऽस्मि, यथापृष्टो भवान् ।

अविमारकः—किं बहुना भाषितेन ।

विद्यावशानां तु भवद्विधानां
कोऽस्मद्विधः स्यात् प्रतिकर्तुकामः ।
क्रीतोऽस्म्यहं जीवितसम्प्रदानात्
प्रशाधि मां किं करवाणि भृत्यः ।। १७ ।।

वेलातिक्रमः = कालातिपातः । आपृष्टः = गमनानुमतिं याचितः ।

विद्यावशानामिति । अन्वयः—विद्यावशानाम्, भवद्विधानाम्, कः, अस्मद्विधः, प्रतिकर्तुकामः, स्यात् । अहम्, जीवितसम्प्रदानात्, क्रीतः, अस्मि, अहम्, भृत्यः, किम्, करवाणि, प्रशाधि ।

विद्यावशानाम् = सिद्धविद्यानाम् । भवद्विधानाम् = भवत्सदृशानाम् । कः अस्मद् विधः = मत्सदृशः । प्रतिकर्तुकामः = प्रत्युपकारं कर्त्तुमिच्छुः । न कोऽपी-

---

मित्र ! हमारा कार्य आपने कर दिया । यह अपना खड्ग लीजिये ।

विद्याधर—तुम्हारी जो इच्छा । मित्र, अंगूठी पहनने पर तुम स्वयं अदृश्य हो जाओगे । तुम जिसे छूते रहोगे वह भी अदृश्य होगा । वह जिसे छूता रहेगा वह भी अदृश्य होगा ।

अविमारक—मित्र मैं प्रसन्न हूँ । अभ्युदय पर अभ्युदय होता जा रहा है । मित्र, मेरे कारण आपको बहुत विलम्ब होगा, ऐसा मैं सोचता हूँ । अब अधिक समय नष्ट न करें ।

विद्याधर—आपने जब पूछ लिया तो अब हमें पहुँचा हुआ भी समझें ।

अविमारक—अधिक कहने से क्या—

आपको विद्या सिद्ध है, आप-जैसे लोगों का प्रत्युपकार मेरे-जैसा व्यक्ति भला क्या करेगा ? आपने जीवनदान द्वारा मुझे खरीद लिया है । मैं दास हूँ । आप आज्ञा करें कि मैं क्या करूँ ।। १७ ।।

विद्याधरः—जानाम्यहं भवतोऽच्छलां बुद्धिम् । यदि च भवानस्मद्वचनमनुवर्तते,

सख्यै मम प्रतिनिवेदय मामिमां च
त्वं मामनुस्मर सखे ! गतिरीक्ष्यतां मे ।
क्रीडारसैः प्रतिविलोभय राजपुत्रीं
कार्यान्तरेषु पुनरप्यहमस्मि पार्श्वे ।। १८ ।।

त्यर्थः । मादृशो विद्याविहीनो जनः भवादृशाम् विविधविद्यायुक्तानाम् प्रत्युपकाराय न समर्थं इति भावः । अहम् = अविमारकः । (भवता) जीवितप्रदानात् = जीवनदानात् । क्रीतः = स्वाधीनीकृतः । अस्मि । अहम् भृत्यः = दासः । किम् करवाणि = मया किं विधेयमिति । प्रशाधि = आज्ञापय । त्वमिति शेषः ।। १७ ।।

अच्छलाम् = निष्कपटाम् ।

सख्यै ममेति । अन्वयः—माम्, इमाम्, च, मम, सख्यै, प्रतिनिवेदय । सखे ! त्वम्, माम्, अनुस्मर, मे, गतिः, ईक्ष्यताम्, क्रीडारसैः, राजपुत्रीम्, प्रतिविलोभय, कार्यान्तरेषु, पुनः, अपि, अहम्, पार्श्वे, अस्मि ।

माम् = विद्याधरम् । इमां च = मम पत्नीं सौदामनीम् । मम सख्यै = कुरङ्ग्यै । प्रतिनिवेदय = कथय । आवयोर्विषये स्वप्रियाम् विज्ञापयेति भावः । त्वम् = अविमारकः । माम् अनुस्मर = सततं मम स्मरणं कुरु । मे गतिः = मम साम्प्रतिकी नभोयात्रा । ईक्ष्यताम् = विलोक्यताम् । क्रीडारसैः = प्रणयलीलोत्पन्नैरानन्दैः । राजपुत्रीम् = कुरङ्गीम् । प्रतिविलोभय = मुग्धां कुरु । कार्यान्तरेषु = अन्यविधेषु कार्येषु समुपस्थितेषु । पुनरपि = भूयोऽपि । अहम् = विद्याधरः । पार्श्वेऽस्मि = तव सविधे एवोपस्थितोऽस्मीत्येवमेव त्वयाऽनुभवितव्यमित्याशयः ।। १८ ।।

विद्याधर—मैं आपकी निष्कपट बुद्धि को जानता हूँ । यदि आप मेरी बात मानें तो—

आप अपनी प्रेयसी से मेरी तथा मेरी पत्नी सौदामनी की चर्चा करें, स्वयं मुझे स्मरण करते रहें, मेरी गति देखें, अपनी क्रीडाओं से राजकुमारी को मुग्ध करें एवं अन्य कार्यों के समय मुझे अपने पास ही उपस्थित जानें ।। १८ ।।

अहो पुरुषसारो हि नाम नेच्छति विसर्जयितुं मे मनः वयस्य! । गच्छामस्तावत् ।

अविमारकः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

विद्याधरः—बाढम् ।

(उत्थितो विद्याधरः सह प्रियया)

अविमारकः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष हि तत्रभवान् मेघनादो गगनार्णवमवगाढः । य एषः,

वातोद्धूताग्रकेशः सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः
सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः ।
वातोद्धूतोत्तरीयो मुकुटमणिगणैस्तारकाः सम्प्रमृद्नन् ।
श्रीमान् विद्याधरोऽसावुपरिगतिजवैः क्षीयमाणः प्रयाति ॥१९॥

पुरुषसारः=पुरुषश्रेष्ठः । विसर्जयितुम्=पृथक् भवितुम् । गगनार्णवम्=आकाशसमुद्रम् ।

वातोद्धूताग्रेति । अन्वयः—वातोद्धूताग्रकेशः, सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः, सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः, प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः, वातोद्धूतोत्तरीयः, मुकुटमणिगणैः, तारकाः, सम्प्रमृद्नन्, श्रीमान्, असौ, विद्याधरः, उपरिगतिजवैः, क्षीयमाणः, प्रयाति ।

वातोद्धूताग्रकेशः—वातेन=पवनेन, उद्धूताः = कम्पिताः, अग्रकेशाः=

ओह, इस पुरुष-श्रेष्ठ को छोड़ने को जी नहीं चाहता । मित्र, अब चलते हैं ।

अविमारक—अच्छा, जाइये, फिर दर्शन दीजियेगा ।

विद्याधर—अच्छी बात । (विद्याधर अपनी प्रिया के साथ उठता है)

अविमारक—(ऊपर देखकर) यह मेघनाद आकाश-सागर में पैठ गये । ये, इनके बाल हवा में लहरा रहे हैं, मेघ की कन्दरा में इनका शरीर कभी छिप जाता है एवं कभी दिखाई पड़ने लगता है, कमर में खड्ग अच्छी तरह बँधा हुआ है, प्रियतमा की भुजाओं से मध्यभाग आवेष्टित है, चादर हवा में उड़ रही है, मुकुट-मणियाँ तारों से घिस रही हैं, इस प्रकार यह शोभायुक्त विद्याधर ऊपर जाने के वेग से प्रतिक्षण क्षीणदर्शन होता जा रहा है ॥ १९ ॥

इयमपि विद्याबलेन प्रियमनुवर्तते। यैषा,

जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी
स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या।
वियति दयितदत्तपूर्वकाया
तडिदिव तोयधरेषु दृष्टनष्टा ॥ २० ॥

केशाग्रभागाः यस्य स तथोक्तः। सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः—सलिलधरः=पयोधरः, तस्य दरीभिः=कन्दराभिः, मृष्टः=विलुप्तः, दृष्टश्च=दृष्टिगोचरश्च, अङ्गरागः=कालवर्णो यस्य तादृशः। सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः=यस्य असिकक्ष्या=खड्गपरिकरः सम्यक्तया बद्धा, तथाभूतः। प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः=प्रियतमाभुजालिङ्गितमध्यभागः। वातोद्धूतोत्तरीयः=वायुप्रकम्पिताधोवस्त्रः। मुकुटमणिगणैः=मुकुटरत्नसमूहैः। तारकाः=नक्षत्राणि। सम्प्रमृद्नन् सङ्कर्षयन्। श्रीमान्=अतिशोभायुक्तः। असौ विद्याधरः=एष देवयोनिविशेषः। उपरिगतिजवैः=ऊर्ध्वगमनवेगैः। क्षीयमाणः=क्षीणदर्शनः। प्रयाति=गच्छति। स्रग्धरावृत्तम् ॥ १९ ॥

जवशिथिलेति। अन्वयः—जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी, स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या, वियति, दयितदत्तपूर्वकाया, तोयधरेषु, तडिदिव, दृष्टनष्टा।

जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी—जवेन=वेगेन, शिथिलाः=श्लथबन्धनाः, विमुक्ताः=लम्बमानाश्च पार्श्वकेशाः यस्याः सा तथाभूता। स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या=कुचतटचलनश्रान्तशून्यमध्यभागा। वियति=नभसि। दयितदत्तपूर्वकाया—दयिताय=स्वामिने, दत्तः=दयितोपरि न्यस्तः, पूर्वकायः=शरीरस्य पूर्वभागो यया सा तथोक्ता। एवं तथा सति तोयधरेषु=मेघेषु।

यह सौदामनी भी विद्या के बल से प्रियतम का अनुगमन कर रही है। यह, वेग के कारण इसके पार्श्व-केश बिखर गये हैं, स्तनतट के काँपते रहने से इसका मध्यभाग श्रान्त एवं शून्य हो गया है, आकाश में जाकर इसने अपने शरीर का पूर्वभाग प्रियतम की गोद में डाल दिया है, इस प्रकार वह मेघ के बीच बिजली-सी लग रही है जो क्षण भर में दीखती है और तुरन्त ही विलीन-सी हो जाती है ॥ २० ॥

गतस्तत्रभवान् मेघनादः । अहमप्यद्यैव नागराभिमुखो भविष्यामि । यावदवतरामि । (अवतीर्य) परिश्रान्त इवास्मि । भवतु, एतस्मिन् शिलातले मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यामि । (उपविशति ।)

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अहो तत्तहोदो सुगहीदणामहेअस्स सोवीरराअस्स अधण्णदा, जाए चिरं अपुत्तो भविअ अत्तणो णिअमविसेसेण देव्वप्पसादेण अ माणुसलोअदुल्लभं सुपुत्तं लभिअ पुणो वि तादिसो एव संवुत्तो । सव्वहा मम अ समत्तजीविददाए बन्धुजणस्स अधण्णदाए परिब्भट्ठो कुमारो । (परिक्रम्य) अज्ज खु तत्तहोदीए भणिदं—खेमेण गदो कुमारो त्ति । अहव को एत्थ जाणादि अदिसुउमारो राअउमारो एआई वम्महेण अमितालिअमाणो परिब्भट्ठो कुसलो होदि त्ति । अहं वि कुमारं वा कुमारस्स सरीरं वा पेक्खिस्सामि दाव सव्वलोअं परिब्भमिअ । जदि ण पेक्खामि, तत्तहोदो परत्त सहाओ होमि । परिस्सन्तो खु अहं । भोदु, एदस्सिं पादपिच्छाआअं मुहुत्तअं विस्समिअ गमिस्सं । (स्वपिति) [अहो तत्रभवतः सुगृहीतनामधेयस्य सौवीरराजस्याधन्यता, यया चिरमपुत्रो भूत्वात्मनो नियमविशेषेण दैवप्रसादेन च मानुषलोकदुर्लभं सुपुत्रं लब्ध्वा पुनरपि तादृश एव संवृत्तः । सर्वथा मम च समाप्तजीविततया बन्धुजन-

---

तडिदिव = विद्युल्लतेव । दृष्टनष्टा = तत्काल एव दृष्टा सत्यनुपदमेव नष्टा = विलीना विभाति ।। २० ।।

तत्रभवतः = वन्दनीयस्य । सुगृहीतनामधेयस्य = प्रसिद्धनाम्नः । अधन्यता = भाग्यहीनता । नियमविशेषेण = तपश्चर्याविशेषेण । दैवप्रसादेन = सौभाग्येन ।

पूज्य मेघनाद चले गये । मैं भी आज ही नगर की ओर चलता हूँ । उतरता हूँ (उतरकर) थक गया हूँ । अच्छा, इसी चट्टान पर थोड़ी देर विश्राम कर आगे चलूँगा । (बैठता है)

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—हमारे ख्यातनामा सौवीरराज का यह दुर्भाग्य ही है कि बहुत दिनों तक पुत्रहीन रहकर नियमविशेषों एवं दैवकृपा से अतिमानव सुपुत्र को पाकर पुनः पुत्रहीन ही हो गये । मेरा जीवन समाप्त हो जाने से एवं

स्याधन्यतया परिभ्रष्टः कुमारः। अद्य खलु तत्रभवत्या भणितं—क्षेमेण गतः कुमार इति। अथवा कोऽत्र जानाति अतिसुकुमारं राजकुमार एकाकी मन्मथेनाभिताड्यमानः परिभ्रष्टः कुशलो भवतीति। अहमपि कुमारं वा कुमारस्य शरीरं वा प्रेक्षिष्ये तावत् सर्वलोकं परिभ्रम्य। यदि न प्रेक्षे, तत्रभवतः परत्र सहायो भवामि। परिश्रान्तः खल्वहम्। भवतु, एतस्यां पादपच्छायायां मुहूर्तकं विश्रम्य गमिष्यामि।]

अविमारकः—का नु खलु सन्तुष्टस्यावस्था। सुष्ठु भवेद् यदि मे निर्गमनं तेन श्रुतं, न श्रुतं चेद् विपत्स्यते स ब्राह्मणः। अथवा किं मम सर्वारम्भैस्तेन विना। स हि,

गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः
शोके गुरुः साहसिकः परेषु।

क्षेमेण गतः = सकुशलं प्रस्थितः। मन्मथेनाभिताड्यमानः = कामदेवेन पीड्यमानः। पादपच्छायायाम् = वृक्षच्छायायाम्। विपत्स्यते = विपत्तिग्रस्तो भविष्यति। सर्वारम्भैः = सकलैरपि कार्यैः।

गोष्ठीषु हास्य इति। अन्वयः—गोष्ठीषु, हास्यः, समरेषु, योधः, शोके, गुरुः, परेषु, साहसिकः, मे, हृदि, महोत्सवः, प्रलापैः, किम्, मे, शरीरम्, खलु, द्विधा, विभक्तम्।

बंधुओं के अभाग्य से कुमार खो गये हैं। आज महारानी ने कहा है कि कुमार सकुशल गये हैं। अथवा कौन जानता है कि अति सुकोमल राजकुमार असहायावस्था में कामपीडित होकर भी सकुशल ही होंगे। मैं भी निकल पड़ा हूँ। सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमकर कुमार को या कुमार के शरीर को देखकर ही रहूँगा। यदि न देख सका तो परलोक में कुमार का सहायक बनूँगा। थक गया हूँ। अच्छा इसी पेड़ की छाया में थोड़ा विश्राम करके जाऊँगा।

(सोता है)

अविमारक—सन्तुष्ट की क्या अवस्था है ? अच्छा होता, यदि मेरे निकल आने का समाचार उसे ज्ञात हो जाता। यदि नहीं ज्ञात हुआ होगा तो वह ब्राह्मण मुसीबत में पड़ जायगा। फिर उसके बिना मेरे इन प्रयासों का क्या फल ? वह—

समाज में हास्यकर, युद्ध में योद्धा, शोककाल में गुरु, शत्रुओं के समक्ष

महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापै-
र्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ।। २१ ।।

(सर्वतो विलोक्य) अये, को नु खलु च्छायायामध्वगः प्रसुप्तः। (उपेत्य) अभ्युदयो मे हृदयस्य यदृच्छया गतः। त्वरते मे मनः परिष्वङ्क्तुमेनम्।

विदूषकः—(बुद्ध्वा) चिरं खु सुत्तम्हि। जाव गच्छामि। को विस्समो णाम विब्भट्ठमणोरहाणं। (परिक्रम्याविमारकं विलोक्य) कहं तत्तभवं अविमारओ। [चिरं खलु सुप्तोऽस्मि। यावद् गच्छामि। को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम्। कथं तत्रभवान् अविमारकः।]

अविमारकः—अये वयस्यः सन्तुष्टः।

(उभौ परिष्वजेते)

विदूषकः—(उच्चैर्विहस्य) भो वअस्स! कहेहि कहेहि एत्तिअं कालं किं तुए किदं। [भो वयस्य! कथय कथयैतावन्तं कालं किं त्वया कृतम्।]

गोष्ठीषु=जनसम्पर्केषु। हास्यः=हास्यकरः। समरेषु=युद्धेषु। योधः=योद्धा। शोके=खेदसमये। गुरुः=सान्त्वनादायकः। परेषु=अरिषु, प्राप्तेषु। साहसिकः=साहसोत्पादकः। मे=मम। हृदि=हृदये। महोत्सवः=महान् प्रहर्षः। किं प्रलापैः=अनावश्यकभाषणैः किं फलम्। स हि मम सखा विदूषकः द्विधा विभक्तं मे शरीरम्=मम द्वितीयम् शरीरमिव वर्तते इति भावः ।। २१ ।।

अध्वगः=पथिकः। प्रसुप्तः=निद्रामग्नः। परिष्वङ्क्तुम्=आलिङ्गितुम्। विभ्रष्टमनोरथानाम्=नष्टाभिलाषाणाम्।

साहसी और मेरे हृदय का महोत्सवरूप है। अधिक क्या, वह तो दो भागों में विभक्त मेरा शरीर ही है ।। २१ ।।

(चारों ओर देखकर) अरे, इस छाया में कौन पथिक सोया हुआ है? (समीप जाकर) मेरे हृदय का आनन्द तो स्वयं ही आ गया है। इसे गले से लगाने के लिए मेरा मन उतावला हो रहा है।

विदूषक—(जगकर) बहुत देर तक सोता रहा, अब जाता हूँ। विफल मनोरथ व्यक्तियों के लिए क्या विश्राम? (चलकर अविमारक को देखकर) क्यों, यह मेरे अविमारक हैं?

अविमारक—अरे, यह तो मेरा मित्र सन्तुष्ट है। (दोनों गले लगते हैं)

विदूषक-(हंसकर)अरे मित्र,यह कहो,इतने समय तक तुम क्या करते रहे?

अविमारकः—वयस्य ! एतत् कृतम् । (अंगुलीयकं दक्षिणांगुल्यां प्रक्षिप्य तिरस्कृतः ।)

विदूषकः—हा हा कहिं कहिं तत्तभवं । कहं ण दिस्सदि । आ तस्सिं गदाए चिन्ताए तं विअ पेक्खामि । अहव फुडीकरिस्सं । भो वअस्स ! सावेण साविदो सि, जदि अत्ताणं छादेसि । [हा हा, क्व क्व तत्रभवान् । कथं न दृश्यते । आ तस्मिन् गतया चिन्तया तमिव पश्यामि । अथवा स्फुटीकरिष्यामि । भो वयस्य ! शापेन शापितोऽसि, यद्यात्मानं छादयसि ।]

अविमारकः—वयस्य ! अयमस्मि ।

विदूषकः—कहिं कहिं सि । [क्व क्वासि ।]

अविमारकः—(वामांगुल्यामंगुलीयकं प्रक्षिप्य) वयस्य ! अयमस्मि ।

विदूषकः—पुढमं सुद्धो अविमारओ, दाणिं माआविमारओ संवुत्तो । एवं माआवित्तअ ! किस्स तुवं कण्याउरे पच्छण्णरूवो ण चरसि । [प्रथमं शुद्धोऽविमारकः इदानीं मायाविमारकः संवृत्तः । एवं मायावित्तक ! कस्मात् त्वं कन्यापुरे प्रच्छन्नरूपो न चरसि !]

अविमारकः—वयस्य ! इदानीं खल्वेतदुपलब्धम् ।

मायावित्तक = मायाकुशल ।

अविमारक—मित्र, यही किया है (अंगूठी को दायें हाथ में डालकर गायब हो जाता है)

विदूषक—हा, हा, अरे कहाँ गया मेरा मित्र ? वह दीखता क्यों नहीं । उसी की चिन्ता करते रहने के कारण हर जगह उसी की छाया दीखती है । अथवा सफाई कर लूँगा । अरे मित्र, मैं शाप दे दूँगा यदि तुम छिपे रहे ।

अविमारक—मित्र, यहीं तो हूँ ।

विदूषक—कहाँ, कहाँ हो ?

अविमारक—(अंगूठी को बायें हाथ में डालकर) मित्र, यहीं तो हूँ ।

विदूषक—पहले तो शुद्ध अविमारक ही थे, अब मायावी अविमारक हो गये हो । अरे माया-प्रवीण ! अब तुम कन्यापुर में छिपकर क्यों नहीं विचरण किया करते हो ?

अविमारक—मित्र, अभी तो यह मिला है ।

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं। कुदो दाणिं एदस्स आगमो। [आश्चर्यमाश्चर्यम्। कुत इदानीमेतस्यागमः]

अविमारकः—सर्वमन्तःपुरे कथयिष्यामि।

विदूषकः—सम्पदि बुभुक्खिदो सि। [संप्रति बुभुक्षितोऽसि।]

अविमारकः—वैधेय ! शीघ्रमागच्छ प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय। नैवायं हस्तो मोचयितव्यः।

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं। अहं पि दाव अदिस्सो। मम सरीरं अत्थि वा णत्थि वा। उच्छिट्ठं करिस्सं। थु थु। [आश्चर्यमाश्चर्यम्। अहमपि तावददृश्यः। मम शरीरमस्ति वा नास्ति वा। उच्छिष्टं करिष्यामि। थु थु।]

अविमारकः—मूर्ख ! अलमलं विलम्बितेन। त्वरते मे मनः कान्तादर्शनाय। (आकर्षति)

विदूषकः—ण मे सद्धा। [न मे श्रद्धा।]

अविमारकः—हन्त: भोजनवेलां प्रतिपालयामि।

वैधेय = मूर्ख ! प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय = मायाबलेन गुप्तरूपत्वप्राप्तये। मोचयितव्यः = त्यक्तव्यः। उच्छिष्टं करिष्यामि = थूत्कारं करिष्यामि। त्वरते = शीघ्रतां करोति। कान्तादर्शनाय = प्रियावलोकनाय। प्रतिपालयामि = प्रतीक्षे।

विदूषक—आश्चर्य है, आश्चर्य ! अभी यह कहाँ से मिला ?

अविमारक—सारी बातें अन्तःपुर में बताऊँगा।

विदूषक—अभी क्या भूखे हो ?

अविमारक—मूर्ख ! जल्दी आओ, अदृश्य होने के लिए। मेरा हाथ मत छोड़ना।

विदूषक—आश्चर्य है, आश्चर्य ! मैं भी अदृश्य हो गया। मेरा शरीर है या नहीं। थूकूंगा।

अविमारक—मूर्ख ! देर मत करो। प्रियतमा से मिलने के लिए मेरा मन उतावला हो रहा है।

विदूषक—मुझे श्रद्धा नहीं हो रही है।

अविमारक—हाय, भोजन के समय भी प्रतीक्षा करता हूँ।

विदूषकः—कञ्चि कालं विस्समिअ गमिस्सामो। [कंचित् कालं विश्रम्य गमिष्यावः।]

अविमारकः—किं न स्मरति मां कुरंगी।

विदूषकः—किण्णु खु जीवदि णग्गन्धस्समणिआ। [किं नु खलु जीवति नग्नान्धश्रमणिका।]

अविमारकः—वयस्य ! याचे भवन्तं, शीघ्रमागम्यताम्।

विदूषकः—किस्स तुवं किदसमावुत्तो वडुओ विअ तुवरसि। [कस्मात् त्वं कृतसमावर्तो बटुक इव त्वरसे।]

अविमारकः—मूर्ख ! इतस्तावत्।

विदूषकः–मा कड्ढेहि, अअं अणुधावामि। [मा कर्ष, अयमनुधावामि।]

अविमारकः—[परिक्रम्य] एतन्नगरम्।

विदूषकः—पेक्खामि दाव णअरस्स सोहं। [पश्यामि तावन्नगरस्य शोभाम्।]

नग्नान्धश्रमणिका = संन्यासिनी नग्ना अन्धा च यथा स्यात्तथा। कृत-समावर्तः = सम्पादितसमावर्तनसंस्कारः। बटुक इव = माणवक इव। त्वरसे = शीघ्रतां कुरुषे।

विदूषक—कुछ देर विश्राम करके चलूँगा।

अविमारक—क्या कुरङ्गी मुझे याद नहीं करती है ?

विदूषक—क्या वह नग्ना संन्यासिनी जीवित भी है ?

अविमारक—मित्र, प्रार्थना करता हूँ, जल्दी आओ।

विदूषक—क्यों तुम समावर्तन किये गये बटुक की तरह जल्दीबाजी कर रहे हो।

अविमारक—मूर्ख, इधर चलो।

विदूषक—अरे खींचो मत। चल तो रहा हूँ।

अविमारक—(चलकर) यही नगर है।

विदूषक—तब तक मैं नगर की शोभा देखता हूँ।

अविमारकः—इदं राजकुलं ।

एतन्नरेन्द्रभवनं निशि जातशङ्को
यत् साहसं समुपलभ्य तथा प्रविष्टः ।
भूयस्तदेव दिवसे सुसहायमायो
वृन्दं सतामिव पटुः प्रविशाम्यशङ्कः ॥ २२ ॥

(परिक्रम्य) इदानीं प्रासादे स्नातयाभ्यन्तरस्थया कुरंग्या भवितव्यम् ।

विदूषकः—जहिं वा तहिं वा पविसामो । अदिक्कमदि भिक्खवेला । (यत्र वा तत्र वा प्रविशावः । अतिक्रामति भिक्षावेला ।)

अविमारकः—एहि तावदभ्यन्तरमेव प्रविशावः (प्रविश्य) इह हि,

एतन्नरेन्द्रेति । अन्वयः—एतत्, नरेन्द्रभवनम्, यत्, निशि, जातशङ्कः, तथा, साहसम्, समुपलभ्य, प्रविष्टः, भूयः, तदेव, दिवसे, सुसहायमायः, अशङ्कः, सताम्, वृन्दम्, पटुः, इव, प्रविशामि ।

एतत् = इदम् । नरेन्द्रभवनम् = राजप्रासादः । यत् = यत्राहम् । निशि = रात्रौ । जातशङ्कः = शङ्कमानः । तथा = तादृशम् । साहसम्, समुपलभ्य = कृत्वा । प्रविष्टः = प्रवेशं कृतवान् । भूयः = पुनः । तदेव = तदेवेदम् राजकुलम् यत्रेदानीम् । दिवसे = दिवाप्रकाशे । सुसहायमायः = मायायाः साहाय्यमवाप्य । अशङ्कः = निर्भयो भूत्वा । सतां वृन्दम् = सज्जनसमूहम् । पटु इव = चतुरो जन इव प्रविशामि । यथा चतुरो जनः सज्जनमण्डलं निःशङ्कभावेन प्रविशति तथैवाहं दिवस एव मायाबलेन राजकुलम् प्रविशामीति भावः ॥ २२ ॥

अविमारक—यही राजकुल है,

यही वह राजभवन है जहाँ पहले मैंने रात में भयभीत होकर प्रवेश किया था । आज उसी राजभवन में माया की सहायता से मैं दिन-दहाड़े बिलकुल निडर होकर उसी प्रकार प्रवेश कर रहा हूँ जिस प्रकार सज्जन मण्डली में निपुण व्यक्ति प्रवेश करता है ॥ २२ ॥

(चलकर) अभी कुरङ्गी छत पर नहाकर बैठी होगी ।

विदूषक—जहाँ-तहाँ पैठ चलो । भिक्षा का समय बीत रहा है ।

अविमारक—चलो भीतर ही चलें (प्रवेशकर) यहाँ—

पुरे गृहे वापि पुरा सुखोषितै-
मनस्विभिर्दुर्लभचिन्तयागतैः ।
पुनः कृतार्थैर्मुदितान्तरात्मभिः
सुखं प्रवेष्टुं सविशेषकर्मभिः ॥ २३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

चतुर्थोऽङ्कः ।



पुरे गृहे वेति । अन्वयः—पुरे, गृहे, वा, अपि, सुखोषितैः, दुर्लभचिन्तयाऽऽगतैः, मनस्विभिः, पुनः, कृतार्थैः, मुदितान्तरात्मभिः, सविशेषकर्मभिः, सुखम्, प्रवेष्टुम् ।

पुरे = नगरे । गृहे = राजभवने वापि । पुरा = पूर्वम् । सुखोषितैः = सुखपूर्वं कृतवासैः । दुर्लभचिन्तयाऽऽगतैः = अप्राप्यवस्तुनः प्राप्तेरिच्छया समायातैः । मनस्विभिः = दृढनिश्चयैः पुनः । कृतार्थैः = सफलमनोरथैः । मुदितान्तरात्मभिः = प्रसन्नचित्तैः । सविशेषकर्मभिः = विशेषकार्यवशात् समागतैः जनैः । सुखं प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्त्तुम् सुखकरम् ॥ २३ ॥

इति कमलेश्वरी टीकायां चतुर्थोऽङ्कः ।



नगर में या घर में सुखपूर्वक वास करने वाले, दुर्लभ वस्तु की इच्छा से दृढ़निश्चयी, सफल मनोरथ एवं प्रसन्न व्यक्ति आसानी से प्रवेश कर पाते हैं ॥ २२ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥

पञ्चमोऽङ्कः

(तत प्रविशति कुरङ्गी नलिनिका च)

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं सन्दावेण । कण्णाउरप्पासादं आलुहिअ दिट्ठिविलोभणं करिस्सामो । [भर्तृदारिके ! अलं सन्तापेन । कन्यापुरप्रासादमारुह्य दृष्टिविलोभनं करिष्याव: ।]

कुरङ्गी—हला ! किं तुए मम हिअअं परिञ्ञादं । एत्थ हि अजाणन्तेण परिजणेण मम परितोसणिमित्तं बउलसरलसज्जज्जुणकदम्बणीवणिउलप्प हुदीणि मेहकालवल्लहाणि परमसुरहीणि आणीअमाणाणि मं उम्मादअन्ति । अह अ इमे मोरा अम्हाअराअउलमाणसे अदिपीठमद्दभावं करन्ति । अम्हेहि सददलालिदा वि अदेसकालञ्ञदाए अत्तणा अहिरूञ्ञभाव दंसेदि । सुअसारिआ वि वक्खाणं एवं कहेदुं आरद्धा । मम णिव्वेदभावं अजाणन्ती भूदिअसारिआ वि सव्वलोअवुत्तन्तं कहइस्सामि त्ति आअदा । मम रोआवत्थं पुच्छिदुं आअदा परिजणा मं णिव्वन्धिअ णिवेदेदि । ता इच्छामि मुहुत्तअं पासादे अच्छिदुं । [हला ! किं त्वया मम हृदयं परिज्ञातम् । अत्र ह्यजानता परिजनेन मम परितोषनिमित्तं बकुलसरलसर्जार्जुनकदम्बनीपनिचुलप्रभृतीनि मेघकालवल्लभानि परमसुरभीण्या-

---

ततः प्रविशतीति । दृष्टिविलोभनम्=नयनानन्दजनकवस्तुदर्शनेन मनोविनोदम् । अजानता=मम व्यथाभिरपरिचितेन । परितोषनिमित्तम्=सान्त्वनार्थम् । बकुलम्=केसरम् । सरलः=देवद्रुमः । अर्जुनः=पार्थः । निचुलः=वेतसः । नीपः=

(कुरङ्गी तथा नलिनिका का प्रवेश)

नलिनिका—राजकुमारी ! सन्ताप न करें । चलिये, कन्यापुर-प्रासाद पर चलकर आँखों को आनन्दित करें ।

कुरङ्गी—सखी, तुमने मेरे हृदय को क्या समझ रखा है ? मेरी अन्तर्दशा से अपरिचित परिजन मेरे सन्तोषार्थ, बकुल, सरल, सर्ज, अर्जुन,

नीयमानानि मामुन्मादयन्ति । अथ चेमे मयूरा अस्माकं राजकुलमानसे अतिपीठमर्दभावं कुर्वन्ति । अस्माभिः सततलालिता अप्यदेशकालज्ञतयात्मनोऽधिकज्ञभावं दर्शयति । शुकसारिकापि व्याख्यानमेव कथयितुमारब्धा । मम निर्वेदभावमजानन्ती भूतकसारिकापि सर्वलोकवृत्तान्तं कथयिष्यामीत्यागता । मम रोगावस्थां प्रष्टुमागतः परिजनो मां निर्बंध्य निवेदयति । तदिच्छामि मुहूर्तकं प्रासादे आसितुम् ।]

नलिनिका—ज भट्टिदारिआए रुइदं । होदु । [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम् । भवतु ।]

(उभे आरोहतः)

कुरङ्गी—हला एत्थ वि महन्ता अणत्थो उट्ठिदो विज्जुप्पदीवं धारिअ कालमेहो । [हला ! अत्रापि महाननर्थं उत्थितः विद्युत्प्रदीपं धृत्वा । कालमेघः ।]

कदम्बः । मेघकालवल्लभानि = वर्षाकालमनोहराणि । परमसुरभीणि = अतिसुगन्धितानि । मामुन्मादयति = मम वैक्लव्यं वर्द्धयन्ति । सततलालिता = निरन्तरपालिता । अदेशकालज्ञतया = देशकालयोर्ज्ञानं यद्यपि नास्ति तथापि । अधिकज्ञभावम् = बहुज्ञताम् । निर्वेदभावम् = खेदम् । निर्बंध्य = हठात् । आसितुम् = उपवेष्टुम् ।

कदम्ब आदि अत्यन्त सुगन्धित एवं वर्षाकाल में मनोहर लगने वाले फूल लाकर मुझे और अधिक बेचैन कर देते हैं । ये मयूर हमारे कन्यापुर में पीठमर्द का काम करते हैं । मैंने इन्हें हमेशा पाला है । देश-काल के ज्ञान से शून्य होने पर भी ये अपनी अधिकज्ञता प्रकट करते हैं । यह सारिका व्याख्यान प्रारम्भ कर देती है । मेरे खेद को न जानती हुई यह भूतिक सारिका भी मानो सम्पूर्ण संसार का वृत्तान्त सुनाने आ गई है । मेरी रोगावस्था को जानने जो भी दासी आती है वह मुझे बाध्य करके कुछ कह जाती है । इसलिए मैं कुछ देर प्रासाद पर बैठना चाहती हूँ ।

नलिनिका—राजकुमारी को जो अच्छा लगे वही हो ।

(दोनों प्रासाद पर चढ़ती हैं)

कुरङ्गी—सखी, यहाँ तो महान् अनर्थ उठ खड़ा हुआ है, यह बिजली का दीपक लेकर कालमेघ उपस्थित है ।

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं उक्कण्ठिदेण पेक्ख पेक्ख णवसलिलधररुद्धसुय्यं पविरलजलणिवाददस्सणीअं गअणअलं । [भर्तृदारिके अलमुत्कण्ठितेन । पश्य पश्य नवसलिलधररुद्धसूर्यं प्रविरलजलनिपातदर्शनीयं गगनतलम् ।]

कुरङ्गी—पेक्खामि अ रमणीअं आआसं । [पश्यामि च रमणीयमाकाशम् ।]

(ततः प्रविशत्यविमारको विदूषकश्च)

अविमारकः—वयस्य ! दृष्टा सा कुरङ्गी । यैषा,

रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा
विमुक्तभूषा गतहावभावा ।
विभाति निर्व्याजमनोहराङ्गी
वेदश्रुतिर्हेतुविवर्जितेव ॥ १ ॥

कालमेघः = कृष्णवर्णो मेघः । नवसलिलधररुद्धसूर्यम् = नवजलधरतिरोहितभानुम् । प्रविरलजलनिपातदर्शनीयम् = अल्पवृष्टिरमणीयम् ।

रोगादिति । अन्वयः—रोगात्, अकालागुरुचन्दनार्द्रा, विमुक्तभूषा, गतहावभावा, निर्व्याजमनोहराङ्गी, हेतुविवर्जिता, श्रुतिः, इव, विभाति ।

रोगात् = मनःक्लेशात् । अकालगुरुचन्दनार्द्रा = कालागुरुचन्दनलेपेन या आर्द्रता तद्रहिता । विमुक्तभूषा = परित्यक्ताखिललङ्करणा । गतहावभावा = दूरीकृतसमस्तविलासा । निर्व्याजमनोहराङ्गी = अव्याजरमणीयशरीरा । हेतुविवर्जिता = तर्कविद्याविहीना । श्रुतिरिव = वेदा इव । विभाति = शोभते ॥१॥

नलिनिका—राजकुमारी, उत्कण्ठित न हो देखो, नवीन मेघों ने सूर्य को छिपा दिया । झीनी-झीनी वर्षा पड़ रही है । आकाश कितना अच्छा लग रहा है ।

कुरङ्गी—रमणीय आकाश को मैं देख रही हूँ ।

(अविमारक तथा विदूषक का प्रवेश)

अविमारक—मित्र ! कुरङ्गी को देखा जो,

रोगवश जिसने चंदन का लेप नहीं किया है, आभूषणों को उतार फेंका है, सारे हाव-भाव छोड़ दिये हैं, फिर भी इसका शरीर निश्छल सुन्दर है, जिस प्रकार तर्कविद्या से रहित वेदशास्त्र अच्छा लगता है ॥ १ ॥

विदूषकः—भो ! तुट्टो म्हि । तुवं खु सव्वलोए अहं सुरूवो त्ति अत्ताणं ओअरसि । जिदो दाणि तत्तहोदीए सहावरमणीएण रूवेण । चिन्तेमि भवदो विओएण इअ तणुआ जादा । एवं पि एसा बालचन्दलेहा विअ दिट्ठिं तोसेदि । [भोः ! तुष्टोऽस्मि ! त्वं खलु सर्वलोकेऽहं सुरूप इत्यात्मानमाचरसि । जित इदानीं तत्रभवत्याः स्वभावरमणीयेन रूपेण । चिन्तयामि भवतो वियोगेनेयं तनुका जाता । एवमप्येषा बालचन्द्रलेखेव दृष्टिं तोषयति ।]

अविमारकः—सखे ! अतिपण्डित इव किमेतत् ।

विदूषकः—भो ! णिच्चपरिचएण मं परिहससि । अपुव्वो जणो मम बुद्धिं अजाणन्तो अहिअदरं पसंसेदि । अहं पि तं जाणिअ एदस्सिं णअरे केण वि विस्सम्भं ण करेमि । [भोः ! नित्यपरिचयेन मां परिहससि । अपूर्वो जनो मम बुद्धिमजानन्नधिकतरं प्रशंसति । अहमपि तद् ज्ञात्वैतस्मिन्नगरे केनापि विस्रम्भं न करोमि ।]

अविमारकः—अलमौदासीन्येन । बहुजनपरिवारतया न लब्धः क्षणः कान्तां प्रबोधयितुम् । तदिदानीं प्रासादगतामपि तत्रैव तां

तनुका = तन्वी । तोषयति = आह्लादयति । अतिपण्डित इव = आत्मानं महापण्डितं मन्यमानः । विस्रम्भम् = विश्वासम् । बहुजनपरिवारतया = बहुजनपरिवृतत्वेन । प्रबोधयितुम् = कथयितुम् ।

विदूषक—अजी, मैं प्रसन्न हूँ । तुम अपने को समस्त संसार का सुन्दरतम पुरुष समझते थे, पर उसके रमणीय रूप से तुम पराजित हो गये हो । मैं सोचता हूँ कि यह तुम्हारे विरह में दुबली हो गई है, फिर भी बालचन्द्र की किरण के समान यह आँखों को सुख पहुँचाती है ।

अविमारक—अरे महापण्डित, यह क्या है ?

विदूषक—अजी, अतिपरिचय के कारण तुम मेरा उपहास करते रहते हो । अपरिचित व्यक्ति मेरी बुद्धि को नहीं जानता है, इसलिए मेरी भूरी-भूरी प्रशंसा करता रहता है । मैं भी इस भेद को समझ गया हूँ और इसीसे किसी के साथ परिचय नहीं बढ़ाता हूँ ।

अविमारक—उदास होने की बात नहीं । बहुत व्यक्तियों से घिरे रहने के कारण प्रियतमा को समझाने का अवसर ही नहीं मिला । अभी वह

बोधयिष्यावः ।

विदूषकः—सुट्ठु भवं भणादि । पासादं आलुहामो । [सुष्ठु भवान् भणति । प्रासादमारोहावः ।]

अविमारकः—सखे ! प्रयत्नादारोढव्यं यथा तथा न प्रवर्तते प्रासादशब्दः ।

विदूषकः—भो ! ण सक्कं एदं । को सकदि उच्छिट्ठं णकरन्तो भुञ्जिदुं । अहं एत्थ चिट्ठामि । तुवं एव आलुह । [भोः ! न शक्यमेतत् । कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् । अहमत्र तिष्ठामि । त्वमेवारोह ।]

अविमारकः—यदि विमुञ्चे, दृश्यते भवान् ।

विदूषकः—भो ! विस्मरिदं खु मए एदं । पुणो पुणो कहेहि । [भोः ! विस्मृतं खलु मयैतत् । पुनः पुनः कथय ।]

अविमारकः—इतस्तावत् । (आरुह्यावलोक्य) सखे ! इयमस्मत्कान्ता शिलातले नलिनिकया सहास्ते । यैषा,

सव्ये करे समुपवेश्य मुखं सुदीनं
कालं मनोभवसहायममृष्यमाणा ।

आस्ते = उपविष्टा वर्तते ।

सव्ये करे इति । अन्वयः—सुदीनम्, मुखम्, सव्ये, करे, समुपवेश्य, मनोभवसहायम्, कालम्, अमृष्यमाणा, अलोलदृष्टिः, बाष्पम्, निवारयितुम्, ऊर्ध्वम्, अवेक्षमाणा, व्यग्रा, किञ्चित्, विचिन्तयति ।

प्रासाद पर गयी है, वहीं उसे तुम्हारे विषय में समझा दूँगा ।

विदूषक—आप ठीक कहते हैं । हमलोग प्रासाद पर चलें ।

अविमारक—मित्र; ऐसे प्रयास से चढ़ो कि सीढ़ी पर आवाज न हो ।

विदूषक—अजी, यह सम्भव नहीं है । बिना जूठा किए कौन खा सकता है ? मैं यहीं रहता हूँ, तुम ही चढ़ो ।

अविमारक—यदि मैं छोड़ दूँगा तो तुम दीखने लगोगे ।

विदूषक—अरे यह तो मैं भूल ही गया था । फिर कहो क्या करूँ ?

अविमारक—इधर आओ, (चढ़कर तथा देखकर) मित्र, यह मेरी प्रियतमा नलिनिका के साथ चट्टान पर बैठी है ।

उदास मुँह को बायें हाथ पर रखकर, कामदेव के सहायक स्वरूप इस

व्यग्रा विचिन्तयति किञ्चिदलोलदृष्टि-
र्बाष्पं निवारयितुमूर्ध्वमवेक्षमाणा ॥ २ ॥

कुरङ्गी—(स्वगतम्) किं एदेण जीवन्मरणेण । (प्रकाशम्) णलिणिए ! गच्छ मा अधिअं आणेहि उवण्हाणेण । [किमेतेन जीवन्मरणेन । नलिनिके ! गच्छ मागधिकामानयोपस्नानेन ।]

नलिनिका—एआइणि भट्टदारिअं उज्झिअ कहं गमिस्सं । ण हु एत्थ को वि जणो । [एकाकिनीं भर्तृदारिकामुज्झित्वा कथं गमिष्यामि । न खल्वत्र कोऽपि जनः ।]

(प्रविश्य)

हरिणिका—जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए ! भट्टिणी भणादि—सम्पदि कीदिसी सीसवेदणत्ति । एदं वि ओसधं लिम्पेहि किल । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! भट्टिनी भणति–सम्प्रति कीदृशी शीर्षवेदनेति । एतदप्यौषधं लिम्प किल ।]

सुदीनम् मुखम् = दुःखातिशयेनोदासीनमाननम् । सव्ये करे = वामहस्ते । समुपवेश्य = धारयित्वा । मनोभवसहायम् = कामदेवसुहृदम् । कालम् = वर्षाकालम् । अमृष्यमाणा = असहन्ती । अलोलदृष्टिः = अचंचलनेत्रा । बाष्पं निवारयितुम् = अश्रुप्रवाहं रोद्धुम् । ऊर्ध्वम् = उपरि । अवेक्षमाणा = अवलोकयन्ती । व्यग्राः = व्याकुलचित्ता । किञ्चित् विचिन्तयति = शोचति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २ ॥

उपस्नानेन = स्नानप्रसाधनेन सहेति भावः । उज्झित्वा = त्यक्त्वा । शीर्ष-

---

वर्षाकाल को सहन करने में अक्षम, व्यग्रता के साथ एवं स्थिर दृष्टि से कुछ सोच रही है । आँसुओं को रोकने के लिए ही यह ऊपर की ओर देख रही है ॥ २ ॥

कुरङ्गी—(स्वगत) इस जीवन्मरण से क्या ? (प्रकट) नलिनिके ! जाओ, स्नानोपकरण के साथ मागधिका को बुला लाओ ।

नलिनिका—अकेली राजकुमारी को छोड़कर कैसे जाऊँगी ? यहाँ कोई है भी नहीं ?

(प्रवेश करके)

हरिणिका—जय हो राजकुमारी की । राजकुमारी जी ! महारानी ने पूछा है कि अब सिरदर्द कैसा है ? यह औषधि भी लगा लेने को कहा है ।

कुरङ्गी—णलिणिए ! गच्छ दाणि तुवं । तक्केमि देवो वरिसिदुं आरद्धो । अहं इच्छामि अहिणवेण आआसतोएण ण्हादुं । ता तुवारेहि उवण्हाणं । [नलिनिके ! गच्छेदानीं त्वम् । तर्कयामि देवो वर्षितुमारब्धः । अहमिच्छाम्यभिनवेनाकाशतोयेन स्नातुम् । तत् त्वरयोपस्नानम् ।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

अविमारकः—किन्तु खल्वनया व्यवसितम् ।

कुरङ्गी—हला ! एहि दाव ! [हला एहि तावत् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि । [भर्तृदारिके ! इयमस्मि ।]

कुरङ्गी-हला ! णं सीदलं दे सरीरं । [हला ! ननु शीतलं ते शरीरम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! ण जाणामि । [भर्तृदारिके ! न जानामि ।]

कुरङ्गी-हला ! एहि परिस्सजेहि मं । [हला ! एहि परिष्वजस्व माम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! तह । (परिष्वजते) [भर्तृदारिके ! तथा ।]

कुरङ्गी—हला ! अदिसीदलं मणोहरं च दे सरीरं । [हला ! अतिशीतलं मनोहरं च ते शरीरम् ।]

वेदना = शिरःपीडा । लिम्प = लेपं कुरु । देवो वर्षितुमारब्धः = वृष्टिः प्रारब्धा । आकाशतोयेन = वृष्टिवारिणा । त्वरय = शीघ्रमानय । व्यवसितम् = कर्त्तुमिच्छितम् ।

कुरङ्गी—नलिनिके, अब तुम जाओ । लगता है, मेघ बरसने लगा । मैं वर्षा की बूंदों से ही नहाना चाहती हूँ । इसलिए स्नानोपकरण जल्दी ले आओ ।

नलिनिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा ।

अविमारक—यह क्या करना चाहती है ।

कुरङ्गी—सखी, इधर आओ तो ।

नलिनिका—राजकुमारी, यहीं तो हूँ ।

कुरङ्गी—सखी, तुम्हारा शरीर ठण्डा है ।

नलिनिका—राजकुमारी, मैं नहीं जानती हूँ ।

कुरङ्गी—सखी, आओ, मुझसे लिपट जाओ ।

नलिनिका—राजकुमारी, अच्छी बात । (आलिङ्गन करती है ।)

कुरङ्गी—सखी, तुम्हारा शरीर बहुत ही शीतल और मनोहर है ।

नलिनिका—अणुग्गहीदम्हि । [अनुगृहीतास्मि ।]

कुरङ्गी—हला ! सम्पदि णस्सदि विअ मे सरीरदाहो । (स्वगतम्) हन्त किदो सहिप्पणओ । समत्तो अ अज्ज एदाए सरीरसंसग्गो । (प्रकाशम्) गच्छ दाणि तुवं । [हला ! सम्प्रति नश्यतीव मे शरीरदाहः । हन्त कृतः सखीप्रणयः । समाप्तश्चाद्यैतस्याः शरीरसंसर्गः गच्छेदानीं त्वम् ।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

हरिणिका—भट्टिदारिए । भट्टिणीए किं णिवेदेमि । [भर्तृदारिके ! भट्टिन्यै किं निवेदयामि ।]

कुरङ्गी—अज्ज विअदरोआ सोत्था होदि त्ति । [अद्य विगतरोगा स्वस्था भवतीति ।]

हरिणिका—कहं तुए विञ्ञादं ति पुच्छिदा किं विण्णवेमि । [कथं त्वया विज्ञातमिति पृष्टा किं विज्ञापयामि ।]

कुरङ्गी—सुट्ठु तुए विञ्ञादं । एदेण ओसधविसेसेण त्ति भणेहि । [सुष्ठु त्वया विज्ञातम् । एतेनौषधविशेषेणेति भण ।]

हरिणिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

नलिनिका—मैं अनुगृहीत हुई ।

कुरङ्गी—सखी, अब मेरे शरीर का ताप दूर हुआ (स्वगत) हाय, सखी के प्रति स्नेह तो कर लिया, अब इसके शरीर का संसर्ग नहीं प्राप्त हो सकेगा (प्रकट) अब तुम जाओ ।

नलिनिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा । (निकल जाती है)

हरिणिका—राजकुमारी ! महारानी से क्या कहूँगी ?

कुरङ्गी—कह देना कि आज स्वस्थ एवं नीरोग हो गई ।

हरिणिका—यदि पूछें कि तुमने कैसे जाना, तो क्या कहूँगी ?

कुरङ्गी—तुमने ठीक समझा । कहना कि इसी दवा से ठीक हो गई ।

हरिणिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा ।(जाती है ।)

अविमारकः—किन्नु खल्वनया व्यवसितम् ।

उष्णं श्वसिति तन्वङ्गी सर्वतः प्रेक्षते मुहुः ।
नेत्राभ्यां बाष्पपूर्णाभ्यां किन्नु कर्तुं व्यवस्थिता ॥ ३ ॥

कुरङ्गी—होदु, उत्तरीअवासेण अत्ताणं उब्बन्धिअ वावादइस्सं । (उत्थाय तथा कुर्वती मेघस्तनितं श्रुत्वा) हं परित्ताआहि परित्ताआहि मं । [भवतु, उत्तरीयवाससात्मानमुद्बध्य व्यापादयिष्यामि । हं परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

अविमारकः—सखे ! न शक्यमतः परमुपेक्षितुम् । (अंगुलीयकं वामांगुल्यां प्रक्षिप्य) कान्ते ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । (इति कुरङ्गीमुत्थापयति)

कुरङ्गी—(सहर्षम्) किण्णु खु सच्चं एदं । मूढा विअ जादा । [किन्नु खलु सत्यमेतत् । मूढेव जाता ।]

उष्णं श्वसितीति । अन्वयः—तन्वङ्गी, उष्णम्, श्वसिति, मुहुः, बाष्पपूर्णनेत्राभ्याम्, सर्वतः, प्रेक्षते, किन्नु, कर्त्तुम्, व्यवस्थिता ।

तन्वङ्गी = इयं कृशाङ्गी कुरङ्गी । उष्णं श्वसिति = वेदनावस्थायां यथा श्वासो गृह्यते तथैव श्वासं गृह्णाति । मुहुः = वारं वारम् । बाष्पपूर्णनेत्राभ्याम् = अश्रुपूर्णनयनाभ्याम् । सर्वतः = चतुर्षु दिक्षु । प्रेक्षते = पश्यति । किन्नु कर्तुम् व्यवस्थिता = अनयावस्थया न ज्ञायते यदियं किञ्चिकीर्षतीति भावः ॥ ३ ॥

उत्तरीयवाससा = ऊर्ध्ववस्त्रेण । उद्बध्य = गलं बध्वा । व्यापादयिष्यामि = आत्मानं घातयिष्यामि, मेघस्तनितम् = मेघगर्जनम् ।

अविमारक—यह क्या करना चाहती है—

यह कृशाङ्गी गरम-गरम साँस ले रही है, आँसू से भरे नेत्रों से बार-बार चारों ओर देख रही है, न जाने यह क्या करना चाह रही है ॥ ३ ॥

कुरङ्गी—अच्छा, इसी उत्तरीय से फन्दा लगाकर मर जाती हूँ । (उठकर फन्दा लगाती है । मेघ-गर्जन सुनकर) हाय, बचाओ, मुझे बचाओ ।

अविमारक—सखे, अब और अधिक उपेक्षा नहीं की जा सकती । (अंगूठी को बायें हाथ में डालकर) प्रिये ! मत डरो, मत डरो । (कुरङ्गी को उठाता है)

कुरङ्गी—(सहर्ष) क्या यह सच है ! मैं तो मूच्छित-सी हो रही हूँ ।

अविमारकः—कान्ते ! व्यपनीयतां शङ्का । (परिष्वजते)

कुरङ्गी—अच्छरीअं । एकक्खणेण णस्सदि विअ मे सरीरदाहो । [आश्चर्यम् । एकक्षणेन नश्यतीव मे शरीरदाहः]

अविमारकः—अयं खल्वस्याः परिष्वङ्गः,

सततपरिचितो मनोभियोगा-
दधिकरसः प्रथमात् समागमात् ।
रणशिरसि नृपेण साहसाद्यो
विजय इवाद्य मयानुभूयते ॥ ४ ॥

विदूषकः—कहं रोदिदुं आरद्धा । अलं अदिमत्तं सन्दावेण । अहव अहं वि रोदामि । एक्कं पि तहिं दुल्लहं मम णअणादो बप्फं ण

व्यपनीयताम् शङ्का = दूरीक्रियताम् भयम् । परिष्वङ्गः = आलिङ्गनम् ।

सततपरिचित इति । अन्वयः—मनोभियोगात्, सततपरिचितः, प्रथमात्, समागमात्, अधिकरसः, यः, अद्य, नृपेण, रणशिरसि, साहसात्, विजय, इव, मया, अनुभूयते ।

मनोभियोगात् = पारस्परिकमनोमेलनात् । सततपरिचितः = सर्वदानुभूतपूर्वः । प्रथमात्समागमादपि = पूर्वकृताऽऽलिङ्गनादपि । अस्याः कुरङ्ग्याः स्पर्शः । अधिकरसः = अधिकानन्ददायकः । सञ्जायते इति शेषः । यः = स्पर्शः । अद्य = इदानीम् । नृपेण = केनचित् राज्ञा । रणशिरसि = संग्रामभूमौ । साहसात् विजय इव मयानुभूयते = यथा कश्चित् राजा साहसपूर्वकं विजयमवाप्य हृष्यति तथैवाहम् कुरङ्ग्याः आलिङ्गनमासाद्य इदानीम् पूर्वापेक्षया समधिकमाह्लादमनुभवामीत्याशयः ॥ ४ ॥

अविमारक—प्रिये ! शङ्का दूर करें । (आलिङ्गन करता है)

कुरङ्गी—आश्चर्य ! एक ही क्षण में मेरे शरीर की जलन समाप्त हो गई ।

अविमारक—इसका यह आलिङ्गन,

सदा का परिचित होकर मनोयोग होने के कारण पूर्व के आलिङ्गनों की अपेक्षा अधिक आनन्ददायक प्रतीत हो रहा है जैसे रणक्षेत्र में किसी राजा को साहस द्वारा प्राप्त विजय अधिक आनन्ददायक लगती है ॥ ४ ॥

विदूषक—यह रोने क्यों लगी ? सन्ताप करना बेकार है । अथवा मैं

णिग्गच्छइ। जदा मे पिदा उवरदो, तदा वि महन्तेण आरम्भेण रोदिदुं आरद्धो। बप्फं ण णिग्गच्छइ किं पुण अण्णसन्दावस्स। तह वि अणुस्सुओ रोदामि। [कथं रोदितुमारब्धा। अलमतिमात्रं सन्तापेन। अथवा अहमपि रोदिमि। एकमपि तत्र दुर्लभं मम नयनाद् बाष्पं न निर्गच्छति। यदा मे पितोपरतस्तदापि महतारम्भेण रोदितुमारब्धः। बाष्पं न निर्गच्छति। किं पुनरन्यसन्तापस्य। तथाप्यनुत्सुको रोदिमि।]

अविमारकः—अलमुत्प्रहसितेन। अच्छलो हि स्नेहो नाम।

न ते न बुद्धिर्मम दूषणीया
येन प्रकामं भवितास्मि हास्यः।
प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ॥ ५ ॥

उपरतः=स्वर्गं गतः। महतारम्भेण=उच्चैः स्वरेण। अनुत्सुकः=औत्सुक्यविरहितः। उत्प्रहसितेन=विशिष्टहास्येन। अच्छलः=व्याजरहितः।

न ते इति। अन्वयः—न, ते, न, मम, बुद्धिः, दूषणीया, येन, प्रकामम्, हास्यः, भविता, अस्मि। कार्ययोगे, प्राज्ञस्य, मूर्खस्य, च, तनुः, समत्वम्, अभ्येति, न बुद्धिः।

न ते=न तव। न मम बुद्धिः=नापि मदीया मतिः। दूषणीया=निन्दनीया। येन=यस्मात्कारणात्। प्रकामम् हास्यः भवितास्मि=उपहासपात्रो भवेयम्। कार्ययोगे=कर्मसिद्धौ। प्राज्ञस्य=बुद्धिमतः। मूर्खस्य=अज्ञस्य। च तनुः=शरीरम्। समत्वम्=समभावम्। अभ्येति=प्राप्नोति। न तु बुद्धिः ॥ ५ ॥

भी रोता हूँ। मुश्किल तो यह है कि मेरी आँखों में आँसू आते ही नहीं। जब मेरे पिताजी मरे थे तब मैंने जोरों से रोना प्रारम्भ किया था पर तब भी आँसू नहीं निकले दूसरे सन्तापों की क्या बात? फिर भी शान्त भाव से रोता हूँ।

अविमारक—हँसने की आवश्यकता नहीं है। मैत्री में छल नहीं किया जाता।

तुम मेरी बुद्धि को दोषी नहीं ठहरा सकते जिससे मैं उपहासास्पद होता। बुद्धिमान् और मूर्ख की, कार्यसिद्धि में शरीर का समान योग होता है, बुद्धि समान नहीं होती ॥ ५ ॥

(प्रविश्य)

नलिनिका—हरिणिए ! हरिणिए ! । कहं दुवारं रुद्धं । हद्धि दुवारणिरोहेण अवअदसन्दावं अत्ताणं करिस्सदि त्ति तक्केमि । हरिणिए ! हरिणिए ! । हद्धि तं एव संवुत्तं । [हरिणिके ! हरिणिके ! । कथं द्वारं रुद्धम् । हा धिग् द्वारनिरोधेनापगतसन्तापमात्मानं करिष्यतीति तर्कयामि । हरिणिके ! हरिणिके ! हा धिग् तदेव संवृत्तम् ।]

अविमारकः—नलिनिकाया इव स्वरः । वयस्य ! विघाटयतां द्वारम् ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (विघाटय) एदु एदु भोदी । [यद् भवानाज्ञापयति । एत्वेतु भवती ।]

नलिनिका—हं की दाणिं एसो पुरिसो । [हं क इदानीमेष पुरुषः]

विदूषकः—सुट्ठु विञ्आदं तुए । अहो राअउलस्स विसेसो । को अण्णो जणो मं पेक्खिअ पुरिसो त्ति भणादि । इत्थिआ खु अहं । [सुष्ठु विज्ञातं त्वया । अहो राजकुलस्य विशेषः । कोऽन्यो जनो मां प्रेक्ष्य पुरुष इति भणति । स्त्री खल्वहम् ।]

अविमारकः—नलिनिके ! प्रविशेदानीम् ।

द्वारनिरोधेन = कपाटपिधानेन । अपगतसन्तापम् = विगतदुःखम् । तदेव संवृत्तम् = तदेव अभूत् ।

(प्रवेश करके)

नलिनिका—हरिणिके ! हरिणिके ! अरे, दरवाजा तो बन्द है । हाय, दरवाजा बन्द करके तू अपने को गत-सन्ताप करना चाहती है । हाय, आखिर वही हुआ !

अविमारक—यह तो नलिनिका की आवाज मालूम पड़ रही है । मित्र, दरवाजा खोलो ।

विदूषक—जो तुम्हारी आज्ञा । (दरवाजा खोलकर) आइये, आइये ।

नलिनिका—अरे, यहाँ यह कौन पुरुष है ?

विदूषक—आपने ठीक पहचाना । राजकुल की यही विशेषता है । दूसरा कौन व्यक्ति मुझे देखकर पुरुष कह सकता है; मैं तो औरत हूँ ।

अविमारक—नलिनिके ! आओ ।

नलिनिका—कहं भट्टिदारिओ । भट्टिदारअ ! वन्दामि । भट्टिदारअ ! को एसो पुरिसो । [कथं भर्तृदारकः ! भर्तृदारक ! वन्दे । भर्तृदारक ! क एष पुरुषः ।]

विदूषकः—अहं पुक्खरिणी णाम चेडी । [अहं पुष्करिणी नाम चेटी ।]

अविमारकः—योऽस्माभिः सदा कथ्यते सन्तुष्ट इति,सोऽयं ब्राह्मणः ।

नलिनिका—आ दिट्ठपुरुवो णअरापणालिन्दे अअं बम्हणो । [आ दृष्टपूर्वो नगरापणालिन्देऽयं ब्राह्मणः]

विदूषकः—आम भोदि । जण्णोपवीदेण बह्मणो, चीवरेण रत्तपडो । जदि वत्थं अवणेमि, समणओ होमि । भोदि ! किं एदं । [आम भवति ! यज्ञोपवीतेन ब्राह्मणः, चीवरेण रक्तपटः यदि वस्त्रमपनयामि श्रमणको भवामि । भवति ! किमेतत् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिआए उवण्हाणं [भर्तृदारिकाया उपस्नानम्]

विदूषकः—किं एदिणा बुभुक्खिदाए रोदन्तीए अत्तहोदीए उवण्हाणेण कय्यं । गच्छ सिग्घं भोअणं आणेहि । अहं अग्गासणीओ होमि । [किमेतेन बुभुक्षिताया रुदन्त्या अत्रभवत्या उपस्नानेन कार्यम् । गच्छ शीघ्रं भोजनमानय । अहमग्राशनीयो भवामि ।]

नगरापणालिन्दे = नगरस्य कुत्रचित् बाह्यभागे । चीवरेण = वस्त्रखण्डेन । श्रमणकः = बौद्धभिक्षुः । अग्राशनीयः = भोजनात् पूर्वं गृहस्थेन यदन्नं

नलिनिका—कौन राजकुमार ! राजकुमार को नमस्कार है । राजकुमार यह कौन पुरुष है ?

विदूषक—मैं पुष्करिणी नाम की दासी हूँ ।

अविमारक—जिस सन्तुष्ट की चर्चा हम बराबर किया करते थे, वही ब्राह्मण यह है ।

नलिनिका—इस ब्राह्मण को तो नगर के आपण में मैंने पहले भी देखा था ।

विदूषक—हाँजी, यज्ञोपवीत से ब्राह्मण हूँ, कपड़े से रक्त पटधारी योगी हूँ। यदि कपड़ा उतार दूँ तो बौद्ध-भिक्षु बन सकता हूँ। यह क्या बात है जी ?

नलिनिका—यही है, राजकुमारी का स्नानोपकरण ।

विदूषक—भूख से रोती हुई यह राजकुमारी इस स्नानोपकरण को लेकर क्या करेगी? जाओ,जल्दी से भोजन लाओ । मैं उसमें से पहले थोड़ा पा लूँगा ।

नलिनिका—दुब्बम्हण ! एदं पि भोअणं चिन्तेसि। सव्वं दाव चिट्ठदु । कहं दिअसे अणेअपुरुससम्पादे राअमग्गे भट्टिदारओ पविट्ठो। [दुर्ब्राह्मण ! एतदपि भोजनं चिन्तयसि । सर्वं तावत् तिष्ठतु । कथं दिवसेऽनेक-पुरुषसम्पाते राजमार्गे भर्तृदारकः प्रविष्टः]

अविमारकः—सर्वं भवत्यै सन्तुष्टः कथयिष्यति ।

नलिनिका—विसज्जिदम्हि इमिणा बहुमाणवअणेण। भोदु, इमं गह्णिअ चउस्सालं पविसिअ गोट्ठीजणेण सह वुत्तन्तं सुणामि । एहि बम्हण ! (इत्याकर्षति ।) [विसर्जितास्म्यनेन बहुमानवचनेन । भवतु, इमं गृहीत्वा चतुःशालं प्रविश्य गोष्ठीजनेन सह वृत्तान्तं श्रृणोमि । एहि ब्राह्मण ! ।]

विदूषकः—अब्बम्हणं अब्बम्हण्णं । [अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् ।]

कुरङ्गी—हस्सो खु अअं बम्हणो । [हास्यः खल्वयं ब्राह्मणः ।]

अविमारकः—वयस्य ! हास्यः खलु भवान् ।

विदूषकः—को एत्थ मम अस्सद्धअं भणादि । अहं ण हस्सो, तत्त-होदी एव हस्सा । जा अत्तणा अवत्थ जाणिअ किं पि कत्तुं ववसिअ मेहसद्दं सुणिअ सव्वं विसुमरिअ पडिदा । [कोऽत्र ममाश्रद्धेयं भणति ।

ब्राह्मणादिभ्यो दातुं पृथक् क्रियते तद्भोक्ता । अनेकपुरुषसम्पाते = बहुजनसंकुले । विसर्जिता = अनुज्ञां प्राप्ता । बहुमानवचनेन = सम्मानवचसा । अश्रद्धेयम् =

नलिनिका—अभागा ब्राह्मण, यहाँ भी भोजन की ही सोचता है । छोड़ो इन सारी बातों को । दिन में जब राजमार्ग पर बहुत से लोग वर्त्तमान थे, राजकुमार ने किस प्रकार यहाँ प्रवेश किया ?

अविमारक—प्रसन्न होने पर यह सन्तुष्ट तुम्हें सारी बातें बतला देगा ।

नलिनिका—इन सम्मानयुक्त वचनों से यह मुझे यहाँ से टरका देना चाहते हैं । अस्तु ! इसे लेकर चतुःशाल में जाती हूँ और वहाँ बैठकर सखियों के साथ सारी बातें सुनूँगी । आओ ब्राह्मण-देवता ।

विदूषक—अनर्थ हो गया, अनर्थ हो गया ।

कुरङ्गी—यह ब्राह्मण बड़ा हँसोड़ है ।

अविमारक—मित्र, क्या तुम हँसोड़ हो ?

विदूषक—कौन मेरे बारे में ऐसा कह सकता है ? मैं नहीं, यह कुरङ्गी

अहं न हास्यः, तत्रभवत्येव हास्या । यात्मनोऽवस्थां ज्ञात्वा किमपि कर्तुं व्यवस्य मेघशब्दं श्रुत्वा सर्वं विस्मृत्य पतिता ।]

कुरङ्गी—ह एदं पि इमेहि दिट्ठं । [हम् एतदप्याभ्यां दृष्टम् ।]

नलिनिका—याचेमि अहं । इदो एहि बम्हण ! [याचेऽहम् । इत एहि ब्राह्मण ! ।]

विदूषकः—जइ भोअणं देसि, तदो गच्छामि अहं । इट्ठं आअन्तुअस्स भोअणदाणं । [यदि भोजनं ददासि, ततो गच्छाम्यहम् । इष्टमागन्तुकस्य भोजनदानम् ।]

नलिनिका—एहि मे सव्वाभरणं देसि । [एहि मे सर्वाभरणं ददामि ।]

विदूषकः—णहि घिदवअणेण पित्तं णस्सदि । मम हत्थगदं करेहि । [नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति । मम हस्तगतं कुरु ।]

नलिनिका—एवं होदु । (आभरणान्यवमुच्य ददाति) [एवं भवतु ।]

विदूषकः—सुणादि होदी । [शृणोतु भवती ।]

नलिनिका—मूढ ! बह्मण ! चउस्साले उवविसिअ गोट्ठीजणेण सह सुणामि । [मूढ ! ब्राह्मण ! चतुःशाल उपविश्य गोष्ठीजनेन सह शृणोमि ।]

अविश्वसनीयम् । याचे = प्रार्थये । घृतवचनेन = घृतशब्दोच्चारणमात्रेण ।

ही हँसोड़ है । कहाँ तो वह अपनी वियोगावस्था में ऊबकर कुछ करने जा रही थी पर मेघ का शब्द सुनते ही सब कुछ भूलकर गिर पड़ी ।

कुरङ्गी—क्या यह भी इन लोगों ने देख लिया ?

नलिनिका—मैं प्रार्थना करती हूँ ब्राह्मण-देवता, आप इधर चलिए ।

विदूषक—यदि भोजन दो तो चलूँगा । आगन्तुक को भोजन अवश्य देना चाहिए ।

नलिनिका—आइये, मैं अपने सारे आभूषण देती हूँ ।

विदूषक—घी का नाम ले लेने से पित्त शान्त नहीं होता । मेरे हाथ में दे ।

नलिनिका—यही हो । (गहने उतार कर देती है)

विदूषक—सुनिये ।

नलिनिका—मूर्खब्राह्मण ! चतुःशाल में बैठकर सखियों के साथ सुनूँगी ।

विदूषकः--तत्तहोदीं पुच्छिअ आअच्छामि। [तत्रभवतीं पृष्ट्वागच्छामि।]

नलिनिका--को तुवं, मम सव्वाभरणं गह्णिअ बल्लहो जादो। एहि दाव। (विदूषकं हस्ते गृह्णाति।) [कस्त्वं, मम सर्वाभरणं गृहीत्वा वल्लभो जातः। एहि तावत्।]

विदूषकः--भोदि ! मा मा एवं। अदिसुउमारो खु अहं। [भवति ! मा मैवम्। अतिसुकुमारः खल्वहम्।]

नलिनिका--जाणामि जाणामि दे सुउमारत्तणं। जइ सुउमारो, सिग्घं एहि। [जानामि जानामि ते सुकुमारत्वम्। यदि सुकुमारः शीघ्रमेहि।]

विदूषकः--भोदि ! अअं आअच्छामि। [भवति ! अयमागच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ।)

अविमारकः-प्रिये ! पश्य पश्य परमदर्शनीयान् प्रावृट्कालवल्लभान् कालमेघान्। इमे हि,

जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजम्भका वज्रभृद्गृष्टयो
भगणयवनिकास्तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूता नभोमार्गरूढक्षुपाः।

वल्लभो जातः=प्रियः संवृत्तः। प्रावृट्कालवल्लभान्=वर्षाकाले ये प्रियाः तान्। कालमेघान्=श्यामपयोदान्।

जलदसमयेति। अन्वयः—जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजम्भकाः, वज्रभृद्गृष्टयः, भगणयवनिकाः, तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूताः, नभोमार्गरूढ-

---

विदूषक—राजकुमारी को पूछ कर आता हूँ।

नलिनिका—तुम कौन होते हो पूछने वाले ? मेरे सारे गहने लेकर मालिक बन गये हैं। आओ इधर। (विदूषक का हाथ पकड़ती है)

विदूषक—अरी, इस तरह मत खींचो। मैं बहुत सुकुमार हूँ।

नलिनिका—जानती हूँ, जानती हूँ तुम्हारी सुकुमारता को। सुकुमार हो तो जल्दी आओ।

विदूषक—भद्रे ! यह आ रहा हूँ। (दोनों जाते हैं)

अविमारक—प्रिये, देखो इन परमदर्शनीय वर्षाकालिक मेघों को।

ये काले बादल ऐसे लगते हैं मानों वर्षा ऋतु के आने की सूचना दे रहे हों, इन्द्र की गायें हों, ग्रह-नक्षत्रों के छिपने के लिए पर्दे हों, बिजली रूप सर्पिणी के निवास-स्थान स्वरूप वल्मीक हों, आकाशमार्ग में उत्पन्न होने

मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपाला गिरिस्नापनाम्भोघटाः
उदधिसलिलभैक्षहारा रवीन्द्वर्गला देवयन्त्रप्रपा भान्ति नीलाम्बुदाः॥६॥

कुरङ्गी—अय्यउत्त ! दस्सणीआ दाणिं संवुत्ता । [आर्यपुत्र ! दर्शनीया इदानीं संवृत्ताः ।]

अविमारकः—अहो विपुलता विरलता धाराणाम् । तथाहि,

क्षुपाः, मदनशरनिशानशैलाः, प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः, गिरिस्नापनाम्भोघटाः, उदधिसलिलभैक्षहारा, रवीन्द्वर्गलाः, देवयन्त्रप्रपाः, नीलाम्बुदाः, भान्ति ।

जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजम्भकाः—जलदसमयस्य = वर्षाकालस्य, घोषणायाः = सूचनायाः, यः डम्बरः = आडम्बरः, तत्र या अनेकरूपाः क्रियाः = नानाविधानि कर्माणि, तासाम् जम्भकाः = प्रवर्तयितारः । वज्रभृद्गृष्टयः = इन्द्रस्य गावः, भगणयवनिकाः = नक्षत्राणामावरणकराः । तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूताः—तडित् = विद्युत् एव पन्नगी = सर्पिणी, तस्याः वासे = निवासे, वल्मीकभूताः = वामलूरक्षेत्रसमाः । नभोमार्गरूढक्षुपाः—नभोमार्गे = आकाशवर्त्मनि, रूढाः = उत्पन्नाः, क्षुपाः = क्षुद्रवृक्षाः। मदनशरनिशानशैलाः—मदनशराणाम् = कामदेवबाणानाम्, निशाने = तीक्ष्णीकरणे, शैलाः = शिलाराशिभूताः । प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः—प्ररुष्टानाम् = क्रुद्धानाम्, अङ्गनानाम् = रमणीनाम्, सन्धिपालाः = प्रियैः सह सन्धिविधायिनः । गिरिस्नापनाम्भोघटाः —गिरीणाम् = पर्वतानाम्, स्नापने = सेचने, अम्भोघटाः = जल-कलशाः । उदधिसलिलभैक्षहाराः = समुद्रजलभिक्षाग्राहिणः, रवीन्द्वर्गलाः = सूर्यचन्द्रमसोः पिधानसाधनभूताः । देवयन्त्रप्रपाः = देवैः प्रवर्तिताः यन्त्रचालिताः जलशालाः । अमी नीलाम्बुदाः = श्याममेघाः । भान्ति = शोभन्ते । दण्डकभेदो वृत्तम् ॥ ६ ॥

विपुलता विरलता = क्षणेऽधिकता, क्षणे न्यूनता चेत्यर्थः ।

वाले क्षुद्रवृक्ष हों, काम के बाणों को तीखा करने वाले पत्थर हों, क्रुद्ध वनिताओं का पतियों के साथ सन्धि कराने वाले हों, पर्वत-सेचन के लिए जल-कलश हों, समुद्र से जल की भिक्षा मांगने वाले हों, सूर्य तथा चन्द्रमा को छिपाने वाले कपाट हों, या देवों द्वारा प्रवर्तित यन्त्र-चालित जलशालायें हों ॥ ६ ॥

कुरङ्गी—आर्यपुत्र, अब ये बादल दर्शनीय लग रहे हैं ।

अविमारक—अहा, कभी कम, कभी अधिक पड़ती हुई यह वर्षा कितनी भली लग रही है ।

व्योमार्णवोर्मिसदृशा निनदन्ति मेघा
मेघप्ररोहसदृशाः प्रपतन्ति धाराः ।
रक्षोङ्गनाभृकुटिवत् तडितः स्फुरन्ति
प्राप्तोऽग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः ॥ ७ ॥

कुरङ्गी--अय्यउत्त ! आरद्धो सम्पदि वरिसिदुं देवो [आर्यपुत्र ! आरब्धः सम्प्रति वर्षितुं देवः ।]

अविमारकः—प्रिये ! एहि अभ्यन्तरमेव प्रविशावः ।

कुरङ्गी—(सहर्षम्) जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

पञ्चमोऽङ्कः ।

व्योमेति । अन्वयः—मेघाः, व्योमार्णवोर्मिसदृशाः, निनदन्ति, मेघप्ररोहसदृशाः, धाराः, प्रपतन्ति, तडितः, रक्षोङ्गनाभृकुटिवत्, स्फुरन्ति, अग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः, प्राप्तः ।

मेघाः = पयोदाः । व्योमार्णवोर्मिसदृशाः = गगनाब्धितरङ्गा इव । निनदन्ति = शब्दायन्ते । मेघप्ररोहसदृशाः = मेघाख्यस्य वृक्षस्य प्ररोहा इव । धाराः वर्षासाराः । प्रपतन्ति = निपतन्ति । तडितः = विद्युतः । रक्षोङ्गनाभृकुटिवत् = दैत्यस्त्रीणाम् भ्रू विलासवत् । स्फुरन्ति = चलन्ति । अग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः —अग्रयौवनस्य = प्रारम्भिकयौवनस्य, घनः = निविडः, स्तनमर्दः = कुचोपगूहनम्, तस्य कालः = समयः । प्राप्तः = समायातः । कामसुखोपभोगोपयुक्तोऽवसरः उपस्थित इति भावः ॥ ७ ॥

आकाशरूप समुद्र की तरङ्गों के समान ये मेघ गरज रहे हैं, मेघ-प्ररोह के समान ये जलधारायें गिर रही हैं, राक्षसाङ्गनाओं की भृकुटि के समान बिजली चमक रही है, प्रौढ़ यौवन के स्तनमर्दन का समय आ गया है ॥७॥

कुरङ्गी—आर्यपुत्र, अब मेघ बरसने लगे ।

अविमारक—प्रिये, आओ अन्दर चलें !

कुरङ्गी—(सहर्ष) आर्यपुत्र की जो आज्ञा ।

(दोनों का प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति धात्री ।)

धात्री—अहो अणवत्था किदन्तस्स, जं राअदारिआ पढमं महाराएण सोवीरराएण तं विह्णुसेणं उद्दिसिअ वरिदा। अज्ज अविदिअसम्भवेण माणुसलो अदुल्लभाकिदिगुणविसेसेण केण वि संओओ जादो। अह अदाणि कासिराअपुत्तो जअवम्मा णाम भट्टिणीए सुदस्सणाए सह अमच्चेण भूदिएण आणीदो सम्पदि राअउलं पविट्ठो। सअं किल कासिराओ जण्णवावारेण ण आअदो। किणु खु एदं भविस्सदि। [अहो अनवस्था कृतान्तस्य, यद् राजदारिका प्रथमं महाराजेन सौवीरराजेन तं विष्णुसेनमुद्दिश्य वृता। अद्याविदितसम्भवेन मानुषलोकदुर्लभाकृतिगुणविशेषेण केनापि संयोगो जातः। अथ चेदानीं काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम भट्टिन्या सुदर्शनया सहामात्येन भूतिकेनानीतः संप्रति राजकुलं प्रविष्टः। स्वयं किल काशिराजो यज्ञव्यापारेण नागतः। किन्नु खल्वेतद् भविष्यति।]

(ततः प्रविशति वसुमित्रा ।

ततः प्रविशतीति। अनवस्था = चपलत्वम्। कृतान्तस्य = भाग्यस्य। अविदितसम्भवेन = अज्ञातकुलशीलतया। यज्ञव्यापारेण = यज्ञकर्मणि व्यस्ततया।

(धात्री का प्रवेश)

धात्री—ओह ! भाग्य कितना चञ्चल होता है। राजकुमारी का विवाह पहले महाराज ने सौवीरराज-पुत्र विष्णुसेन के साथ स्थिर किया था। आज अज्ञात कुलशील एवं अतिमानुष गुण वाले किसी युवक के साथ संयोग हुआ। अब महामात्य भूतिक अपने साथ काशिराज-पुत्र जयवर्मा को उनकी माता के साथ ले आये हैं। स्वयं काशिराज यज्ञ में व्यस्त रहने के कारण नहीं आ सके। क्या होगा, कहा नहीं जा सकता।

(वसुमित्रा का प्रवेश)

वसुमित्रा—अहो विसमसीला संवच्छरिआ णाम अत्तणो णक्खत्तविसेसं एव्वं चिन्तअन्ति, कम्मगोरवं ण जाणन्ति। अज्ज पविट्ठो कुमारो, अज्ज एव विवाहो णिउत्तो। (परिक्रम्य) किण्णु खु जअदा इअं किं वि चिन्तअन्ती अप्पसण्णा विअ उस्सुआ दीसइ! जअदे! भट्टिणी भणादि—आअच्छेहि त्ति। [अहो विषमशीलाः सांवत्सरिका नामात्मनो नक्षत्रविशेषमेव चिन्तयन्ति, कर्मगौरवं न जानन्ति। अद्य प्रविष्टः कुमारोऽद्यैव विवाहो नियुक्तः। किं नु खलु जयदेयं किमपि चिन्तयन्त्यप्रसन्नेवोत्सुका दृश्यते। जयदे! भट्टिनी भणति—आगच्छेति।]

धात्री—हला! जाणासि किं णिमित्तं त्ति। [हला! जानासि किं निमित्तमिति।]

वसुमित्रा—किं अण्णं, एदस्सिं कय्ये कत्तव्वं चिन्तेदुं। [किमन्यत्, एतस्मिन् कार्ये कर्तव्यं चिन्तयितुम्।]

धात्री—सम्पदि भट्टिणीए को अभिप्पाओ। [संप्रति भट्टिन्याः कोऽभिप्रायः।]

वसुमित्रा—अत्तणो वंसजादस्स विह्णुसेणस्स अवत्थं अजाणिअ णेच्छदि जअवम्मणो दारिअं दादुं। किन्तु महाराओ सोवीररा‍अउत्तं अजाणन्तो अज्ज किल अहिअसन्दावो जादो! [आत्मनो वंशजातस्य विष्णुसेनस्यावस्थामज्ञात्वा नेच्छति जयवर्मणे दारिकां दातुम्। किन्तु महाराजः

विषमशीलाः=विचित्रचरित्राः। सांवत्सारिकाः=ज्योतिर्विदः। कर्मगौरवम्

वसुमित्रा—ज्योतिषी लोग भी बड़े विचित्र होते हैं, वे अपने नक्षत्र की चिन्ता करते हैं कार्य के महत्त्व की चिन्ता नहीं करते। आज ही कुमार आये हैं ओर आज ही विवाह स्थिर कर दिया गया। क्यों यह जयदा कुछ सोचती हुई अप्रसन्न-सी उत्सुक दीख रही है। जयदे! महारानी की आज्ञा है कि आओ।

धात्री—सखी, जानती हो, महारानी क्यों जयदा को बुला रही है?

वसुमित्रा—और क्या, इसी सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए बुला रही होगी।

धात्री—इस समय महारानी की क्या इच्छा है?

वसुमित्रा—अपने वंश में उत्पन्न विष्णुसेन की स्थिति को बिना जाने जयवर्मा को वह कन्या देना नहीं चाहती, किन्तु महाराज को सौवीराज-पुत्र

सौवीरराजपुत्रमजानन्नद्य किलाधिकसन्तापो जातः ।]

(प्रविश्य)

नलिनिका—अज्ज किदसङ्केदा विअ अम्हाअं सव्वसङ्कडा । (परिक्रम्यावलोक्य) किण्णु हु एसा मम मादा वसुमित्ताए सह किं वि चिन्तेदि । इमं उपसप्पिअ असुहवुत्तन्तं सुणामि । [अद्य कृतसंकेतानीवास्माकं सर्वसंकटानि । किं नु खल्वेषा मम माता वसुमित्रया सह किमपि चिन्तयति । इमामुपसर्प्यासुखवृत्तान्तं शृणोमि ?

वसुमित्रा—हला णलिणिए । एहि दाव । तुमं कञ्चुइसहवासेण राअउलवुत्तन्तं जाणासि । [हला नलिनिके ! एहि तावत् । त्वं कञ्चुकिसहवासेन राजकुलवृत्तान्तं जानासि ।]

नलिनिका—अभिणवो वुत्तन्तो । णं तं णिवेदिउं आअदम्हि । [अभिनवो वृत्तान्तः । ननु तं निवेदयितुमागतास्मि ।]

वसुमित्रा—भाणाहि जादे ! । [भण जाते ! ।]

नलिनिका—पेसिदो खु सोवीरराअस्स अमच्चेहि दूदो—अम्हाअं सामी तुम्हाणं णअरे सपुत्तकलत्तो पच्छण्णो पडिवसदि त्ति अम्हाअं गूढपुरुसेहि वुत्तन्तो जाणिअदु सामिणेत्ति । [प्रेषितः खलु सौवीरराजस्या-

---

=कार्यमहत्त्वम् । अधिकसन्तापः=अतिदुःखितः । कृतसंकेतानि=आगमनार्थी प्रवृत्तानि । सर्वसङ्कटानि=सर्वापदः । असुखवृत्तान्तम्=कष्टकारकं समाचारम् ।

का जब पता न चला तो वे अधिक दुःखी हो गये हैं ।

(प्रवेश करके)

नलिनिका—आज हमारे सारे सङ्कट आ रहे हैं । (चलकर देखकर) क्यों यह मेरी माता वसुमित्रा के साथ कुछ सोच रही है । उसके निकट जाकर कुछ दुःखद समाचार सुनूँ ।

वसुमित्रा—आओ नलिनिके ! कञ्चुकी के साथ रहने से तुम राजकुमार के बारे में जानती होगी ।

नलिनिका—नया समाचार है, उसे ही सुनाने तो आई हूँ ।

वसुमित्रा—बताओ बेटी ।

नलिनिका—सौवीरराज के मन्त्रियों ने महाराज के पास दूत भेजा है, कह-

मात्यैर्दूतः—अस्माकं स्वामी युष्माकं नगरे सपुत्र-कलत्रः प्रच्छन्नः प्रतिवसतीत्यस्माकं गूढपुरुषैर्वृत्तान्तो ज्ञायतां स्वामिनेति ।]

उभे—कहं पच्छण्णवेसो वत्तदित्ति । तदो तदो । [कथं प्रच्छन्नवेषो वर्तत इति । ततस्ततः ।]

नलिनिका—तदो एवं सव्वं सुणिअ तस्स लेहस्स अवसाणं पेक्खिअ अय्यभूदिएण सह गओ किल महाराओ तं अण्णेसिदुं । [तत् एतत् सर्वं श्रुत्वा तस्य लेखस्यावसानं प्रेक्ष्यार्यभूतिकेन सह गतः किल महाराजस्तमन्वेषितुम् ।]

धात्री—किण्णु खु भवे । [किन्नु खलु भवेत् ।]

वसुमित्रा—णलिणिए ! । तुवं दाव अब्भन्तरं पविस । [नलिनिके ! त्वं तावदभ्यंतरं प्रविश ।]

नलिनिका—जं अय्या भणादि । (निष्क्रान्ता) [यदार्या भणति ।]

वसुमित्रा—एहि दाव वअं भट्टिणीं पेक्खामो । [एहि तावत् । आवां भट्टिनीं पश्यावः ।]

धात्री—एवं करेम्ह । [एवं कुर्वः ।] (निष्क्रान्ते ।)

प्रवेशकः

प्रच्छन्नः = आत्मानं गोपयन् । गूढपुरुषैः = गुप्तचरैः । प्रच्छन्नवेषः = गुप्तरूपः । तस्य लेखस्यावसानम् = अमात्यलिखितपत्रस्यान्तिमो भागः ।

लाया है कि हमारे स्वामी स्त्री-पुत्र के साथ छिपकर आपके नगर में रहते हैं । हमारे गुप्तचरों ने पता लगाया है । आप भी जान लें ।

दोनों—क्यों गुप्तरूप से रहते हैं ? इसके बाद ?

नलिनिका—इसके बाद सारी बातें सुनकर तथा पत्र का अन्तिम अंश देखकर महाराज भूतिक के साथ उन्हें ढूँढ़ने गये हैं ।

धात्री—देखें, क्या बात है ।

वसुमित्रा—नलिनिका, तुम अन्दर चलो ।

नलिनिका—आपकी जो आज्ञा । (जाती है)

वसुमित्रा—चलो हमलोग महारानी के पास चलें ।

धात्री—हाँ, ऐसा ही करती हैं । (प्रस्थान)

प्रवेशक समाप्त

(ततः प्रविशति कुन्तिभोजः सौवीरराजभूतिकाभ्याम्) ।

कुन्तिभोजः—वयस्य !

किं प्रेक्षसे मम मुखं चिरकालदृष्टो
गाढं परिष्वज सखे ! स्मर बालभावम् ।
प्रीत्या भवन्तमनिमेषमवेक्षितुं मे
स्नेहान्नवीकृत इवाद्य वयस्यभावः ॥ १ ॥

सौवीरराजः—यदिष्टं भवतः ।

(उभौ परिष्वजेते)

किं प्रेक्षस इति । अन्वयः—सखे ! चिरकालदृष्टः, मम, मुखम्, किम्, प्रेक्षसे, गाढम्, परिष्वज, बालभावम्, स्मर, अनिमेषम्, प्रीत्या, भवन्तम्, अवेक्षितुम्, मे, वयस्यभावः, स्नेहात्, अद्य, नवीकृत इव ।

सखे = हे मित्र । चिरकालदृष्टः = बहुकालमतीत्य इदानीम् त्वम् मया सह साक्षात्कृतः । मम = मे । मुखम् = आननम् । किं प्रेक्षसे = कथमवलोकयसि । गाढम् = दृढम् । परिष्वज = आलिङ्ग । बालभावम् = बाल्यावस्थाम् । स्मर = ध्याने आनय । अनिमेषम् = निर्निमेषं यथा स्यात्तथा । प्रीत्या = स्नेहेन । भवन्तम् = त्वाम् । अवेक्षितुम् = द्रष्टुम् । मे = मम । वयस्यभावः = मित्रत्वम् । स्नेहात् = प्रेमावेशात् । अद्य = इदानीम् । नवीकृत इव = नूतन इव सञ्जातः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

यदिष्टम् भवतः = यथा त्वमिच्छसि तथैव भवत्वित्यर्थः ।

परिष्वजेते = परस्परमालिङ्गनं कुरुतः ।

(कुन्तिभोज, भूतिक तथा सौवीरराज का प्रवेश)

कुन्तिभोज—मित्र ! बहुत दिनों पर दर्शन हुए हैं । मेरा मुँह क्या देख रहे हो? आओ, मुझसे लिपट जाओ, बचपन की याद करो, स्नेह से तुम्हें निर्निमेष देखने के लिए मेरी मित्रता आज नवीनता को प्राप्त कर-सी रही है ॥१॥

सौवीरराज—जैसा आप चाहें ।

(दोनों परस्पर आलिङ्गन करते हैं)

कुन्तिभोजः—

चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव बुद्धि-
वाक्यं च बाष्पाहतगद्गदं च ।
नेत्रे सबाष्पे मुखमप्रसन्नं
किं हर्षकाले क्रियते विकारः ।। २ ।।

सौवीरराजः—न खल्वहमप्रहृष्टो भवत्सङ्गमेन । किन्तु बलवान् पुत्रस्नेहो नाम ।

यो मे पुत्रगतः शोको हृदयस्थो विजृम्भते ।
सोऽद्य लब्ध्वा सहायं त्वां बाष्परूपेण निर्गतः ।। ३ ।।

चिन्ताकुलत्वमिति । अन्वयः — बुद्धिः, चिन्ताकुलत्वम्, व्रजति, इव, वाक्यम्, च, बाष्पाहतगद्गदम्, नेत्रे, सबाष्पे, मुखम्, अप्रसन्नम्, हर्षकाले, विकारः, किम्, क्रियते ।

बुद्धिः = तव बुद्धिः । चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव = चिन्तया व्यग्रेव प्रतीयते । वाक्यम् च = वचनम् । बाष्पाहतगद्गदम् = अश्रुपूर्णतया रुद्धकण्ठतया च अस्पष्टाक्षरम् । नेत्रे = नयने । सबाष्पे = अश्रुपूर्णे । मुखम् = आननम् । अप्रसन्नम् = खिन्नम् ! हर्षकाले = मित्रमिलनरूपप्रसन्नतावसरे उपस्थिते सति । विकारः = खेदः । किम् = कथम् । क्रियते = विधीयते ।। २ ।।

अप्रहृष्टः = अप्रसन्नः ।

यो मे पुत्रगत इति । अन्वयः—यः, मे, पुत्रगतः, हृदयस्थः, शोकः, विजृम्भते, सः, अद्य, त्वाम्, सहायम्, लब्ध्वा, बाष्परूपेण, निर्गतः ।

यो मे पुत्रगतः = पुत्रविषयकः । हृदयस्थः = मानसिकः । शोकः = वियोग-

---

कुन्तिभोज—तुम्हारी बुद्धि चिन्ताकुल प्रतीत हो रही है, वचन आसुओं से गद्गद् हो रहे हैं, आँखों में आँसू भरे हैं, मुख उदास लग रहा है, हर्ष के समय ये विकार क्यों उत्पन्न हो रहे हैं ।। २ ।।

सौवीरराज—आप से मिलकर मैं अप्रसन्न नहीं हूँ किन्तु पुत्र-स्नेह बड़ा बलवान् होता है ।

जो मेरा पुत्रशोक हृदय में बढ़ता रहा है, वह आज आप-जैसे मित्र को पाकर आँसू के रूप में उमड़ पड़ा है ।। ३ ।।

कुन्तिभोजः—कथं पुत्रगतः शोक इति ।

भूतिकः—विदितमस्तु स्वामिना । न दृश्यते किलास्मिन् संवत्सरे कुमारः ।

सौवीरराजः—बलवान् पुत्रस्नेहो नाम । पश्यतु भवान्—

अनुपमबलवीर्यरूपवन्तं
सुतमविमारकमद्य चिन्तयामि ।
तव चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशो
यदि स भवेदिह को नु मद्विशिष्टः ॥ ४ ॥

भूतिकः—(आत्मगतम्) महान् खल्वयं सन्तापो वर्धत एव हि

दुःखम् । विजृम्भते = अनुक्षणम् वर्धते । स मे पुत्रशोकः । अद्य = इदानीम् । त्वाम् = भवन्तम् । सहायम् = मित्रम् । लब्ध्वा = प्राप्य । बाष्परूपेण = अश्रुभावेन । निर्गतः = निःसृतः ॥ ३ ॥

अनुपमबलवीर्येति । अन्वयः— अनुपमबलवीर्यवन्तम्, अविमारकम्, सुतम्, अद्य, चिन्तयामि, यदि, सः, तव, चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशः, भवेत्, इह, को नु, मद्विशिष्टः ।

अनुपमबलवीर्यरूपवन्तम् = अप्रतिमशक्तिपराक्रमसौन्दर्यशालिनम् । अविमारकम् = एतन्नामधेयम् । सुतम् = पुत्रम् । अद्य = एषु दिनेषु । चिन्तयामि = शोचामि । यदि सः = मम पुत्रोऽविमारकः । तव = भवतः । चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशः = पदधूलिकणैः पूजितः अग्रकेशो यस्य तथाभूतः । तदा । इह = अत्र लोके । को नु मद्विशिष्टः = मदपेक्षयाऽधिकः उत्कृष्टः । कोऽपि नेति भावः ॥४॥

कुन्तिभोज—क्यों ? पुत्रशोक कैसा ?

भूतिक—महाराज को ज्ञात हो कि एक वर्ष से कुमार लापता है ।

सौवीरराज—पुत्रस्नेह बड़ा बलवान् होता है । आप देखिए—

आज मैं अनुपम बल, वीर्य एवं सौन्दर्य से युक्त पुत्र अविमारक के लिए चिन्तित हूँ । यदि वह आज आपकी चरणधूलि से अपने केश को धूसरित करता तो मुझसे बड़ा भाग्यवान् भला कौन होता ॥ ४ ॥

भूतिक—(स्वगत) कुमार के बिना इनका यह पुत्रशोकजन्य सन्ताप

कुमारमन्तरेण। विलोपयाम्येनम्। (प्रकाशम्) कथं स्वामिनोऽभ्यागता व्यापत्।

कुन्तिभोजः—अहमप्यनेन व्याक्षेपेण विस्मृतवानेतत् प्रष्टुम्।

सौवीरराजः—श्रूयताम्। अथवा भूतिकस्तु विजानाति। अप्यस्मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छति।

कुन्तिभोजः—वयमवहिताः स्मः।

सौवीरराजः—अपि ज्ञायते चण्डभार्गवो नामात्यन्तरोषी ब्रह्मर्षिः।

कुन्तिभोजः श्रूयते तत्रभवांस्तपोनिधिः।

सौवीरराजः—सोऽस्मद्विषयमभ्यागतः। कान्तारे तस्य शिष्यो व्याघ्रेणाभिभूय मारितः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

सौवीरराजः—ततोऽहमपि तस्मिन् काले मृगयावशात् यदृच्छयैव तं देशमभ्युपगतः।

व्याक्षेपेण = सन्तापेन। तपोनिधिः = तपोराशिः। कान्तारे = अरण्ये। अभिभूय = आक्रम्य। मृगयावशात् = आखेटहेतोः। यदृच्छयैव = अकस्मादेव।

बढ़ता ही जाता है। बात को दूसरी ओर मोड़ता हूँ। (प्रकट) महाराज पर यह विपत्ति आई कैसे ?

कुन्तिभोज—मैं भी इसी दुःख के कारण यह पूछना भूल गया था।

सौवीरराज—सुनिये, अथवा भूतिक सब जानता है। क्या आप मेरे मुँह से ही सुनना चाहते हैं ?

कुन्तिभोज—हमलोग सावधान हैं।

सौवीरराज—क्या आप चण्डभार्गव नामक अति क्रोधी ब्रह्मर्षि को जानते हैं ?

कुन्तिभोज—जी हाँ, उस तपस्वी का नाम मैंने सुना है।

सौवीरराज—वे हमारे देश में आये। जंगल में बाघ ने उनके शिष्य को मार दिया था।

कुन्तिभोज—उसके बाद ?

सौवीरराज—उसके बाद मैं भी आखेट करता हुआ वहीं जा पहुँचा।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः ।

सौवीरराजः—अथ मां दृष्ट्वा विजृम्भमाणरोषभ्रुकुटीपुटविषमीकृतवदनः प्रलम्बजटाभारः शिष्ये स न्यस्तकरः क्रुद्धो दहन्निव क्रोधाग्निना मद्वचनमश्रोतुकामः संरम्भस्खलितवचनो मां बहुधा क्षेप्तुमारब्धः ।

कुंतिभोजः—ततस्ततः

सौवीरराजः—ततोऽहमपि भवितव्यस्यार्थस्य प्राबल्येनाधृतिः 'वृत्तान्तं न ब्रवीषि, निष्कारणं क्षिपसि' इति संक्रुद्धवानस्मि ।

न भाषसे वृत्तमुपैषि रोषं
निष्कारणं प्रक्षिपसि प्रकामम् ।

विजृम्भमाणरोषभृकुटीपुटविषमीकृतवदनः—विजृम्भमाणः = वर्द्धमानः, रोषः = क्रोधः, यस्मिन् तादृशेन भृकुटीपुटेन = भृकुट्या विषमीकृतम्, वदनम् = आननम् यस्य तथाभूतः । प्रलम्बजटाभारः = लम्बमानसटः । शिष्ये न्यस्तकरः = शिष्योपरि धृतकरः । संरम्भस्खलितवचनः—संरम्भेण = क्रोधेन, स्खलितवचनः = त्रुटयद्वचनः । क्षेप्तुम् = आक्रोष्टुम् । अधृतिः = धैर्यहीनः सन् ।

न भाषते इति । अन्वयः—वृत्तम्, न, भाषसे, रोषम्, उपैषि, निष्कारणम्, प्रकामम्, प्रक्षिपसि, प्रकोपात्, त्वम्, तपसाम्, अभाजनम्, भवान्, ब्रह्मर्षिरूपेण, श्वपाकः ।

कुन्तिभोज—फिर ?

सौवीरराज—मुझे देखकर उनका क्रोध बढ़ गया, भवें तन गईं, मुँह विषम हो गया, जटायें फैल गईं, शिष्य के शरीर पर हाथ रखकर क्रोधाग्नि से वे मुझे दग्ध करने लगे । क्रोधवश उनकी वाणी लटपटा रही थी और फिर उन्होंने मुझे डाँटना प्रारम्भ कर दिया ।

कुन्तिभोज--उसके बाद ?

सौवीरराज—उसके बाद मैं भी, भावी प्रबल होने के कारण अधीर हो उठा और बोला—कि आप कुछ बताते नहीं और अकारण ही डाँट रहे हैं । आप बात कुछ बताते हैं नहीं, केवल क्रोध करते चले जा रहे हैं, अकारण

अभाजनं त्वं तपसां प्रकोपाद्
ब्रह्मर्षिरूपेण भवाञ्छ्वपाकः ॥ ५ ॥

कुन्तिभोजः—असदृशमुक्तं भवता ।

सौवीरराजः—ततस्तच्छ्रुत्वैवाज्यधारावसिक्तो भगवान् हुताशन इव प्रज्वलितनेत्रो बहुशः शिरः कम्पयन् 'कथं कथम्' इत्युक्त्वा मां शप्तुमारब्धवान् ।

यस्माद् ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं श्वपाक इति भाषितः ।
तस्मात् सपुत्रदारस्त्वं श्वपाकत्वमवाप्स्यसि ॥ ६ ॥ इति ।

वृत्तम् = वृत्तान्तम् । न भाषसे = नैव कथयसि । केवलन्तु रोषमुपैषि = क्रोधं कुरुषे । निष्कारणम् = कारणं विनैव । प्रकामम् = समधिकम् । प्रक्षिपसि = आक्रोशसि । प्रकोपात् = अतिक्रोधात् । त्वम् = चण्डभार्गवः । तपसाम् । अभाजनम् = अपात्रम् । तपः साधयितुम् त्वयि पात्रता नैव वर्तते इति भावः । भवान् = त्वम् । ब्रह्मर्षिरूपेण ।श्वपाकः = चाण्डालः । असीति शेषः ॥ ५ ॥

असदृशम् = अनुपयुक्तम् । आज्यधारावसिक्तः = घृतधाराप्रोक्षितः । हुताशनः = अग्निदेवः । प्रज्वलितनेत्रः = कोपारक्तनयनः ।

यस्मादिति । अन्वयः—यस्मात्, ब्रह्मर्षिमुख्यः, अहम्, श्वपाकः, इति, भाषित, तस्मात्, सपुत्रदारः, त्वम्, श्वपाकत्वम्, आवाप्स्यसि ।

यस्मात् = यस्माद्धेतोः । ब्रह्मर्षिमुख्यः = ब्रह्मर्षिप्रधानः । अहम् = चण्डभार्गवः । श्वपाकः = चाण्डालः । इति भाषितः = त्वयैवं कथितः । तस्मात् = तस्मादेव कारणात् । सपुत्रदारः = पत्नी-सुतसहितः । त्वम् = सौवीरराजः । श्वपाकत्वम् = चाण्डालत्वम् । अवाप्स्यसि = प्राप्स्यसि ॥ ६ ॥

ही बहुत अधिक डाँट रहे हैं । आप अतिरोष के कारण तपस्या के पात्र नहीं हैं, आप ब्रह्मर्षि के रूप में चाण्डाल हैं ॥ ५ ॥

कुन्तिभोज—आपने ठीक नहीं कहा ।

सौवीरराज—यह सुनते ही वे घृत-प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से धधक उठे । उनकी आँखे क्रोध से जलने लगीं, बार-बार सिर को हिलाते हुए "क्यों, क्या कहा" यह कहकर शाप देना प्रारम्भ कर दिया ।

तुमने मुझ ब्रह्मर्षि को श्वपाक कह दिया, अतः अपनी पत्नी एवं पुत्र के साथ तुम भी चाण्डाल हो जाओ ॥ ६ ॥

कुन्तिभोजः—अहो अल्पमूलत्वं महतां चानर्थस्य ।

भूतिकः—सभाग्यं सौवीरराजकुलम् । कुतः,

ब्रह्मर्षिणा प्ररुष्टेन श्वपाकत्वं तदा कृतम् ।
तस्मात् तेनैव रूपेण न सर्वं भस्मसात् कृतम् ॥ ७ ॥

कुन्तिभोजः—युक्तमभिहितं भवता । ततस्ततः ।

सौवीरराजः—ततस्तच्छापप्रक्षुब्धमनसा मया सुचिरमनुनीयमानः शनैः शनैः प्रकृतिस्थो भूत्वानुग्रहं कृतवान्—

तावत् प्रच्छन्नरूपेण यावत् संवत्सरं व्रजेः ।
ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि ॥ ८ ॥

अल्पमूलत्वम् = सामान्यकारणोद्भूतत्वम् ॥

ब्रह्मर्षिणेति । अन्वयः—तदा, प्ररुष्टेन, ब्रह्मर्षिणा, श्वपाकत्वम्, कृतम्, तस्मात्, तेनैव, रूपेण, सर्वम्, न भस्मसात्कृतम् ।

तदा = तस्मिन् काले । प्ररुष्टेन = क्रुद्धेन । ब्रह्मर्षिणा=चण्डभार्गवेण । श्वपाकत्वम् = चाण्डालत्वम् । कृतम् = अभिशप्य निवृत्तम् । तस्मात् = अत एव । तेनैव रूपेण । सर्वम् = सौवीरराजवंशम् । न भस्मसात्कृतम् = सर्वथा न विनष्टम् ॥ ७ ॥

युक्तमभिहितम् = समीचीनमुच्यते भवतेति भावः । तच्छापप्रक्षुब्धमनसा = तदीयशापेन निग्रहवचसा, प्रकर्षेण क्षुब्धम् मानसम् यस्य तेन । अनुनीयमानः = प्रार्थ्यमानः । प्रकृतिस्थः = प्राप्तात्मस्वरूपः ।

तावदिति । अन्वयः—तावत्, प्रच्छन्नरूपेण, यावत्, संवत्सरम्, व्रजेः,

---

कुन्तिभोज—इस महान् अनर्थ का मूल बहुत ही थोड़ा है ।

भूतिक—सौवीरराज का वंश बहुत ही भाग्यवान् है, क्योंकि—

जिस क्रोध के वशीभूत होकर ब्रह्मर्षि ने चाण्डाल होने का शाप दिया उसी क्रोध के कारण सम्पूर्ण वंश को भस्म नहीं कर दिया ॥ ७ ॥

कुन्तिभोज—आप ठीक कहते हैं । उसके बाद ?

सौवीरराज—उसके बाद मैं उसके शाप को सुनकर क्षुब्ध हो उठा । मैंने जब उनकी काफी प्रार्थना की तब वे पुनः प्रकृतिस्थ हुए और कृपा करते हुए उन्होंने कहा—

एक वर्ष तक चाण्डाल के रूप में छिपकर समय बिताओ । एक वर्ष पूरा

इति । एवमुक्त्वा प्रसन्नचित्तेन एहि भोः काश्यप ! इत्याह्वयत, स तमनुगतो व्याघ्रेण मारितो बटुः, चरितं च मया संवत्सरं श्वपाकव्रतम् । अद्यास्मि शापान्मुक्तः ।

कुन्तिभोजः—अहो व्यापदः प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च । दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

भूतिकः—जयतु स्वामी ।

कुन्तिभोजः—ननु विष्णुसेनमाता सपरिवारमन्तःपुरं प्रविष्टा ।

भूतिकः—तत्रभवती प्रविश्याभ्यन्तरं चिरकालप्रसुप्तं प्रणयमुद्बोधयति ।

कुन्तिभोजः—अथेदानीं विष्णुसेनः कथमविमारको जातः ।

भूतिकः—शृणोतु स्वामी—अस्ति धूमकेतुर्नामासुरः । सर्वलोकमारणाय परिभ्रमन् स कदाचित् सौवीरराष्ट्रमुत्सादयितुं प्रवृत्तः ।

संवत्सरे, पूर्णे, मुक्तशापः, भविष्यसि ।

तावत् प्रच्छन्नरूपेण = गुप्तरूपेण । यावत् संवत्सरम् = वर्षम् । व्रजेः = यापयेः । वर्षपर्यन्तम् यावत् कालं यापयेति भावः । तदनन्तरम् संवत्सरे = वर्षे । पूर्णे = व्यतीते सति । मुक्तशापः = शापप्रभावनिवृत्तः । भविष्यसि ॥ ८ ॥

व्यापदः = विपत्तेः । उत्सादयितुम् = ध्वंसयितुम् ।

हो जाने पर तुम शाप से मुक्त हो जाओगे ॥ ८ ॥

मुझे ऐसा कहकर उन्होंने बाघ द्वारा मारे गये उस विद्यार्थी को प्रसन्न हृदय से पुकारते हुए कहा—"आओ काश्यप !" और वह लड़का उनके पीछे चल पड़ा । मैंने वर्ष पूरा कर लिया है, आज मैं शापमुक्त हूँ ।

कुन्तिभोज—आप पर विपत्ति आई और गई । आप बड़े भाग्यवान् हैं ।

भूतिक—महाराज की जय हो ।

कुन्तिभोज—क्या विष्णुसेन की माता सपरिवार अन्तःपुर चली गई ?

भूतिक—वह अन्तःपुर जाकर चिरप्रसुप्त प्रणय को जगा रही है ।

कुन्तिभोज—अच्छा, यह तो बताइये कि विष्णुसेन अविमारक कैसे बन गया ?

भूतिक—सुनिये महाराज ! धूमकेतु नाम का एक असुर था । सब लोगों को मारने के लिए घूमता हुआ वह एक बार सौवीरराष्ट्र को ध्वंस करने लगा ।

कुन्तिभोजः—अपूर्वा खलु कथा । ततस्ततः ।

भूतिकः—ततः स्वदेशे सर्वप्रजानामार्ति दृष्ट्वा तस्य राक्षसस्य च प्रतिक्रियामनवेक्षमाणः स्वामी क्लेशमुपगतः ।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः ।

भूतिकः-ततस्तत् सर्वं बुद्ध्वा कुमारो विष्णुसेनः क्षितिरेणुपरुषगात्रः प्रलम्बमानकाकपक्षः शिशुभिस्तुल्यवयोभिः प्रक्रीडमानो दैवयोगात् प्रमत्तेषु रक्षिपुरुषेषु सहसैव तं देशमभ्युपगतो यत्रासौ राक्षसः ।

कुन्तिभोजः—अहो आश्चर्यमाश्चर्यम् । ततस्ततः ।

भूतिकः—ततः स राक्षसः प्रीत्या सुसम्पन्नमिवाहारं कुमारमभिसमीक्ष्य स्वकर्म कर्तुमारब्धः ।

कुन्तिभोजः—अहो नृशंसता राक्षसस्य । ततस्ततः ।

भूतिकः—अथ कुमारेण किञ्चित् प्रहस्य,

आर्त्तिम् = कष्टम् । अनवेक्षमाणः = अपश्यन् । क्षितिरेणुपरुषगात्रः = धूलिधूसरितशरीरः । प्रलम्बमानकाकपक्षः = लम्बसटः । सुसम्पन्नम् = स्वतः प्रस्तुतम् । स्वकर्म = व्यापादनात्मकव्यापारः ।

कुन्तिभोज—बड़ी अनोखी कहानी है । फिर क्या हुआ ?

भूतिक—उसके बाद अपने देश की प्रजा के कष्ट को देखकर उस राक्षस की प्रतिक्रिया के लिए कोई उपाय न देखकर सौवीरराज दुःखी रहने लगे ।

कुन्तिभोज—तब-तब ?

भूतिक—सारी बातें समझकर कुमार विष्णुसेन रक्षा-पुरुषों की आँखें बचाकर वहाँ पहुँच गये जहाँ वह राक्षस था । उसकी देह में धूल लगी थी, उसके बाल लटक रहे थे, और उसके साथ उसीके हम-उम्र कुछ लड़के थे ।

कुन्तिभोज—आश्चर्य ! फिर क्या हुआ ?

भूतिक—विष्णुसेन के आने पर उस राक्षस ने प्रस्तुत आहार जानकर अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया ।

कुन्तिभोज—राक्षस की क्रूरता भी आश्चर्यजनक है । तब क्या हुआ ?

भूतिक—उसके बाद कुमार न थोड़ा हँसकर—

प्रपतदशनिना यथा गिरीन्द्रो
दवदहनेन यथा वनप्रदेशः ।
युधि ललितमनायुधेन तेन
क्षितिपसुतेन तदा हतः स नीचः ॥ ९ ॥

कुन्तिभोजः—प्रथममेव हस्तिसम्भ्रमे मयोक्तं—दैवादुत्पादितोऽयं केवलो मानुषो न भवतीति ।

सौवीरराजः—भवान् सहस्रनेत्रश्चरैः कथं चिन्तयत्यविमारकं प्रति ।

भूतिकः—स्वामिन् !

गम्यास्तु देशाः सुपरीक्षिता मे
न दृश्यते क्वापि चरैः कुमारः ।

प्रपतेति । अन्वयः—प्रपतदशनिना, यथा, गिरीन्द्रः, दवदहनेन, यथा, वनप्रदेशः, तथा, तदा, तेन, अनायुधेन, क्षितिपसुतेन, सः, नीचः, हतः ।

प्रपतदशनिना=पतता वज्रेण । यथा गिरीन्द्रः=पर्वतः हन्यते इति तात्पर्यम् । दवदहनेन=दावानलेन । यथावनप्रदेशः=अरण्यम् (भस्मसात्क्रियते) तथैव तदा तेन । अनायुधेन=निःशस्त्रेण । क्षितिपसुतेन=राजकुमारेण सः । नीचः=क्रूरः राक्षसः । हतः=मारितः ॥ ९ ॥

दैवादुत्पादितः=भाग्यवशाल्लब्धजन्मा ।

गम्यास्तु देशा इति । अन्वयः—गम्याः, देशाः, सुपरीक्षिताः, क्वापि, कुमारः,

---

जैसे वज्र के गिरने से पर्वत एवं दावानल से जंगल नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार बिना किसी शस्त्र के ही खेलते ही खेलते राजकुमार ने उस नीच राक्षस का संहार कर दिया ॥ ९ ॥

कुन्तिभोज—पहले ही हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के दिन मैंने कहा था कि वह युवक साधारण मनुष्य नहीं है ।

सौवीरराज—आप गुप्तचरों के द्वारा हजार आँखों वाले हैं । आप अविमारक के बारे में क्या सोचते हैं ?

भूतिक—जहाँ तक जाया जा सकता है वहाँ तक मैंने अच्छी तरह खोज करवा ली है, कहीं भी गुप्तचरों ने कुमार को नहीं पाया । उन्हें अब मन ही

परीक्षितुं तं मनसोऽस्ति शक्ति-
नूनं हि मायामनुगच्छतीति ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति नारदः)

नारदः—

वेदैः पितामहमहं परितोषयामि
गीतैः करोमि हरिमुद्गतरोमहर्षम् ।
उत्पादयाम्यहरहर्विविधैरुपायै-
स्तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके ॥ ११ ॥

चरैः, न, दृश्यते, नूनम्, तम्, परीक्षितुम्, मनसः, शक्तिः, अस्ति, हि, मायाम्, अनुगच्छति, इति ।

गम्याः देशाः = गन्तव्याः स्थानविशेषाः । सुपरीक्षिताः = मया सम्यगन्वेषिताः । क्वापि = तेषु गम्यदेशेषु कुत्रापि । कुमारः = अविमारकः । चरैः = प्रेषितगुप्तचरैः । न दृश्यते = नावलोकितः । नूनम् = निश्चयेन । तम् = कुमारम् । परीक्षितुम् = अन्वेष्टुम् । मनसः शक्तिरस्ति = मनसैव तस्यान्वेषणम् विधाय तत्प्राप्तिर्भविष्यति नान्यथेति भावः । हि = यतः । सः मायामनुगच्छति = मायामवलम्बते ॥ १० ॥

वेदैरिति । अन्वयः—अहम्, वेदैः, पितामहम्, परितोषयामि, गीतैः, हरिम्, उद्गतरोमहर्षम्, करोमि, अहरहः, विविधैः, उपायैः, तन्त्रीषु, स्वरगणान्, लोके, कलहान्, च, उत्पादयामि ।

अहम् = नारदः । वेदैः = वेदाभ्यासैः । पितामहम् = स्वपितरम् ब्रह्माणम् । परितोषयामि = प्रसादयामि । गीतैः = गायनैः । हरिम् = विष्णुम् । उद्गतरोमहर्षम् = हर्षेण पुलकितगात्रम् करोमि । अहरहः = प्रत्यहम् । विविधैरुपायैः = नानायत्नैः । तन्त्रीषु = वीणातन्त्रेषु । स्वरगणान् = निषादादिस्वरभेदान् । लोके = संसारे । कलहान् = विवादांश्च । उत्पादयामि ॥ ११ ॥

खोज सकता है । निश्चय ही वे आजकल माया का आश्रय ले रहे हैं ॥ १० ॥

(नारद का प्रवेश)

नारद—मैं वेदाभ्यास द्वारा अपने पिता ब्रह्मा को प्रसन्न तथा गीतों के द्वारा भगवान् विष्णु को रोमाञ्चित करता हूँ । प्रतिदिन विविध उपायों से वीणा से स्वर तथा लोक में झगड़े उत्पन्न करता रहता हूँ ॥ ११ ॥

भोः ! कुन्तिभोजस्य पित्रा दुर्योधनेन वयं सुचिरमाराधिताः ! तस्मिन् मानुषस्वभावमुपगते कुन्तिभोजश्चास्मासु भृत्यत्वमाचरति। अद्य कुन्तिभोजस्य सौवीरराजस्य च महानविमारकादर्शनेन कार्यसंकटो वर्तते। तदिदानीमहमविमारकप्रदर्शनेन तयोर्व्याक्षेपं समाक्षिपामीत्यवतीर्णोऽस्मि भूम्याम् (इति कुन्तिभोजसौवीरराजयोः पुरतः स्थितः।)

कुन्तिभोजः—अये, भगवान् देवर्षिर्नारदः। भगवन् ! अभिवादये।

नारदः—स्वस्ति भवते।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि।

सौवीरराजः—भगवन् ! अभिवादये।

नारदः—शान्तिरस्तु ते।

सौवीरराजः—अनुगृहीतोऽस्मि।

कुन्तिभोजः—(कर्णे) भूतिक ! एवं क्रियताम्।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी। (निष्क्रम्य प्रविश्य) इदमर्घ्यं पाद्यं च।

सुचिरम् = दीर्घकालं यावत्। आराधिताः = सम्मानिताः। मानुषस्वभावम् = मृत्युम्। व्याक्षेपम् = विपदम्। समाक्षिपामि = समापयामि।

कुन्तिभोज के पिता दुर्योधन ने बहुत समय तक मेरी आराधना की थी। उसके मर जाने पर कुन्तिभोज हमारे सेवक बने हुए हैं। आजकल अविमारक के गायब हो जाने से कुन्तिभोज तथा सौवीरराज पर बड़ा सङ्कट आ गया है। अतः मैं अविमारक का प्रत्यक्ष कराकर कुन्तिभोज तथा सौवीरराज के दुःख को दूर करूँ, इसीलिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ हूँ।

(कुन्तिभोज तथा सौवीरराज के सम्मुख उपस्थित होते हैं)

कुन्तिभोज—अहा, देवर्षि नारद आये हैं। भगवन्, अभिवादन करता हूँ।

नारद—आपका कल्याण हो।

कुन्तिभोज—मैं अनुगृहीत हुआ।

सौवीरराज—भगवन् ! प्रणाम।

नारद—आपको शान्ति प्राप्त हो।

सौवीरराज—आपका अनुग्रह है।

कुन्तिभोज—(कान में) भूतिक ! ऐसा किया जाय।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर लौटकर) यह

कुन्तिभोजः—भगवन् ! क्रियतामनुग्रहः ।

नारदः—एवमस्तु ।

कुन्तिभोजः—(अभ्यर्च्य) भगवन् ! अस्मद्गृहं परिपूतं भवदवतरणेन ।

सौवीरराजः—इदानीं मुक्तशापोऽस्मि देवर्षिदर्शनेन ।

नारदः—नाहं साम्प्रतं युष्मद्दर्शनार्थमेवागतोऽत्र । अविमारकादर्शनेन सम्भूतं दुःखं भवतोर्ज्ञात्वावतीर्णोऽस्मि ।

उभौ—यद्येवं, विमुक्तसन्तापौ स्वः ।

नारदः—भूतिक ! सुदर्शनामानय ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान् (निष्क्रम्य सुदर्शनया सार्धं प्रविष्टः)

सुदर्शना—अब्भाअदो देवरिसी । [अभ्यागतो देवर्षिः] ।

भूतिकः—एवम् ।

सुदर्शना—सणाहो दाणि मे पुत्तअस्स विवाहो संवुत्तो (उपगम्य) भअवं वन्दामि । [सनाथ इदानीं मे पुत्रकस्य विवाहः संवृत्तः । भगवन् ! वन्दे ।]

परिपूतम् = पावनीकृतम् । विमुक्तसन्तापौ = विगतकष्टौ ।

अर्घ्य तथा पाद्य उपस्थित है ।

कुन्तिभोज—भगवन् ! अनुग्रह किया जाय ।

नारद—एवमस्तु ।

कुन्तिभोज—देवर्षि के दर्शन से मैं अब शापमुक्त हो गया हूँ ।

नारद—मैं अभी केवल आपलोगों के दर्शनार्थ ही नहीं आया हूँ । अविमारक को नहीं देखने से उत्पन्न आप के कष्ट को जानकर ही आया हूँ ।

दोनों—यदि ऐसा है तो हमारे सन्ताप दूर हो गये ।

नारद—भूतिक ! सुदर्शना को बुला लाओ ।

भूतिक—भगवान् की जो आज्ञा । (जाकर पुनः सुदर्शना के साथ प्रवेश)

सुदर्शना— देवर्षि नारद पधारे हैं ?

भूतिक—हाँ ।

सुदर्शना—अब हमारे पुत्र का विवाह सनाथ हो गया । (निकट जाकर) भगवन् ! प्रणाम ।

नारदः—

एवमेव महाभागे ! नित्यं प्रीतिमवाप्नुहि ।
कुन्तिभोजश्च भूपालो नित्यं स्यात् प्रीतिपीडितः ॥ १२ ॥

सुदर्शना—अणुग्गहीदम्हि ! [अनुगृहीतोऽस्मि ।]
नारदः—इदानीं पृच्छतां भवन्तौ प्रष्टव्यम् ।
उभौ—अनुगृहीतौ स्वः ।
कुन्तिभोजः—भगवन् ! किं जीवति सौवीरराजपुत्रः ।
नारदः—बाढम् ।
सौवीरराजः—केन कारणेन न दृश्यते ।
नारदः—विवाहव्याक्षेपात् ।
सौवीरराजः—कथं निर्विष्टः कुमारः ? ।
कुन्तीभोजः—क्व ।

एवमेवेति । अन्वयः—महाभागे ! एवमेव, नित्यम्, प्रीतिम्, अवाप्नुहि, भूपालः, कुन्तिभोजश्च, नित्यम्, प्रीतिपीडितः, स्यात् ।

महाभागे = हे अतिशयसौभाग्यशालिनि ! एवमेव = इत्थमेव । नित्यम् = सर्वदा । प्रीतिम् = प्रसन्नताम् । अवाप्नुहि = प्राप्नुहि । भूपालः = राजा । कुन्तिभोजश्च = एतन्नामधेयश्च । नित्यम् = सततम् । प्रीतिपीडितः = प्रसाद-युक्तः । स्यात् = भवेत् ॥ १२ ॥

विवाहव्याक्षेपात् = विवाहे संलग्नत्वात् । निर्विष्टः = गार्हस्थ्ये प्रविष्टः ।

नारद—हे अतिसौभाग्यशालिनि ! इसी तरह सदा तुम्हारी प्रसन्नता बढ़ती रहे और राजा कुन्तिभोज भी सदा प्रसन्नता से युक्त रहें ॥ १२ ॥

सुदर्शना—यह आपका अनुग्रह है ।
नारद—अब आप लोगों को जो पूछना हो पूछें ।
दोनों—हम लोगों पर आपका अनुग्रह है ।
कुन्तिभोज—भगवन् ! क्या सौवीरराज का पुत्र अविमारक जीवित है ?
नारद—अवश्य !
सौवीरराज—किस कारण से वह दिखाई नहीं देता ?
नारद—विवाह में आसक्त है ।
सौवीरराज—क्यों ? कुमार ने विवाह कर लिया ?
कुन्तिभोज—कहाँ विवाह किया ।

नारदः—नगरे वैरन्त्ये ।

कुन्तिभोजः—वैरन्त्यं नाम नगरमप्यस्तीति । भवतु, कस्य जामातृत्वमुपगतः ।

नारदः—कुन्तिभोजस्य ।

कुन्तिभोजः—कः सः ।

नारदः—

पिता कुरङ्ग्या भूपालो वैरन्त्यनगरेश्वरः ।
दुर्योधनस्य तनयः कुन्तिभोजो भवान् न तु ॥ १३ ॥

कुन्तिभोजः—किं बहुभिः प्रश्नैः मत्सुतायां कुरङ्ग्यां निर्विष्ट इत्युच्यते भगवता ।

नारदः – एवमेतत् ।

कुन्तिभोजः—लज्जित इवास्मि । केन दत्ता, कथं वा, कथं चायं प्रविष्टः कन्यापुरम् ।

वैरन्त्ये = एतन्नामके नगरे ।

पिता कुरङ्ग्या इति । अन्वयः—कुरङ्ग्याः, पिता, भूपालः, वैरन्त्यनगरेश्वरः, दूर्योधनस्य तनयः, भवान्, कुन्तिभोजः, न, तु ।

कुरङ्ग्याः = राजकुमार्याः । पिता = जनकः । भूपालः = राजा । वैरन्त्य-

---

नारद—वैरन्त्यनगर में ।

कुन्तिभोज—वैरन्त्य नाम का भी कोई नगर है ? अच्छा तो वह किसका जामाता बना है ?

नारद—कुन्तिभोज का ।

कुन्तिभोज—वह कौन है ?

नारद—कुरङ्गी के पिता, वैरन्त्यनगर के स्वामी, दुर्योधन के पुत्र, आप ही वह कुन्तिभोज हैं, दूसरा कोई नहीं ॥१३॥

कुन्तिभोज—अधिक प्रश्न क्या करें । आपके कहने का तात्पर्य यह है कि अविमारक का सम्बन्ध मेरी पुत्री कुरङ्गी से हो गया है ?

नारद—हाँ ऐसा ही है ।

कुन्तिभोज—मैं लज्जित हो रहा हूँ । किसने दिया, कैसे दिया, या फिर कैसे वह कन्यापुर में प्रवेश कर सका ?

नारदः—

दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे ।
पूर्वं पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टो मायया पुनः ।। १४ ।।

कुन्तिभोजः—भवत्वेवं तावन्निष्प्रतिवचनमृषिवचनम् । भगवन् ! इदानीं किं प्राप्तकालं कुमारस्य कुरङ्ग्याश्च । विवाहः पूर्वमारब्धव्यः?

नारदः—निष्ठितो विवाहो ननु गान्धर्वः स्वसमय एव इदानीम् ।

कुन्तिभोजः—अग्निसाक्षिकमिच्छामि ।

नारदः—नित्यमग्निः साक्ष्येव । तथापि स्वजनपरितोषणार्थमभ्य-

नगरेश्वरः=वैरन्त्यनाम्नो नगरस्याधिपतिः । दुर्योधनस्य=एतन्नामधेयस्य । तनयः=पुत्रः । भवान्=कुन्तिभोजः । न तु=न त्वन्यः इत्यर्थः ।। १३ ।।

दत्ता सेति । अन्वयः—सा, पूर्वम्, विधिना, दत्ता, सा, गजसंभ्रमे, दृष्टा, पूर्वम्, पौरुषम्, आश्रित्य, प्रविष्टः, पुनः मायया ।

सा=कुरङ्गी । पूर्वम्=प्रथमम् । विधिना=ब्रह्मणा । दत्ता=अविमारकाय समर्पिता । पुनः=भूयः । सा=कुरङ्गी । गजसंभ्रमे=गजकृतोपद्रवदिवसे । दृष्टा=अविमारकेणावलोकिता । पूर्वम्=प्रथमवारम् । पौरुषमाश्रित्य=स्वपराक्रमेण । प्रविष्टः=कन्यापुरम् प्राप्तः । पुनः=अनन्तरञ्च । मायया = विद्याधरप्रदत्तांगुलीयकप्रभावसाहाय्येन । कन्यापुरं प्रविष्टः इति शेषः ।। १४ ।।

निष्प्रतिवचनम्=अनुत्तरणीयम् । प्राप्तकालम्=कर्त्तुमुचितम् । निष्ठितः=सम्पन्नः । अग्निसाक्षिकम्=अग्नि साक्षिणं विधाय क्रियमाणम् । अभ्यन्तरसमय-

---

नारद—ब्रह्मा ने पहले ही कुरङ्गी का दान अविमारक को दिया था, हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के दिन अविमारक ने उसे स्वयं देखा । पहली बार तो पराक्रम से उसने कन्यापुर में प्रवेश किया था, इस बार माया के बल से उसने प्रवेश किया है ।। १४ ।।

कुन्तिभोज—इस प्रकार यह ऋषिवचन अनुत्तरणीय है । भगवन्, इस समय कुमार और कुरङ्गी को क्या करना उचित है ? क्या विवाह कराया जाय ?

नारद—गान्धर्वरीति से विवाह तो अपने समय में पहले ही हो चुका है ।

कुन्तिभोज—मैं अग्निसाक्षिक विवाह चाहता हूँ ।

नारद—अग्नि सदैव साक्षी रहा है, फिर भी आप अपने कुटुम्ब के

न्तरसमयमात्रमुपाध्यायेन कारयित्वा शीघ्रमानीयतामिह कुमारः सह भार्यया ।

कुन्तिभोजः—भगवन् ! एष गच्छामि ।

नारदः—तिष्ठतु भवान् । भूतिक ! गच्छ त्वम् ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान् । (निष्क्रान्तः ।)

कुन्तिभोजः—भगवन् ! विज्ञाप्यमस्ति ।

नारदः—इतस्तावत् । स्वैरमभिधीयताम् ।

कुन्तिभोजः—भगवन्, सुदर्शनायाः पुत्राय जयवर्मणे कुरङ्गीं दास्यामीति मयानीता सा पूर्वं सनाथा । किं कर्त्तव्यमिदानीम्, अभिधीयताम् ।

नारदः—एवं करोमि । मुहूर्तमेकान्ते तिष्ठ ।

कुन्तिभोजः—तथास्तु । (तथा करोति ।)

नारदः—सुदर्शने ! इतस्तावत् ।

सुदर्शना—भअवं ! इअम्हि । (भगवन्, इयमस्मि ।)

नारदः—ननु श्रुतमस्मद्वचनम् ।

मात्रम् = अन्तःपुरसम्पादनीयमाचारमात्रम् । उपाध्यायेन = पुरोहितेन ।

तोषार्थ पुरोहित द्वारा रीति-व्यवहार कराकर कुमार को शीघ्र यहाँ मँगवाइये ।

कुन्तिभोज—भगवन् ! अभी जा रहा हूँ ।

नारद—आप ठहरिये ! भूतिक ! तुम जाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा । (जाता है)

कुन्तिभोज—भगवन् ! कुछ निवेदन करना है ।

नारद—स्वतन्त्र होकर कहें ।

कुन्तिभोज—महाराज, सुदर्शना के पुत्र जयवर्मा के साथ कुरङ्गी का विवाह होगा, इस अभिप्राय से मैंने पुत्र सहित सुदर्शना को बुलवा लिया था । अब उसका क्या होगा ? कृपया आदेश दें ।

नारद—ऐसा करूँगा । आप कुछ देर के लिए एकान्त में बैठें ।

कुन्तिभोज—जो आज्ञा । (बैठता है)

नारद—सुदर्शने ! इधर आओ ।

सुदर्शना—भगवन् ! यहीं तो हूँ ।

नारद—तुमने हमारी बातें सुनीं ?

सुदर्शना—सुदं सौवीरराअउत्तस्स गुणसङ्कीत्तणं। [श्रुतं सौवीरराजपुत्रस्य गुणसङ्कीर्तनम्।]

नारदः—मा मैवम्। भवत्या विस्मृतोऽग्निदेवादुत्पन्नोऽग्रजस्ते पुत्रः।

सुदर्शना—हं, एदं पि भअवं जाणादि। [हम्, एतदपि भगवान् जानाति।]

नारदः—ममैवमाज्ञां कुरुष्व तावत्।

सुदर्शना—एवं करोमि। भअवं भणादु। [एवं करोमि। भगवान् भणतु।]

नारदः—तवायं पुत्रोऽग्नेरुत्पन्नः। त्वद्भगिन्याः सुचेतनायाः प्रसवसमकाल एव तत्सुतः स्वर्गं गतः। तवायं पुत्रस्त्वद्भगिन्यै त्वया दत्तः। सौवीरराजश्चासावत्यन्तसन्तुष्टः प्रीतिसदृशीः क्रियाः कृत्वा विष्णुसेन इति संज्ञामकरोत्। अमानुषस्वरूपबलवीर्यपराक्रमेणानेन वर्धमानेन यस्मादविरूपधारी मारितोऽसुरः, तस्मादविमारक इति विष्णुसेनं लोको ब्रवीति। ततः सोऽपि ब्रह्मशापपरिभ्रष्टो हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुरङ्गीं दृष्ट्वा समुत्पन्नाभिलाषः परेण पौरुषेण सङ्गम्य कुरङ्ग्या

प्रसवकाले = पुत्रजन्मसमये। अविरूपधारी = मेषरूपधारी। सङ्गम्य =

सुदर्शना—मैंने सौवीरराज के पुत्र का समस्त गुणगान सुना है।

नारद—ऐसा मत कहो। तुम अग्निदेव से उत्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र को भूल गई हो क्या ?

सुदर्शना—हूँ, आप यह भी जानते हैं।

नारद—मेरी आज्ञा मानो।

सुदर्शना—ऐसा ही करूँगी। आप आदेश दें।

नारद—तुम्हारा यह पुत्र अग्निदेव से उत्पन्न है। तुम्हारी बहन सुचेतना का पुत्र प्रसवकाल में ही स्वर्गीय हो गया था। तुमने अपना पुत्र उसे दे दिया। सौवीरराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रेमपूर्वक सारे संस्कार कराये और उसका नाम विष्णुसेन रखा। अतिमानवरूप बलवीर्यशाली उस बालक ने अविरूपधारी असुर को मारा, अतः विष्णुसेन को लोग अविमारक कहा करते हैं। बाद में ब्रह्मर्षि के शाप से चाण्डालत्व को प्राप्त वह बालक हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के दिन कुरङ्गी को देखकर उसके प्रति साभिलाष

दर्शनशङ्कितैः कन्यापुररक्षिभिः परीक्ष्यमाणोऽग्निना भगवता प्रच्छादितो निर्गतः तेन निर्वेदेनाग्निं प्रविष्टः पित्रा भगवताग्निना प्रीत्या परिष्वज्यमानो न दहत्यग्निरिति मरुत्प्रपातार्थं कश्चित् पर्वतमारूढः ।

सुदर्शना—अहो अच्चाहिदं । [अहो अत्याहितम्]

नारदः—तत्र केनापि विद्याधरेण तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन प्रीत्यान्तर्धानकार्यमात्रमङ्गुलीयकं दत्तं, यद् दक्षिणाङ्गुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थश्च ।

सुदर्शना—अच्छरीअं अच्छरीअं । [आश्चर्यमाश्चर्यम् ।]

नारदः—ततस्तद् दक्षिणाङ्गुल्यां धारयन् सन्तुष्टनामधेयेन ब्राह्मणेन सह कुन्तिभोजस्य कन्यापुरं स्वगृहवत् प्रविश्य कुरङ्ग्या यथेष्टमभिरममाणः सुखमास्ते । एष वृत्तान्तः । किमिदानीं कर्तव्यम् ।

कुरङ्ग्याः सङ्गं विषाय । निर्वेदेन = खेदेन । मरुत्प्रपातार्थम् = गिरिशिखरात्पतित्वा प्राणान् घातयितुम् । अत्याहितम् = महद्भयमुपस्थितम् । तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन = तत्सौन्दर्यावलोकनात्प्रमुदितचित्तेन । यथेष्टमभिरममाणः = सुखं

हो गया। बड़े पराक्रम से उसने उससे साक्षात्कार किया। कन्यापुर के रक्षक उसके दर्शन से आतङ्कित हुए। अग्निदेव की सुरक्षा में वह कन्यापुर से निकल सका। कुरङ्गी के वियोग में उसने आग में जलकर मरने का निश्चय किया परन्तु अग्निदेव ने पुत्रप्रेम के कारण उसे बचा लिया। तब उसने पहाड़ की चोटी से गिरकर प्राणत्याग करना चाहा।

सुदर्शना—यह तो बड़ा अनर्थ हुआ।

नारद—उस समय किसी विद्याधर ने उसका रूप देख प्रसन्न होकर उसे एक अँगूठी दी, जिसे दायें हाथ में रखने पर वह अदृश्य एवं बायें हाथ में रखने पर दृश्य हो जाया करता था।

सुदर्शना—आश्चर्य ! आश्चर्य !

नारद—उसी अँगूठी को दायें हाथ में लेकर सन्तुष्ट नामक ब्राह्मण के साथ वह कुन्तिभोज के कन्यापुर में अपने घर की तरह प्रविष्ट हो गया। इस समय वह कुरङ्गी के साथ आनन्दपूर्वक रह रहा है। यही वृत्तान्त है। अब क्या करना चाहिए ?

सुदर्शना—अणन्तरं अय्याए वञ्चिदाए चलदी विअ मे हिअअं, कोदूहल्लेण तुस्सदि । भअवं ! एसु दिअसेसु कुरङ्गी जअवम्मणो भय्यत्ति पुच्छदि । अज्जप्पहुदि तस्स वन्दणीआ संवृत्ता । [अनन्तरमार्यया वञ्चितया चलतीव मे हृदयं, कौतूहलेन तुष्यति । भगवन्, एषु दिवसेषु कुरङ्गी जयवर्मणो भार्येति पृच्छ्यते । अद्य प्रभृति तस्य वन्दनीया संवृत्ता ।]

नारदः—अभिजनयुक्तमेवाभिहितं भवत्या । कथमिदानीं ज्येष्ठपत्नी कनीयसे दीयते । सुदर्शने, अभिधीयतां काशिराजाय जयवर्मणः कुरङ्गी वयसाधिकेति । नन्वस्ति कुरङ्ग्याः कनीयसी सुमित्रा नाम । सा जयवर्मणो भार्या भविष्यति ।

सुदर्शना—पडिग्गहिदं इसिवअअं । [प्रतिगृहीतमृषिवचनम् ।]

नारदः—गच्छ कुन्तिभोजमनुवर्तस्व ।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि । [यद् भगवानाज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति वरवेषेणाविमारकः कुरङ्गी भूतिकश्च)

अविमारकः—भोः ! लज्जित इवास्म्यनेन वृत्तान्तेन ।

विहरन् । अभिजनयुक्तम्=सद्वंशोचितम् । वयसाधिका=ज्येष्ठा । अनुवर्त्तस्व =तदनुसारमाचर ।

सुदर्शना—इस बीच मैंने अपनी बड़ी बहन को वञ्चित किया, अतः मेरा हृदय काँप रहा है । भगवन् ! कुरङ्गी जयवर्मा की पत्नी मानी जाने लगी थी । अब वह उसकी प्रणम्य हो गयी ।

नारद—यह तो तुमने कुलानुकूल बात कही । बड़े की स्त्री छोटे को कैसे दी जायगी । काशिराज से कह देना कि कुरङ्गी जयवर्मा से बड़ी थी । कुरङ्गी की छोटी बहन सुमित्रा अब जयवर्मा की पत्नी होगी ।

सुदर्शना—यह ऋषि वचन स्वीकृत है ।

नारद—जाओ, कुन्तिभोज के कथनानुसार आचरण करो ।

सुदर्शना—भगवान् की जो आज्ञा ।

(वरवेष में अविमारक, भूतिक तथा कुरङ्गी का प्रवेश)

अविमारक—मैं इस वृत्तान्त से लज्जित हो रहा हूँ ।

दृष्ट्वा तदानीं गजसम्भ्रमे मां
मद्विक्रमं ये परिकीर्तयन्ति ।
ते किन्नु वृत्तान्तमिमं विदित्वा
चारित्रदोषं मयि पातयन्ति ।। १५ ।।

(परिक्रम्य दृष्ट्वा) अये अयं खलु भगवान् नारदः य एषः,

शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धि-
र्वेदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः ।
स्निग्धेषु वैराण्युपपाद्य यत्ना-
न्नष्टानि कार्याणि समीकरोति ।। १६ ।।

दृष्ट्वा तदानीमिति । अन्वयः—तदानीम्, गजसम्भ्रमे, ये, मद्विक्रमम्, दृष्ट्वा, परिकीर्त्तयन्ति, किम्, नु, ते, इमम्, वृत्तान्तम्, विदित्वा, मयि, चरित्र-दोषम्, पातयन्ति ।

तदानीम् = तस्मिन्काले । गजसम्भ्रमे = गजकृतोपद्रवे । ये = जनाः । मद्वि-क्रमम् = मदीयपराक्रमम् । दृष्ट्वा = अवलोक्य । परिकीर्त्तयन्ति = स्तुवन्ति स्म । किम् ते = मम प्रशंसका इति यावत् । इमम् वृत्तान्तम् = कन्यापुरप्रवेशादि-वृत्तान्तम् । विदित्वा = अवगम्य । मयि । चारित्रदोषम् = दुश्चरित्रताम् । पातयन्ति = आरोपयन्ति । गजकृतोपद्रवदिवसे ये मम प्रशंसकाः आसन् ते सम्प्रति मम निन्दका स्युरित्येव लज्जास्पदमिति भावः ।। १५ ।।

शापे प्रसादेष्विति । अन्वयः—शापे, प्रसादेषु, च, सक्तबुद्धिः, वेदेषु, गीतेषु, च, रक्तकण्ठः, स्निग्धेषु, यत्नात्, वैराणि, उपपाद्य, नष्टानि, कार्याणि, समीकरोति ।

उस समय, हस्तिकृत उपद्रव को शान्त करने के कारण जिन लोगों ने मेरी प्रशंसा की थी वे ही जब इस वृत्तान्त को सुनेंगे तो मुझ पर चरित्र-दोष का आरोप करेंगे ।।१५।।

(चलकर देखकर) यही हैं भगवान् नारद । यह—

शाप एवं कृपा में समभाव से समर्थ हैं, वेद एवं गीत में इनका कण्ठ समान रूप से गाने का अभ्यस्त है । एक ओर जहाँ ये परस्पर प्रेमपूर्वक रहने वालों के बीच कलह उत्पन्न करते हैं वहीं दूसरी ओर ये बिगड़े हुए कार्यों को बना भी दिया करते हैं ।। १६ ।।

कुन्तिभोजः—इत इतः कुमारः। अभिवादयस्वात्मकुलदैवतं देवर्षिम्।

अविमारकः—भगवन् ! अभिवादये।

नारदः—स्वस्ति भवते सपत्नीकाय !

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि ! मातुल अभिवादये।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स !

क्षमया जय विप्रेन्द्रान् दयया जय संश्रितान्।
तत्त्वबुद्ध्या जयात्मानं तेजसा जय पार्थिवान्॥ १७॥

योऽयं नारदः, शापे=परस्मै निग्रहवचःप्रदाने। प्रसादेषु=अनुकम्पासु च। सक्तबुद्धिः=समभावेन समर्थः। वेदेषु=वेदाभ्यासेषु। गीतेषु=गायनेषु च। रक्तकण्ठः=समानरूपेण उभयोरपि कृताभ्यासः। स्निग्धेषु=परस्परप्रेमशालिषु। यत्नात्=सप्रयासम्। वैराण्युपपाद्य=शत्रुभावं जनयित्वा। नष्टानि कार्याणि=विनाशगतानि कार्याणि। समीकरोति=सम्यक् सम्पादयति। नारदः खलु अनुकूलम् प्रतिकूलञ्च समभावेनैव सम्पादयतीति भावः॥ ६॥

अभिवादयस्व=प्रणम। सपत्नीकाय=सभार्याय।

क्षमया जयेति। अन्वयः—क्षमया, विप्रेन्द्रान्, जय, दयया, संश्रितान्, जय, तत्त्वबुद्ध्या, आत्मानम्, जय, तेजसा, पार्थिवान्, जय।

क्षमया=सहिष्णुतया। विप्रेन्द्रान्=ब्राह्मणश्रेष्ठान्। जय=स्ववशीभूतान् विधेहि। दयया=अनुग्रहेण। संश्रितान्=स्वाश्रितजनान्। जय=प्रसादय। तत्त्वबुद्ध्या=वस्तुतत्त्वज्ञानेन। आत्मानं जय=आत्मानं वशमानय। तेजसा=पराक्रमेण। पार्थिवान्=भूपतीन्। जय=वशवर्तिनः कुरु॥ १७॥

कुन्तिभोज—कुमार, इधर आओ। अपने कुल-पूज्य देवर्षि नारद को प्रणाम करो।

अविमारक—भगवन्, प्रणाम करता हूँ।

नारद—सपत्नीक आप का कल्याण हो।

अविमारक—अनुगृहीत हुआ। मामा जी प्रणाम।

कुन्तिभोज—आओ वत्स आओ।

क्षमा द्वारा ब्राह्मणों पर, दया द्वारा आश्रितजनों पर, तत्त्वज्ञान द्वारा अपने आप पर तथा पराक्रम द्वारा राजाओं पर विजय प्राप्त करो॥ १७॥

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

कुन्तिभोजः—वत्स ! इत इतः पितरमभिवादयस्व ।

अविमारकः—भोस्तात ! अभिवादये ।

सौवीरराजः—एह्येहि वत्स !

विरचितवरवेषदर्शनीयो
गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः ।
वयमिव भव हर्षबाष्पनेत्र-
स्त्वमिह भवत्तनयं समीक्षमाणः ॥ १८ ॥

पुत्र ! अभिवादयस्व मातुलम् ।

अविमारकः—मातुल ! अभिवादये ।

विरचितेति । अन्वयः — विरचितवरवेषदर्शनीयः, गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्र-वक्त्रः, वयमिव, इह, हर्षबाष्पनेत्रः, भवत्तनयम्, समीक्षमाणः, त्वम्, भव ।

विरचितवरवेषदर्शनीयः—विरचितेन = संरचितेन, वरवेषेण = जामातृरूपेण, दर्शनीयः = रमणीयः । गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः—गुरुजनानाम् = श्वशुरादीनाम्, वन्दने = नित्यनमने, मिश्रम् = संलग्नम्, शुभ्रम् = गौरवर्णम्, वक्त्रम् = मुखम् यस्य तादृशः त्वम् । वयमिव = अहमिव । हर्षबाष्पनेत्रः = सानन्दाश्रुः । भवत्तनयम् = तव पुत्रकम् । समीक्षमाणः = अवलोक्य । त्वम् भव = यथा वरवेषे तव पुत्रकं दृष्ट्वा अहम् प्रसन्नतामनुभवामि तथैव त्वमपि गुरुजनवन्दने निरतम् निजपुत्रम् विलोक्य प्रसन्नो भवेति भावः ॥ १८ ॥

अविमारक—अनुगृहीत हुआ ।

कुन्तिभोज—वत्स ! इधर आकर अपने पिता को प्रणाम करो ।

अविमारक—पिता जी ! प्रणाम ।

सौवीरराज—आओ बेटा, आओ ।

जिस प्रकार मैं तुझे इस वरवेष में देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ उसी प्रकार तुम भी वरवेष में दर्शनीय तथा गुरुजनों की वन्दना में संलग्न अपने पुत्र को देखकर प्रसन्नता प्राप्त करो ॥ १८ ॥

बेटा, मामा जी को प्रणाम करो ।

अविमारक—मामा जी प्रणाम ।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स !

यज्ञैः शुभैर्हरिसमो भव नित्ययुक्तैः
सत्यैर्दृढैर्दशरथप्रतिमो भव त्वम् ।
नित्यार्पितैः पितृसमो भव सम्प्रदानैः
स्वेनात्मना सुसदृशेन पराक्रमेण ।। १९ ।।

सौवीरराजः—पुत्र ! सुदर्शनामभिवादयस्व ।

कुन्तिभोजः-अयुक्तमिव सुचेतनामनभिवाद्य सुदर्शनामभिवादयितुम्।

नारदः—अस्ति कारणम् । अभिवाद्यतां सुदर्शना ।

उभौ—एवं क्रियताम् ।

अविमारकः--भवति ! अभिवादये ।

यज्ञैः शुभैरिति । अन्वयः—त्वम्, नित्ययुक्तैः, शुभैः, यज्ञैः, हरिसमः, भव, दृढैः, सत्यैः, दशरथप्रतिमः, भव, नित्यार्पितैः, पितृसमः, भव, सुसदृशेन, पराक्रमेण, स्वेनात्मना ।

त्वम् = अविमारकः । नित्ययुक्तैः = प्रत्यहं सम्पाद्यमानैः । शुभैः यज्ञैः = कल्याणप्रदैः यज्ञैः । हरिसमः = इन्द्रसदृशो भव । दृढैः = अचलैः । सत्यैः = सत्यवचोभिः । दशरथप्रतिमः = दशरथसदृशो भव । नित्यार्पितैः = सततदानैः । पितृसमो भव = पितृसदृशो भव । सुसदृशेन = आत्मानुकूलेन । पराक्रमेण = शौर्येण । स्वेनात्मना = स्वसदृश एव स्वयं भवेत्यर्थः ।। १९ ।।

कुन्तिभोज--आओ वत्स, आओ ।

तुम नित्य शुभ यज्ञों से इन्द्र के समान, दृढ सत्य से दशरथ के समान, नित्य प्रवृत्त दान से पिता के समान एवं अपने पराक्रम से अपने ही समान अर्थात् अद्वितीय बनो ।। १९ ।।

कुन्तिभोज—सुचेतना को छोड़कर सुदर्शना को प्रणाम करना ठीक नहीं होगा ।

नारद—इसका कारण है । सुदर्शना को प्रणाम करो ।

दोनों—ऐसा करो ।

अविमारक—श्रीमती जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

सुदर्शना—पुत्र ! चिरं जीव एदाए सह । (परिष्वज्य) चिरेण दिट्ठो सि । अज्ज मए अणुभूदो पुत्तसम्पत्तिरसो । [पुत्र ! चिरं जीवैतया सह । चिरेण दृष्टोऽसि । अद्य मयानुभूतः पुत्रसम्पत्तिरसः ।] (रोदिति)

कुन्तिभोजः—

इमां तु बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीं
सम्प्रस्रवद्दुग्धपयोदयुग्माम् ।
अवेक्षितां मातरमप्रकाश्य
धात्रीत्वमेवैति सुचेतना मे ॥ २० ॥

नारदः—अलमतिस्नेहेन । प्रविशतु कन्यापुरं सुचेतना सुचेतना सुदर्शना सुदर्शना च सभार्येण पुत्रेण ।

पुत्रसम्पत्तिरसः = पुत्रोद्भवजन्यानन्दः ।

इमां त्विति । अन्वयः—बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीम्, सम्प्रस्रवद्दुग्धपयोदयुग्माम्, इमाम्, अवेक्षिताम्, मातरम्, अप्रकाश्य, मे, सुचेतना, धात्रीत्वमेव, एति ।

बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीम्—बाष्पार्द्रे = अश्रुपूर्णे, कुतूहले = सकौतुके च अक्षिणी = नेत्रे यस्यास्ताम् तथोक्ताम् । सम्प्रस्रवद्दुग्धपयोदयुग्माम् = क्षरत्स्तन्यं स्तनयुगलं यस्यास्तां तथाभूताम् । इमाम् = एनाम् । अवेक्षिताम् = दर्शनविषयीकृताम् । मातरम् = जननीम् । अप्रकाश्य = अप्रकटय्य । मे = मम । सुचेतना, धात्रीत्वमेव = धात्रीभावमेव । एति = प्राप्नोति । मातृसुलभस्नेहवात्सल्यादिलक्षणैः सुचेतना धात्र्याः एव भावं पूरयतीति भावः ॥ २० ॥

सुचेतना = सुबुद्धिः । सुदर्शना = सुन्दरी ।

सुदर्शना—बेटा ! इसके साथ तुम चिरंजीवी होओ । बहुत दिनों पर तुम्हें देख सकी । आज ही मैंने पुत्र-प्राप्ति के आनन्द का अनुभव किया है । (रोती है) ।

कुन्तिभोज—अश्रुपूर्ण तथा कुतूहल-भरे नेत्रोंवाली एवं दुग्धस्रवणयुक्त स्तनों वाली इस सुदर्शना को माता के रूप में अप्रकाशित करके सुचेतना वस्तुतः धात्री का ही कार्य करती रही है ॥ २० ॥

नारद—अधिक स्नेह अनावश्यक है । सुचेतना तथा सुदर्शना सस्त्रीक पुत्र के साथ अन्तःपुर में जायें ।

कुन्तिभोजः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि । [यद् भगवानाज्ञापयति]

नारदः—अचिरेण सौवीरराजो विसृज्यतां स्वदेशगमनाय । जयवर्मणे सुमित्रा प्रदीयतां काशिराज्ञे ! त्वमपि सन्निहितो भव ।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

नारदः—कुन्तिभोज ! किमन्यत् ते प्रियमुपहरामि ।

कुन्तिभोजः—भगवान् यदि मे प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

गोब्राह्मणानां हितमस्तु नित्यं
सर्वप्रजानां सुखमस्तु लोके ।

नारदः—सौवीरराज ! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

सौवीरराजः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

इमामुदीर्णार्णवनीलवस्त्रां
नरेश्वरो नः पृथिवीं प्रशास्तु ॥ २१ ॥

सन्निहितः = विवाहमण्डपे समुपस्थितः ।

गोब्राह्मणानामिति । अन्वयः—गोब्राह्मणानाम्, नित्यम्, हितम्, अस्तु,

---

कुन्तिभोज—आपकी जैसी आज्ञा ।

सुदर्शना—आपकी जैसी आज्ञा ।

नारद—सौवीरराज को यथाशीघ्र अपने देश जाने की अनुमति दें, जयवर्मा को सुमित्रा प्रदान करें, तुम भी उसमें सम्मिलित होना ।

कुन्तिभोज—यह सब आपका अनुग्रह है ।

नारद—मैं आपका और क्या कल्याण करूँ ?

कुन्तिभोज—जब आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे बढ़कर मैं और क्या चाहूँगा ।

गौओं तथा ब्राह्मणों का कल्याण हो, प्रजाजन सुखी हों ।

नारद—सौवीरराज ! आप को क्या उपहार दूँ ?

सौवीरराज—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इसके अतिरिक्त मैं और क्या चाहूँगा !

इस सागर-वसना पृथ्वी का शासन हमारे नरेश करते रहें ॥ २१ ॥

(भरतवाक्यम्)

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २२ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

षष्ठोऽङ्कः ।

लोके, सर्वप्रजानाम्, सुखम्, अस्तु, इमाम्, उदीर्णार्णवनीलवस्त्राम्, पृथिवीम्, नः, नरेश्वरः, प्रशास्तु ।

गोब्राह्मणानाम् = गवां विप्राणाञ्च । नित्यम् = सदैव । हितम् = कल्याणम् । अस्तु = भवतु । सर्वप्रजानाम् = सर्वेषां प्रजाजनानाम् । सुखम् = कल्याणम् । अस्तु = भवतु । सर्वाः प्रजाः सुखेन कालं यापयन्तु इति भावः । इमाम्=एताम् । उदीर्णार्णवनीलवस्त्राम्—उदीर्णः = विस्तृतः, अर्णवः = सागरः एव नीलं, वस्त्रम् = वसनम् यस्यास्ताम् । पृथिवीम् = महीम् । नः = अस्माकम् । नरेश्वरः = राजा कुन्तिभोज इति यावत् । प्रशास्तु = पालयतु ॥ २१ ॥

भवन्त्विति । अन्वयः—गावः, अरजसः, भवन्तु, परचक्रम्, प्रशाम्यतु, इमाम्, कृत्स्नाम्, महीम्, नः, राजसिंहः, प्रशास्तु ।

गावः = इन्द्रियाणि । अरजसः = सात्त्विकभावापन्नः । भवन्तु = सन्तु । परचक्रम् = शत्रुदलम् । प्रशाम्यतु = शक्तिहीनः भवतु । इमां, कृत्स्नाम् = सम्पूर्णाम् । महीम् = पृथ्वीम् । नः = अस्माकम् । राजसिंहः = सिंहसदृशो राजा कुन्तिभोजः । प्रशास्तु = पालयतु ॥ २२ ॥

इति 'कमलेश्वरी' संस्कृतटीकायां षष्ठोऽङ्कः ।

(भरत वाक्य)

हमारी इन्द्रियाँ सात्त्विक हों, शत्रुमण्डल निर्वीर्य हो, राजसिंह समस्त पृथ्वी का शासन करें ॥ २२ ॥

(सबका प्रस्थान)

षष्ठ अङ्क समाप्त

॥ ग्रन्थ समाप्त ॥



परिशिष्टम्

(नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के लक्षण)

१. प्रकरण :—

भवेत् प्रकरणं वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ।।

अर्थात् प्रकरण रूपक का वह भेद है जिसकी कथावस्तु लौकिक एवं कवि-कल्पित होती है। इसमें शृङ्गार रस मुख्य रस होता है तथा अन्य रसों का वर्णन गौणरूप में किया जाता है। प्रकरण का नायक कोई विप्र, अमात्य या वणिक् होता है।

२. अङ्क :—

जो भावों तथा रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुटित करता है, जहाँ पर नाना प्रकार के विधान सम्पन्न होते हैं, जहाँ एक अर्थ का समापन तथा बीज का उपसंहार हो जाता है किन्तु बिन्दु का सम्बन्ध आंशिक रूप से बना रहता है उसे अङ्क कहते हैं। भरत मुनि ने इसका लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है :—

"अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्मात् भवेदङ्कः ।।
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किंचिदवग्लानविन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ।।"

ना० शा० अ० २०।१४-१६ ।।

३. नान्दी :—

(१) आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।

सा० द० ६।२४ ।।

अर्थात् जिसके द्वारा देवताओं, ब्राह्मणों एवं राजाओं की आशीर्वादात्मक स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं।

(२) "आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः।
....नान्दीति कथ्यते ।। आदि भरत ।।

अर्थात् आशीर्वाद और नमस्कार से युक्त श्लोक जिसमें काव्य के कथानक का भी सूक्ष्मरूपेण संकेत दिया गया हो; नान्दी कहलाता है। नान्दी में प्रयुक्त होने वाले पदों एवं नान्दी की विस्तार-सीमा के विषय में भी शास्त्रकारों ने निर्देश दे रखे हैं :—

माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।।

४. प्रस्तावना :—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ।।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः :
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ।।

सा० दर्पण ।।

अर्थात् जब सूत्रधार नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्वक के साथ अपने नाटकीय कथानक के निर्देश को बतलाने के लिए विचित्र वाक्यों के द्वारा वार्त्तालाप किया करता है तो उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं।

५. सूत्रधार :—

वस्तु, नेता तथा रस—ये तीन नाट्य के उपकरण अर्थात् साधन माने गये हैं। ये उपकरण ही नाट्य के सूत्र भी कहलाते हैं और जो उन्हें धारण करता है अर्थात् उनका सञ्चालन करता है उसे सूत्रधार कहते हैं :—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ।।

६. नायक :—

नायक या नेता शब्द 'नी' धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है 'ले चलना'। जो कथावस्तु को फल की ओर ले चलता है उसे नायक या नेता कहा जाता है। यही फल का प्राप्तिकर्त्ता अथवा भोक्ता होता है। नायक या नेता नाटक का प्रधान पात्र होता है। धनञ्जय ने इसका लक्षण देते हुए कहा है :—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञा-कलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥

दशरूपक—२।१-२॥

नेता या नायक का विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न रखने वाला, पवित्र हृदय वाला, वाक्पटु, कुलीन वंश में उत्पन्न, मन आदि से स्थिर युवक होना आवश्यक है। साथ ही, उसे बुद्धि, उत्साह, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त और शूरवीर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रीय पद्धति से अपने कार्यों का सम्पादन करने वाला तथा धार्मिक भी होना चाहिये।

७. नायिका :—

श्रृङ्गार-प्रधान नाटकों में नायिका का भी उतना ही महत्त्व होता है जितना कि नायक का। 'अविमारकम्' चूंकि श्रृंगार-प्रधान नाटक (प्रकरण) है अतः नायिका का लक्षण यहाँ दे देना उचित है। विश्वनाथ के अनुसार नायिका का लक्षण इस प्रकार है :—

अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता॥

सा० द० ३।५६॥

अर्थात् नायिका भी नायक के सामान्य गुणों से युक्त हुआ करती है। स्वकीया, परकीया तथा साधारण या सामान्य के भेद से वह तीन प्रकार की होती है। स्वकीया अपनी स्त्री, परकीया पराई स्त्री या कन्या तथा सामान्या किसी की स्त्री नहीं होती है।

८. विदूषक :—

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष-भूषा और बात-चीत के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह मे प्रेम रखता है तथा अपने हास्य-कर्म को ठीक समझता है उसे विदूषक कहते हैं। उसके नाम कुसुम, वसन्त आदि भी होते हैं। विश्वनाथ के अनुसार इसका लक्षण है :—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

सा० द० ॥

९. विष्कम्भक :—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

सा० दर्पण ६।५५–५६ ॥

भूत अथवा भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए विष्कम्भ या विष्कम्भक का प्रयोग किया जाता है। नाटक में संक्षेप की दृष्टि से ही इसका प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग अङ्क के प्रारम्भ में किया जाता है। जिस विष्कम्भक में एक अथवा दो मध्यम कोटि के पात्रों का प्रयोग किया जाता है उसे "शुद्ध विष्कम्भक" कहते हैं। यदि उसमें नीच तथा मध्यम दोनों ही प्रकार के पात्र आते हैं तो उसे "मिश्र विष्कम्भक" कहते हैं।

१०. प्रवेशक :—

प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है। इसमें नीच पात्रों का ही प्रयोग होता है। दो अङ्कों के बीच में इसकी स्थिति होती है। इसकी अन्य विशेषताएँ विष्कम्भक के समान ही होती हैं—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥

सा० द० ६।५७ ॥

११. नेपथ्य :—

अभिनेता लोग जिस स्थान पर वेश-भूषा धारण करते हैं उसे नेपथ्य कहा जाता है—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

१२. स्वगत :—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

सा० द० ६।१३७ ॥

जो बात सुनाने योग्य नहीं हुआ करती उसे स्वगत (मन में) कहते हैं। इसे ही आत्मगत भी कहा जाता है ।

१३. प्रकाश :—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् । सा० द० ६।१३८ ॥

जो बात, सभी को सुनाने योग्य, कही जाती है उसे प्रकाश (स्पष्ट) कहते हैं ।

१४. प्रयोगातिशय :—

यदि एक ही प्रयोग में प्रयोगान्तर प्रयुक्त हो और उससे यदि पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं :—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्र-प्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ।

१५. बीज :—

प्रारम्भ में जिसका सूक्ष्मरूप में अभिधान किया जाता है किन्तु जैसे-जैसे व्यापक शृङ्खला आगे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे ही इसका विस्तार होता जाता है ।

१६. बिन्दु :—

विच्छिन्न कथावस्तु को इसके द्वारा आगे बढ़ाया जाता है अर्थात् जो बात कारण बनकर बीच की कथावस्तु को आगे बढ़ाती है और मुख्य कथा को भी बनाये रखती है उसे ही बिन्दु कहते हैं ।

छन्दः परिचय

रचना की दृष्टि से काव्य के तीन भेद होते हैं—गद्य, पद्य एवं मिश्र अर्थात् चम्पू। इनमें से पद्य का अनुशासन या नियमन जिस शास्त्र के द्वारा किया जाता है उसे छन्दःशास्त्र कहते हैं। पद्य का सम्बन्ध पद अर्थात् चरण से है। पद्य-रचना का एक माप होता है तथा उसी के अनुसार उसकी सृष्टि भी होती है। इसी माप या बन्धन को 'छन्द' कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मात्रा, वर्ण, यति, गति, ह्रस्व, दीर्घ आदि का विचार कर जो रचना की जाती है उसे छन्दोबद्ध रचना और जिस विधि की सहायता से ऐसी रचनायें की जाती हैं उस विधि को ही छन्द कहते हैं।

पद्य प्रायः चार चरणों या पादों में निबद्ध होता है। पाद या चरण 'वृत्त' और 'जाति' के भेद से दो प्रकार का होता है। अक्षर संख्यात चरण को वृत्त' और मात्रा संख्यात चरण को 'जाति' कहा जाता है। 'वृत्त' को 'वर्णवृत्त' अथवा वर्णिक छन्द भी कहते हैं चूँकि इसमें वर्णों की गणना की जाती है। इसी प्रकार मात्राओं की गणना करने से 'जाति' को "मात्रिक छन्द" भी कहते हैं। इन्द्रवज्रा, स्रग्धरा आदि 'वृत्त' एवं 'आर्या' आदि 'जाति' छन्द हैं।

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं—समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त।

१. समवृत्त—इसमें चारों चरणों की संख्या समान होती है। अधिकांश वर्णवृत्त इसी श्रेणी में आते हैं। शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, पृथ्वी आदि इसके उदाहरण हैं।

. अर्धसमवृत्त—इस छन्द के प्रथम और तृतीय चरणों में तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में वर्णसंख्या समान होती है। अपरवक्त्र, उपचित्र, पुष्पिताग्रा, वियोगिनी आदि इसके उदाहरण हैं।

३. विषमवृत्त—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है; इस छन्द के चरणों में समानता होती ही नहीं। एकमात्र उद्‌गता छन्द इसका उदाहरण है।

मात्राएँ तीन प्रकार की होती हैं—ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत। ह्रस्व को लघु कहते हैं और छन्दःशास्त्र में एक खड़ी रेखा (।) के द्वारा इसे चिह्नित किया गया है। इसे एक मात्रा गिना जाता है। दीर्घ को गुरु भी कहते हैं। इसका चिह्न (ऽ) है जिसे दो मात्रा गिना जाता है। प्लुत का प्रयोग संगीत में या किसी को पुकारने में होता है। इसमें तीन या उससे अधिक मात्राओं की गणना की जाती है। अ, इ, उ, ऋ एवं ऌ—ये ह्रस्व या लघु स्वर हैं। इनमें एकमात्रा होती है। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ,—दीर्घ या गुरु स्वर कहलाते हैं। इनमें २-२ मात्राएँ होती हैं। पद्यरचना में कहीं-कहीं लघुस्वर भी गुरु हो जाते हैं—

"सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥" (छन्दोम०)

उक्त पद्य के आलोक में निम्न प्रकार के वर्ण गुरु होते हैं—

१. अनुस्वारयुक्त वर्ण—जैसे—अंश, हंस आदि। इन शब्दों में क्रमशः अ एवं ह (अ) ह्रस्व हैं किन्तु अनुस्वारयुक्त होने से गुरु हो जाते हैं।

२. दीर्घस्वर—जैसे—आ, ई, ऊ आदि।

३. विसर्गयुक्त स्वर—जैसे—'दुःख' का दु (उ)।

४. संयुक्त व्यञ्जनों से पूर्व का ह्रस्व—जैसे 'मध्य' का म (अ)।

५. पादान्त (चरणान्त) में प्रयुक्त लघु स्वर कभी-कभी गुरु हो जाता है।

वर्णवृत्तों में वर्णों की गणना के लिए 'गण' का उपयोग किया जाता है। तीन वर्णों के समुदाय को 'गण' कहा जाता है। इनकी संख्या आठ है। गणों की संख्या का निर्देश निम्न पद्य से मिलता है :—

आदिमध्यावसानेषु यरता यान्ति लाघवम्।
भजसा गौरवं यान्ति मनौ तु गुरु लाघवम्॥

लघु-गुरु वर्णों के क्रमानुसार इन आठ गणों को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है।

(१) ऽऽऽ मगण—म—तीनों गुरुवर्ण।

(२) ।ऽऽ यगण—य—एक लघु तथा दो गुरु वर्ण।

(३) ऽ।ऽ रगण—र—एक गुरु, एक लघु फिर एक गुरुवर्ण ।
(४) ।।ऽ सगण—स—दो लघु फिर एक गुरु वर्ण ।
(५) ऽऽ। तगण—त—दो गुरु फिर एक लघु वर्ण ।
(६) ।ऽ। जगण—ज—एक लघु फिर एक गुरु फिर एक लघु वर्ण ।
(७) ऽ।। भगण—भ—एक गुरु एवं दो लघु वर्ण ।
(८) ।।। नगण—न—तीनों लघुवर्ण ।

लक्षणों में ल' का तात्पर्य लघु से एवं 'ग' का तात्पर्य गुरु से है ।

प्रत्येक छन्द में मात्राओं या वर्णों की नियमित संख्या होने से ही काम नहीं चलता है अपितु उसमें एक प्रकार का प्रवाह भी अपेक्षित है जिससे पढ़ने में कहीं व्यवधान-सा नहीं जान पड़े । इसी प्रवाह को गति कहते हैं । पद्य के एक चरण में लय या पढ़ने की दृष्टि से कुछ अक्षरों के बाद थोड़ा रुका जाता है । इसी रुकावट को छन्दःशास्त्रीय भाषा में यति, विराम या विश्राम कहते हैं ।

'अविमारक' के अन्तर्गत जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है उनके लक्षणादि निम्नलिखित हैं :—

१. अनुष्टुप्—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।

अनुष्टुप् के प्रत्येक चरण में ८–८ अक्षर होते हैं । इनमें पञ्चम अक्षर सदा लघु तथा षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है । सप्तम अक्षर प्रथम तथा तृतीय चरणों में गुरु और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में लघु होता है । अन्य अक्षरों में लघु या गुरु का कोई निर्देश नहीं है; वे कुछ भी हो सकते हैं । उदाहरण १।४

२. स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।।

स्रग्धरा के प्रत्येक चरण में २१ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, ३ यगण = २१ वर्ण । इसमें ७–७ वर्णों पर यति होती है । उदाहरण—१।१

३. उपजाति—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।।

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उपजाति के प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं। यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा और किसी में उपेन्द्रवज्रा छन्द होता है। इन्द्रवज्रा में ११ वर्ण होते हैं—२ तगण, १ जगण, २ गुरु = ११ वर्ण। उपेन्द्रवज्रा में भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु = ११ वर्ण। उदाहरण—१।३

४. शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥

इसके प्रत्येक चरण में १७-१७ वर्ण होते हैं। १ यगण, १ मगण, १ नगण १ सगण, १ भगण, १ लघु, १ गुरु = १७ वर्ण। इसमें ६-११ पर यति होती है। उदा०—१।५

५. वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥

वसन्ततिलका के प्रत्येक चरण में १४-१४ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ भगण, २ जगण, २ गुरु = १४ वर्ण। यह शक्वरी श्रेणी के अन्तर्गत है। पादान्त में यति होती है। उदा०—१।६

६. शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥

शालिनी छन्द के प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण, २ गुरु = ११ वर्ण। इसमें ४-७ पर यति होती है। यह त्रिष्टुभ श्रेणी के अन्तर्गत है। उदा०—१।७

७. प्रहर्षिणी—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ॥

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १३-१३ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु = १३ वर्ण। इसमें ३-१० पर यति होती है। उदा०—१।८

८. मालिनी—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥

इसके प्रत्येक चरण में १५-१५ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ मगण, २ यगण = १५ वर्ण। इसमें ८-७ पर यति होती है। उदा०—२।५

९. पृथ्वी--जसौ जसजला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥

इसके प्रत्येक चरण में १७-१७ वर्ण होते हैं--१ जगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ जगण १ लघु १ गुरु=१७ वर्ण। इसमें ८-९ पर यति होती है। उदा०--२।६

१०. उपेन्द्रवज्रा--उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥

इसके प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु=११ वर्ण। यह त्रिष्टुभ श्रेणी के अन्तर्गत है। पादान्त में यति होती है। उदा०-२।९

११. पुष्पिताग्रा—यह अर्धसमवृत्त है। इसे औपच्छन्दसिक भी कहते हैं। इसके समपादों में १३ एवं विषमपादों में १२ वर्ण होते हैं--

अयुजि न युगरेफतो यकारो। युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥

इसके समपाद में--१ नगण, १ जगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु= १३ वर्ण तथा विषम पाद में—१ नगण, १ नगण, १ रगण, १ यगण= १२ वर्ण होते हैं। उदा० २।११

१२. शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥

इसके प्रत्येक चरण में १९-१९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण १ गुरु=१९ वर्ण। इस छन्द में १२-७ पर यदि होती है। उदा०-४।५

१३ वंशस्थ—इसके प्रत्येक चरण में १२-१२ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण=१२ वर्ण। इसका लक्षण है :—

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।   उदा०—४।२३

१४. दण्डक-तदिह न युगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः। इस छन्द के प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या समान होती है किन्तु प्रत्येक चरण में २६ से अधिक वर्ण होते हैं तथा प्रारम्भ में २ नगण होते हैं। उदा०—५।६



ग्रंथगत सुभाषित

(श्लोक, श्लोकांश एवं गद्यांश)

प्रथम अंक

१. कन्यापितुर्हि सततं बहुचिन्तनीयम् ।। २ ।।

२. "विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्त्तव्याः भवन्ति ।"

३. जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा,
पित्रा तु दत्ता स्वमनोऽभिलाषात् ।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ।। ३ ।।

४. प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं,
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति ।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः;
सुसूक्ष्मं दण्डचन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ।। ५ ।।

५. "निष्परिहारा व्यापदः ।"

६. "अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः ।"

७. "कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम् ।"

८. छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्,
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः ।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा,
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति ।। ६ ।।

९. मेघान्तर्गतरविवत् प्रभाऽनुमेयः ।

१०. न तत्र कर्त्तव्यमिहास्ति लोके,
कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम् ।
सर्वे नरेन्द्राः हि नरेन्द्रकन्यां
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ।। ९ ।।

११. "सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्त्तव्यम् । गुणबाहुल्यं तादात्वमायतिं चावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यमित्यर्थ ।"

१२. "न भृत्यदूषणीया राजानः, स्वामिनो हि स्वाम्यमात्यानाम् ।"

१३. "अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानां, न स्नेहम् ।"

१४. "अहो महद्भारो राज्यं नाम ।" कुतः,

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्धया,
प्रच्छाद्यौ रागद्वेषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं,
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥१२॥

द्वितीय अंक

१५. चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा ॥ ४ ॥

१६. यदि च विभवरूपज्ञानसत्त्वादयः स्यु-
र्न तु कुलविकलानां वर्त्तते वृत्तशुद्धिः ॥ ५ ॥

१७. "कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः ।"

१८. "सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम् ।"

१९. एकः परगृहं गच्छेत् द्वितीयेन तु मंत्रयेत् ।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः ॥ १० ॥

तृतीय अंक

२०. "प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति ।"

२१. "भो कष्टं तारुण्यं नाम ।" कुतः,

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं,
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं
बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥ १ ॥

२२. स्त्रीभावतः प्रवदति प्रतिकूलमेव ॥ ७ ॥

२३. "के रक्षन्ति रक्षितात्मानम् ।"

२४. यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः,
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ।। १२ ।।

२५. "अट्टालप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्नाः भवन्ति ।"

२६. तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति ।। १५ ।।

चतुर्थ अंक

२७. "स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति ।"

२८. न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकांक्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ।। १४ ।।

२९. "को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम् ।"

३०. वृन्दं सतामिव पटुः प्रविशाम्यशङ्कः ।। २२ ।।

पञ्चम अंक

३१. "कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् ।"

३२. प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ।। ५ ।।

३३. "नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति ।"

षष्ठ अंक

३४. "अहो विषमशीला सांवत्सरिका नामात्मनो नक्षत्रविशेषमेव-चिन्तयन्ति, कर्मगौरवं न जानन्ति ।"

३५. "बलवान् पुत्रस्नेहो नाम ।"

श्लोकानुक्रमणिका

★